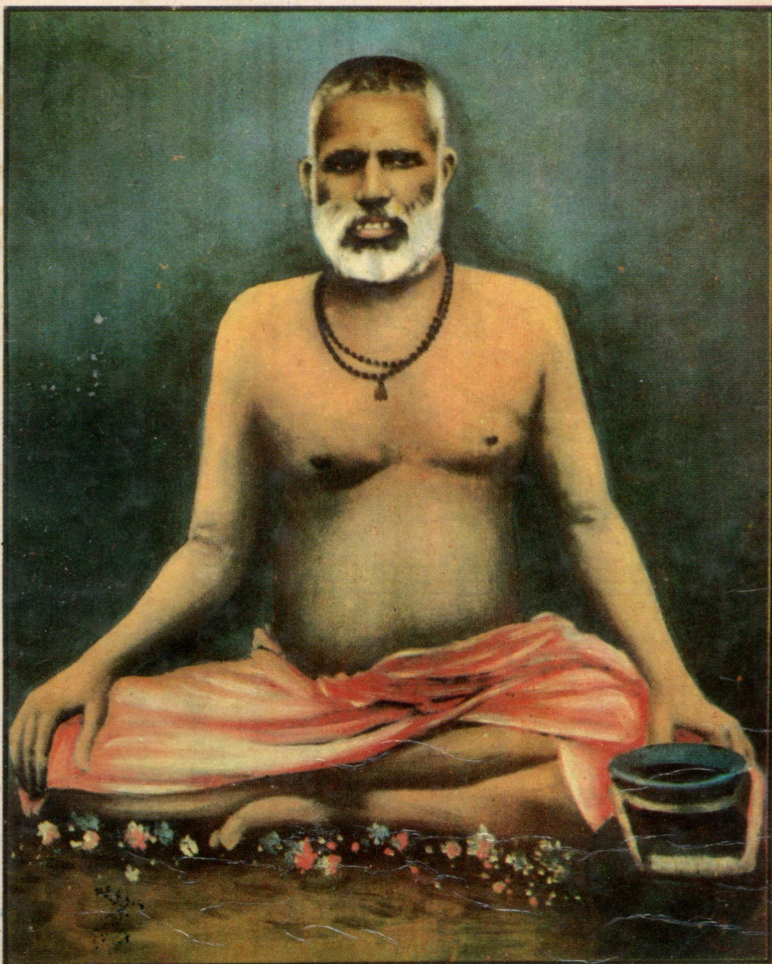
श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण

द्वितीय खण्ड



✸ श्री गुरवे नमः ✸

श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण

द्वितीय खण्ड



सम्पादक :-

स्वामी सनातनदेव

गोविन्ददास वैष्णव

प्रकाशक :

श्री आर्तत्राण न्यास

मुख्य कार्यालय–३८०३ डेविड स्ट्रीट, दरियागंज, दिल्ली–११०००२

शाखा कार्यालय–श्रीपूर्णकुटीर; मातृमण्डल

श्रीउड़ियाबाबा आश्रम, दावानलकुण्ड, वृन्दावन–२८११२१



पुस्तक प्राप्ति का स्थान :

श्री स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ (उड़िया बाबा) ट्रस्ट समिति

श्रीकृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)



तृतीय संस्करण–१००० प्रतियाँ

गुरुपूर्णिमा संवत् २०५४



मूल्य : तीस रुपये



मुद्रक : राधा प्रेस

गान्धी नगर, दिल्ली–११००३१

आमुख

श्री महाराजजी के संस्मरण द्वितीय खण्ड का काफी समय पूर्व से अभाव बना हुआ था, योग्य मुद्रक के अभाव के कारण इसका पुनः प्रकाशन नहीं हो पा रहा था। अभी कुछ दिन पूर्व 'राधा प्रेस' के संचालक महोदय ने जब हमें सन्तोषजनक कार्य होने का आश्वासन दिया था इसके फलस्वरूप श्री महाराजजी की कृपा से संस्मरण द्वितीय खण्ड का पुनः प्रकाशन हो रहा है।

श्रीमहाराजजी को जिसने जैसा देखा वैसा ही आपके प्रति लिखने का उसने प्रयत्न किया वस्तुतः यदि कोई कहे कि मैंने श्री महाराजजी को पूर्णतः समझ लिया कि श्री महाराजजी ऐसे थे मेरे विचार में यह एक प्रकार से अपराध ही माना जायेगा। इतना अवश्य है कि श्री महाराजजी के सम्पर्क में कुछ क्षण भी रहने का जिस व्यक्ति को सौभाग्य प्राप्त हुआ वह चाहे परिचित था अथवा अपरिचित, सत्संगी था अथवा संसारी उसे श्री महाराजजी के वैशिष्ट्य का अनुभव अवश्य हुआ।

मैंने तो यह देखा कि वेदान्ती, भक्त, योगी, कर्मयोगी, कर्मकाण्डी कम्युनिष्ट प्रभृति जो भी आपके समक्ष आया उसे कहना पड़ा कि महाराजजी अद्वितीय हैं। एकबार महात्मा गान्धी जी ने भी कहा कि ऐसा विलक्षण वैराग्य अत्यन्त दुर्लभ है।

अब बिना किसी विशेष भूमिका के यह महाराजश्री की वस्तु महाराज श्री के चरणों में समर्पित करते हुए कामना है कि आपकी भक्ति निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करती रहे।

—पं. जनार्दन चतुर्वेदी

अध्यक्ष, उड़िया बाबा आश्रम ट्रस्ट समिति

नम्र-निवेदन

(प्रथम संस्करण में)



पूज्यपाद श्री महाराजजी से बिछुड़े हुए हमें प्रायः दस वर्ष हो गये हैं। अब उनके सदुपदेश और उनकी सुमधुर स्मृति ही इस जीवन–यात्रा में हमारे संबल हैं। एक संक्षिप्त जीवन परिचय भी छपा है तथापि भक्तों की बड़ी लालसा थी कि उनकी एक विस्तृत जीवनी भी लिखी जाय। परन्तु लिखे कौन ? महापुरुषों का जीवन तो ईश्वरों का जीवन होता है। हम सामान्य जीव उसे न तो पूरा–पूरा समझ ही सकते हैं और न उसे अभिव्यक्त करने के लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द–सम्पत्ति ही है। जैसे एक ही भगवान् भावभेद से भक्तों को विभिन्नि रूपों में भासते हैं, वैसे ही महापुरुषों के विषय में भी उनके सभी भक्तों की एक सी धारणा नहीं होती। अतः ऐसा कोई एक जीवन तो लिखा भी नहीं जा सकता जिससे सभी भक्तों को उनके अपने–अपने भावकी पोषक सामग्री मिल सके। इन्हीं कारणों से यह कार्य अत्यन्त आवश्यक होने पर भी आरम्भ न हो सका।

प्रायः पाँच वर्ष हुए श्रीमहाराजजी के कुछ भक्तों के आग्रह से श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव ने उनके जीवनचरित के लिए सामग्री संग्रह करने का कार्य आरम्भ किया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। सच पूछा जाय तो प्रस्तुत पुस्तक उनके उस अथक परिश्रम का ही परिणाम है। इस प्रकार प्रायः दो वर्षों में पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गयी। अब उसके सम्पादन की समस्या सामने आयी। सामग्री बहुत उपयोगी थी और उसमें सभी प्रकार की मनोवृत्तियों के साधकों के भाव सन्निविष्ट थे। उन विभिन्न भाव और विभिन्न दृष्टिकोणें से समन्वित सामग्री के अधार पर कोई क्रमबद्ध जीवन लिखना आसान कार्य नहीं था। अतः यह निश्चय किया गया कि उन संस्मरणों को ही क्रमबद्ध करके ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। इससे सभी प्रकार की सामग्री लेखकों के अपने-अपने भावों के अनुसार मिल जायगी और उन घटनाओं के विषय में किसी एक व्यक्ति का उत्तरदायित्व भी नहीं होगा।

यह निर्णय हो जाने पर उनमें से अधिकांश लेखों को, उनकी भाषा आदि का संशोधन करके, श्रीगोविन्ददासजी ने लिखा। परन्तु वह चाहते थे कि सम्पादन का अन्तिम दायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर ही रहे। अतः इसे अन्तिम रूप देने का कार्य मुझे ही सौंपा गया। मैंने अपनी योग्यता के अनुसार इसका सम्पादन करने का प्रयत्न किया है। इसमें मैं कितना सफल हुआ हूँ, सो तो भगवान् ही जानें।

इस पुस्तक को दो खण्डों में विभक्त किया गया है। लेख और लेखकों की दृष्टि से दोनों ही खण्डों का समान महत्त्व रहे-ऐसा प्रयत्न रहा है। लेखों की भाषा तो आवश्यकतानुसार सुधारी गयी है, परन्तु घटनाओं की यथार्थता का दायित्व लेखकों पर

ही है। हमें किसी विषय में अविश्वास करने का क्या अधिकार है ? महापुरुषों के जीवन में ऐसा कौन आश्चर्य है जो दुर्घट हो। तथापि स्थान का संकोच होने के कारण बहुत–से लेख छोड़ने भी पड़े हैं और अनावश्यक समझ कर प्रस्तुत लेखों की भी कुछ घटनायें छोड़ दी गयी हैं। आशा है, हमारी विवशता का विचार करके कृपालु लेखक हमें क्षमा करेंगे।

अस्तु जैसा भी बना यह गुरुदेव के निजजनों द्वारा गूँथा हुआ श्रद्धामय पुष्पाहार उन्हीं के परमपुनीत पादपद्मोंमें समर्पित करता हूँ। वे करुणामय प्रभु इस नगण्य भेंटसे प्रसन्न होकर हमें अपने चरणकमलोंकी अहैतुकी प्रीति प्रदान करें।

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन
दीपावली, सं २०१५ वि०



विनीत :
सनातनदेव



श्रीपूर्णानन्दतीर्थस्तवः



।। ॐ श्रीपूर्णानन्दाय नमो नः।।

: १ :

श्रीपूर्णानन्दतीर्थस्फुरदमृतगवी विप्रुषाऽऽप्लावितानाँ,
नास्माकं मोक्षचिन्ता प्रविदितमहसां ब्रह्मभावं गतानाम्।
किन्त्वेषा बोधधरा विघटितनिखिलाकारसंस्कारकारा,
स्वच्छन्दं दन्ध्वनीति प्रतिपदमधुना तामनुव्यञ्जयामः।।

ये हैं श्रीपूर्णानन्दतीर्थ। इस अद्भुत तीर्थ से वचनसुधा लहराती है। हम उसके सीकरों में स्नान कर चुके हैं। हमें अद्धितीय ज्योतिका बोध हो गया है और ब्रह्मात्मभाव का अनुभव है, मोक्ष की कोई चिन्ता नहीं है। फिर भी उस कृपा सीकर से प्राप्त बोध की धारा प्रवाहित होकर समस्त आकार एवं संस्कार के कारागार को छिन्न भिन्न कर रही है औ स्वछन्द उपदेश–ध्वनि से परिपूर्ण कर रही है। अब हम प्रतिपद उसीको अभिव्यक्ति देते हैं।। १।।

: २ :

शिक्षा सर्वागमानां निखिलजनमनः पावनी कापि दीक्षा,
दीप्ता सर्वात्मदृष्टिर्निरवधिकरुणा किं नु वात्सल्यवृष्टिः।
निष्ठा ब्रह्मात्मविद्याद्यु तिदलिततमस्तोमविद्वनमणीनां,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो जगति विजयते सत्प्रतिष्ठा यतीनाम्।।

श्री पूर्णानन्दतीर्थ की जय हो, जय हो ! यह हमारे महाराजश्री सम्पूर्ण शास्त्रों की मूर्तिमती शिक्षा हैं अथवा निखिल जनता के मानस को पावन करने वाली कोई दीक्षा। ये प्रदीप्त सर्वात्मदृष्टि हैं, अपार करुणा के पारावार हैं अथवा वात्सल्य की वर्षा हैं। हो न हो, ब्रह्मात्मविद्याकी द्युतिसे अज्ञानान्धकारको दूर अपसारित करनेवाले ज्ञानी पुरुषों के मुकुटमणि हैं। ऐसा लगता है जैसे महात्माओं की शाश्वत प्रतिष्ठा ही इनके रूप में प्रकट हो गयी हो।। २।।

: ३ :

सम्भोगे विप्रलम्भे निरुभयमभयं भाति भूपो रसानां,
विक्षेपे वा समाधौ विहरणनिपुणा ब्रह्मविद्यैव नूनम्।
इत्थं लोकैरशोकैरनुपदमधिकं भाव्यमानोऽवधूतः,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थः पथि पथि पथिकान् नन्दयन् बम्भ्रमीति।।

संयोग शृंगार और वियोग शृंगार दोनों से अलग और दोनों में विद्यमान ये निर्भय रसराज ही हैं क्या ? हो सकता है विक्षेप एवं समाधि में समान विहार करनेवाली ब्रह्मात्मविद्या ही इनके रूप में प्रकट हुई हो। आनन्द से भरपूर जनता सब ओर इनके बारे में उद्भावना कर रही है। ये कौन हैं ? कोई अवधूत हैं इनको लोग श्रीपूर्णानन्दतीर्थ के नाम से जानते हैं। मार्गवासी लोगों को आनन्द देने के लिए ये पैदल ही पथ–पथ पर विचरण करते हैं।। ३।।

: ४ :

ब्रह्मानन्दाब्धिलीलाललितलहरिकाव्यञ्जितासंख्यबिन्दु-
ब्रह्माण्डव्रातरोमा विधुतविधिविधुत्र्यक्षविस्तारसीमा।
संविद्भूमांशुमालोज्जवल विमल रुचिध्वस्तमायाविलासः,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो मम मनसि मनागात्मभाव बिभर्तु।।

ये हैं श्रीपूर्णानन्दतीर्थ। ब्रह्मानन्दसागर की लीला ललित असंख्य विन्दुओं से छलकते हुए राशि–राशि ब्रह्माण्ड इनके रोम–रोम में स्थित हैं। विष्णु, ब्रह्मा और शंकर के विस्तार की सीमा टूट चुकी है। अनन्त संवति् के राशि–राशि चिदाभास रश्मिसमूह की चमक से मायाविलासका विध्वंस हो रहा है। यही श्री महाराजजी कृपा पूर्वक हमारे मन में थोड़ा–सा आत्मभाव भर दें।।४।।

: ५ :

तीर्थानां नास्ति संख्या विलसति पुरतः कापि तेषामभिख्या,
येषां स्नानप्रदानप्रवचनपटिमा कां कलां नातिशेते।
तच्चित्रं यस्य चित्रं कलितमपि मनाक् छ्रे यसां प्रेयसां च,
परोक्ष्यं संपिधत्ते वितरति परमां पूर्णतामात्मरूपाम्।।

तीर्थों की संख्या नहीं है। गंगा–पुष्करादि, महात्मागण, विद्वान–सभी तीर्थ हैं। उनकी अद्भूत शोभा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आती रहती है। उनमें स्नान करो, दान करो, प्रवचन सुनों उनकी पटुता सभी कलाओं का अतिक्रमण कर जाती है। परन्तु श्रीपूर्णानन्दतीर्थ में एक विचित्रता है। यदि एक बार, केवल एक बार थोड़ी देर के लिए उनके चित्र का आकलन कर लिया जाय तो वह श्रेय एवं प्रेय दोनों का प्रत्यक्ष कर देता है। और आत्मस्वरूप सच्ची पूर्णता का दान कर देता है।।५।।

: ६ :

सा दृष्टिः सूक्ष्मलक्ष्या स्थिरचरविषया वासनास्पर्शशून्या,
सा दृष्टिर्दृश्यमुक्तं करणमिव परं सम्प्रसादैकरूपा।
सा दृष्टिर्यत्र नान्यत् सकलमविकलं ब्रह्म प्रत्यक् प्रशान्तं,
श्रीपूर्णानन्दनेत्रद्वयरसविलसत्कोणकारुण्यमात्रम् ।।

वह दृष्टि जिसका लक्ष्य सूक्ष्म होता है, खुली रहकर स्थावर जंगमको भी देखती रहती है, किन्तु वासना का स्पर्श भी नहीं होता। वह दृष्टि जिसमें दृश्य न हो, निर्विषय करण के समान हो और सम्प्रसन्न समाधिरूप हो। वह दृष्टि जिसमें द्वैत है ही नहीं, सब कुछ प्रत्यक् चैतन्याभिन्न निर्विकार एवं प्रशान्त ब्रह्म ही है। वह शाम्भवी मुद्रा, सम्प्रज्ञात समाधि अथवा समाधि अथवा निर्विकल्प निर्बीज ब्रह्मनिष्ठा श्रीपूर्णानन्दतीर्थ महाराज के नयनयुगल के विलासपूर्ण कोण का कारुण्य मात्र ही है।।६।।

: ७ :

यत्किञ्चिद्वास्तु वस्तु प्रणमत कृतिनो ज्ञानतोऽज्ञानतो वा,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थामृतकणपवनस्पर्शधन्यं धरण्याम् ।
यत्सम्पर्कादनर्हामिव हरिहरतां मन्यमाना महान्तः,
स्वान्तर्व्योम्नि प्रशान्त निरुपधिविमलं ब्रह्म पूर्णं लभन्ते ।।

सज्जनों! धरती पर चाहें कोई भी वस्तु क्यों ने हो, जो श्रीपूर्णानन्दतीर्थ के अमृतकण से प्लावित्र वायु के स्पर्श से धन्य हो चुकी हो, उसे ज्ञान या अज्ञान से प्रणाम कीजिये। उस वस्तु के सम्पर्क से महापुरुषों के हृदय में भी वैराग्य की ऐसी उदात्त भावना उदति हुई है कि उन्होंने हरिहर पदवी को भी अयोग्य समझकर अपने हृदय–आकाश में प्रशान्त, निर्माय, निर्मल पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त किया है।। ७।।

: ८:

रे रे ब्रह्माण्डकोट्यः फलतः बहुविधं रोमकूपेष्वभीक्ष्ण-
मीशा रे सावकाशं निजपदविहितां सद्व्यवस्थां विधत्त।
रक्ता भक्ता विरक्ता विलसत सकलं सत्कले निष्कले वा,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थ वयमिह कुशला उत्कलं संविशामः।।

अरे कोटि–कोटि ब्राह्मणों ! तुम हमारे एक–एक रोमकूप में भिन्न–भिन्न प्रकार से बार–बार फूलो–फलो। अरे ब्राह्मण्ड के स्वामियों ! तुम आकाश के अनुसार अपने पद की मर्यादा के अनुसार ब्रह्माण्डों की सद्व्याख्या करो। रागी भक्त और विरक्तों ! तुमलोग सकल, सत्कल या निष्कल ईश्वर में विहार करो। हम चतुर लोग इसी धरती पर, इसी जीवन में उत्कल श्री पूर्णानन्दतीर्थ में भली भाँती प्रवेश कर रहे हैं।। ८।।

: ९ :

माया छाया वराकी कथमिवलभतां मय्यनन्ते प्रतिष्ठा
मस्थाने चेश्वरत्वं द्रुहिणहरिहरा हन्त वह्नेः स्फुलिङ्गाः।
अद्वैते द्वैतखेला गगननलिनवत् स्वप्नवज्जीवमेला,
श्रीपूर्णानन्दवाणी श्रुतिशिखरसुधास्वर्णदी नः पुनातु।।

"तुच्छ मायां छाया मात्र है। वह मुझ अनन्त में स्थान कैसे पा सकती है ? ईश्वरता भी किसकी ? कैसे राम–राम ! ब्रह्मा–विष्णु महेश तो मुझमें आग की चिन्गारी के समान हैं। अद्वैत में द्वैत का खेल आकाश में कमल के खेल–सा है और जीवों का मेल स्पन्सा !" यह है श्रीपूर्णानन्दतीर्थकी वाणी। यह श्रुतिशिखर अर्थात् वेद के शिरोभाग वेदान्त की सुधागंगा है। यह हमें पवित्र करे।। ९।।

: १० :

भक्तिः श्रद्धैकमूला विरहितविषया बोधमूलं विरक्ति-
र्दिध्यासा लक्षितेऽर्थे श्रवणमननजा सम्प्रसूते समाधिम्।
ज्ञानाभ्यासप्रधाना घनरतिरुदिता हन्त्यविद्यामवद्यां,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थे वचसि वयममी निर्भरं मज्जिताः स्मः।।

"भक्ति एकामात्र कारण है श्रद्धा। ब्रह्मबोधका साधन है वैराग्य। सम्पूर्ण–विषयों में अरुचि वैराग्य है। श्रवण मननजन्य निदिध्यासन लक्ष्यार्थ में समाधिको जन्म देता है। ज्ञानाभ्यासप्रधान धनरति उदित होकर भद्रजननी विद्या का नाश कर देती।" यह हैं श्रीपूर्णानन्दतीर्थ के वचन जो स्वयंतीर्थ हैं। अब हम निश्चिन्त होकर इसमें मग्न हो चुके हैं।। १०।।

: ११ :

श्रीपूर्णानन्दकल्पद्रुमतलरजसा पाविते भूप्रदेशे,
यस्मिन्कस्मिन्निषीदन् सपदि निजपदे शान्तवृत्तिर्निसर्गात्।
दर्शं दर्शं स्वरूपं परिणतविधुरं ब्रह्म निर्भेदमद्धा,
न श्रद्धां नानुवन्धं श्रुतिशिखरगिरामाग्रहं नानुमन्ये।।

श्रीपूर्णानन्दतीर्थ हैं कल्पवृक्ष। उनके पादतलकी धूलि से पावन जिस किसी भूमिप्रदेश में बैठते ही बिना किसी साधन के तत्काल वृत्ति अपने स्वरूप में शान्त हो जाती है। परिणामरहित निर्भेद ब्रह्म अपना ही स्वरूप है इसका साक्षात्कार होने लगता है। 'अब मुझे श्रद्धा, अनुबन्धचतुष्टय अथवा वेदान्तश्रवण के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं होता'–इस मतवाद में आग्रह नहीं रहा।। ११।।

: १२ :

यस्याज्ञा धर्मशास्त्रं सहजशुचिकथा ब्रह्मविद्यानवद्या,
ध्यानं सर्वात्मभानं स्थिरचरहितकृत्छेमुषी शान्तिभूषा।
आश्चर्यं चारुचर्य्या जननयनमनोमोहिनी मुक्तवर्या,
तं पूर्णानन्दतीर्थं गुरुममृतमृतं ब्रह्ममूर्तं प्रपद्ये।।

जिनकी आज्ञा धर्मशास्त्र है, सहज पावन वार्त्तालाप निर्दोष ब्रह्मविद्या है सर्वात्मभाव ही ध्यान है, शान्तिरूप अलङ्कार से अलङ्कृत बुद्धि चराचर हितकारिणी है, जिनकी आश्चर्यमयी चारुर्चा जननयनमनोमोहिनी एवं मुक्त पुरुषों के लिए भी वरणीय है उन अमृत, ऋतु गुरुदेव श्री पूर्णानन्द तीर्थकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वे ही मूर्त ब्रह्म हैं।। १२।।

: १३ :

आनन्दब्रह्मविद्यामधिजिगमिषवस्तैत्तिरीया गभीरं,
मीमांसन्ते स्म विश्वं तदुदयविलयं निर्भयास्तत्स्वरूपम्।
कल्याणी काण्ववाणी विमृशति मधुरं वीणयन्ती च तत्त्वं,
तत्पूर्णानन्दतीर्थे मधुनि वयममी निर्द्वयं लीलयामः।।

आनन्द ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी गम्भीर मीमांसा करते हैं कि विश्व का उदय–विलय आनन्द–ब्रह्म से ही होता है, आनन्द–ब्रह्म में ही होता है। वे निर्भय होकर विश्व को ब्रह्म–स्वरूप कहते हैं। काण्व शाखा की कल्याणी वाणी 'मधु–मधु' कहकर तत्वका मधुर रूप में संगीत गाती है। अतएव मधुमय पूर्णानन्दरूप तीर्थ में निर्द्वय होकर हम क्रीड़ा कर रहे हैं।। १३।।

: १४ :

धर्मः कर्मविशेष एष विहितः शास्त्रैर्मनः शुद्धये,
शुद्ध्या सिद्धपदार्थबोधनविधा निर्बाधमाधीयते।
तत्त्वं त्वं तदिति प्रमा श्रुतिरमा भेदभ्रमापोहिनी,
पूर्णानन्दपदप्रसादपरमा सद्यः क्षमा मुक्तये।।

कर्म–विशेष का ही नाम धर्म है। यह मनःशुद्धि के लिए शास्त्रों के द्वारा विहित होता है। मनःशुद्धि होने पर सिद्ध वस्तु के बोध की प्रक्रिया निर्विघ्न हृदयंगम हो जाती है। वह तुम हो', 'तुम वह हो'– यह प्रभा श्रुतियों का सार सर्वस्व लक्ष्मी है। यही भेद–भ्रमको दूर करती है। इसी से पूर्णानन्द –पद का पूर्णतः अनुभव होता है। मुक्ति की तत्काल प्राप्ति के लिए यही समर्थ प्रमाण है।। १४।।

: १५ :

क्षीराब्धिस्नापिताङ्घ्रिप्रथितगिरिशिरोनीलरत्नाङ्कजन्मा-
ऽऽर्तत्राणैकान्तशिक्षः क्षपितकलिमलो लब्धसंन्यासदीक्षः।
ब्रह्मात्मैक्यानुभूतिप्रखररविकरोद् धूतमोहान्धकारो,
विश्वात्मा प्रत्यगात्मा विहरतु हृदये पूर्ण आनन्दतीर्थः।।

गिरिशिरोमणि नीलाचल। स्वयं लक्ष्मीपिता क्षीरसागर जिनके चरणारविन्दका प्रक्षालन करते रहते हैं। श्रीपूर्णानन्द–तीर्थ ने वहाँ जन्म लिया। उन्होंने सारी शिक्षा ऐसी प्राप्त की जिससे आर्त्तों का संरक्षण हो। लोगों के मन से कलियुग की मलिनता धो दी। संन्यासदीक्षा ग्रहण की। ब्रह्मात्मैक्यानुभूति की प्रखर रविरश्मियों से मोहान्धकारका निवारण कर दिया। वे ही विश्वात्मा हैं। वे ही प्रत्यगात्मा हैं। वे ही अद्वितीय पूर्णानन्दतीर्थ हैं। हमारे हृदय में चिरकाल तक विहार करें।। १५।।

: १६ :

आविर्भूतं पुरस्तान्महदहह महो यद्दहो योगिगम्यं,
रम्यं स्वानन्दपूर्णं स्मितललितमुखं स्निग्धमुग्धावलोकम्।
आश्लिष्यद्वक्षसाऽलं विमृशदतिरसान्मूर्ध्नि हस्ताम्बुजाभ्यां,
लोलाशीलान्तरंगं मन नयनयुगं नर्यगं सञ्चकास्तु।।

एकान्त साधना करके योगीजन जिस महान् दिव्य ज्योतिका दर्शन प्राप्त करते हैं, आश्चर्य है वही मेरे नत्रों के सामने प्रगट हो गयी हैः कितना रमणीय, आत्मानन्द से परिपूर्ण। मुखारविन्द स्मितसुन्दर। अवलोकन स्नेह से भरपूर एवं मुग्ध है। यह दिव्य ज्योति मुझ अपने वक्षःस्थल से आलिंगन करना चाहती है। बड़े प्रेम से करकमलों से शिरः स्पर्श कर रही है। इसका हृदय लीला के भाव से परिपूर्ण है। यह मेरे दोनों नेत्रों के सामने कालकल्पना से मुक्त होकर प्रकाशित होती रहे।। १६।।

: १७ :

पूर्णानन्ददया दृशा रसदया शश्वत्प्रसादोदया,
ब्रह्मज्ञानविनोदया जनमनोमोदाय निःखेदया।
विश्वप्रेमविकासहासमुदया जनमनोमोदाय निःखेदया।
विश्वप्रेमविकासहासमुदया त्रैलोक्यसम्पद्दया,
पूर्णानन्ददया मदीयमनसे कञ्चित्कणां यच्छतु।।

श्रीपूर्णानन्दतीर्थकी दया अपनी पूर्णानन्ददायिनी दृष्टि से मेरे मन को एक छोटी–सी कणिका का दान कर दे। वह दृष्टि रसदायिनी है, निरन्तर प्रेम–प्रसाद से आर्द्र है। ब्रह्मज्ञानविनोदिनी है, प्रेमी भक्तों को आनन्द देने के लिए अश्रान्त जागरूक है। हास्य–प्रमोद

के द्वारा विश्व–प्रेम को विकसित करती है। त्रैलोक्य–सम्पदाका दान करती रहती है। हाँ, ऐसी है यह उनकी दृष्टि।। १७।।

: १८ :

श्रीकृष्णार्जुनसङ्कथामृतनिधेर्धीरं गभीरं तलं,
तत्त्वान्वेषणतत्परैरधिगतं कैःकैर्न सद्धीवरैः।
किन्तु प्रत्नविचाररत्ननिकरानानीय दाने प्रभुः,
पूर्णानन्दमृते न कश्चिदिति तं सर्वात्मना संश्रये।।

श्रीकृष्ण–अर्जुन का संवाद अमृत का समुद्र है। उसके धीर–गम्भीर तलकी थाह तत्त्वान्वेषण–तत्पर किन–किन सद्धीमान् धीवरों ने नहीं पायी अर्थात् बहुतों ने पायी ; क्योंकि उनके हृदय में तत्त्वानुसन्धान के लिए पूर्ण तत्परता थी, परन्तु प्राचीन विचार रत्नों की राशि ढूँढ़कर लाने और लोगों को देने का सामर्थ्य जैसा श्रीपूर्णानन्दजी तीर्थ में है वैसा उनके अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है। अतएव सर्वात्मना मैं उनका आश्रय ग्रहण करता हूँ।। १८।।

: १६ :

जीवन्मुक्तिर्विशिष्टा बतविगतवपुर्मुक्तिरिष्टेतिपृष्टः,
सुस्पष्टं योन्वगृहणाद् उभयमपि मृषा सादितासान्तताभ्याम्।
मोहापायोपलक्ष्यः स्वयमयमभयो मुक्तिरात्मैव नान्या,
पूर्णानन्दाय तस्मै प्रणिहितमनसा संदधेऽहं नमांसि।।

यह पूछने पर कि जीवन–मुक्ति श्रेष्ठ है अथवा विदेह मुक्ति ? श्रीमहाराजने स्पष्ट अनुग्रह किया कि दोनों ही मिथ्या हैं, क्योंकि दोनों ही आदि–अन्तवाली अनित्य हैं। अज्ञान के विनाश से

उपलक्षित आत्मा ही मुक्ति है और कुछ मुक्ति नहीं है। ऐसा लोकोत्तर उत्तर देने वाले श्रीपूर्णानन्दतीर्थजी महाराज को एकाग्र मनसे मैं बार–बार नमस्कारकर ध्यान करता हूँ।। १६।।

: २० :

स्वर्णस्वर्णप्रभाभिः श्रुतिहृदयनभोव्यापिनीभिर्मनोज्ञ,
भावाभावप्रभावोज्झितहितमणिभिर्विस्फरद्भिः प्रपूर्णा।
श्रीपूर्णानन्दतीर्थागमनिगम रसोल्लास सम्पन्निधानी,
मञ्जूषा काऽपि वाणी मम मनसि मनाङ् मन्दिरे चाकसी।।

सुवर्ण के समान चमकते हुए वर्णों से श्रुति दयरूप आकाश में झिलमिल–झिलमिल अपनी सुन्दरता को फैला रही है। भावाभाव के प्रभाव से मुक्त हितरूप मणियों से परिपूर्ण है। श्रीपूर्णानन्दतीर्थ के आगम–निगम रूप रसोल्लास सम्पादाका निधान है। यह कल्याणदायिनी निर्वाण–प्रकाशिका वाणी रूप मञ्जूषा मेरे मन–मन्दिर में जगमग–जगमग प्रकाशती रहे।। २०।।

: २१ :

वैकुण्ठः केन दृष्टः श्रवण पथगतः स्वप्नवद् भाति चित्ते,
तद्वृत्तीनां निरोधः सहजशयनवत् तत्र को वा प्रमोदः।
प्राक्प्रत्यग्भावमुक्तं तदिदमहमिति ब्रह्म पूर्णं नचान्यत्,
पूर्णानन्दोपदेशो दिशि विदिशि सदामङ्गलं देदिशीतु।।

"वैकुण्ठ किसने देखा है? वह तो केवल सुना हुआ है और चित्त में स्वप्न के समान भासता है। योग के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध सहज सुषुप्ति के समान ही है। उसमें कौन–सा आनन्द धरा

है ? आन्तर और बाह्य भाव से रहित एवं वह, यह तथा मैं–के रूप में भासमान केवल पूर्ण ब्रह्म ही है, दूसरी कोई वस्तु नहीं है।" श्री पूर्णानन्दतीर्थजी का यह उपदेश प्रत्येक दिशा एवं विदिशा में सदा मंगल का विस्तार करे।। २१।।

: २२ :

अखण्डानन्दसम्बोधपूर्तये ब्रह्ममूर्त्तये।
सुधास्मितसमाश्लिष्टनेत्रान्तस्फूर्तये नमः।।

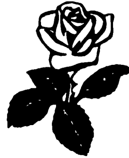
वे अखण्डानन्द–बोध की सम्पूर्ति हैं। ब्रह्म की मूर्ति हैं। सुधाभरी मुस्कान से समाशिलष्ट उनके नयनकोण छलकते रहते हैं। गुरुदेव श्रीपूर्णानन्दतीर्थ को नमस्कार है।। २२।।

इति श्रीमत्स्वामि अखण्डानन्दसरस्वती-विरचित-
गुरुदेवश्रीअखण्डानन्दतीर्थस्तवः
विश्रामः

इति श्रीमत्स्वामि अखण्डानन्द–सरस्वती–विरचित–
गुरुदेवश्रीपूर्णानन्दतीर्थस्तवः
विश्रामः



अनुक्रमणिका



समर्पण

हे दीनबन्धु पतित पावन शरणागत
वत्सल अनाश्रितों के आश्रय यह
आपकी वस्तु आपको समर्पित है।

आपका दास
जनार्दन चतुर्वेदी



श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण

द्वितीय खण्ड



वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज, अहमदाबाद

आत्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूति कामः। (मु० उ० ३। १। १०)
स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैवभवति। (मु० ३। २। ६ उ०)

पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ श्री उड़िया बाबाजी महाराज का मुझसे बहुत बार सम्मिलिन हुआ। उनका प्रेम दिनों—दिन मुझपर बढ़ता ही गया। वृन्दावन आनेपर मैं तो विचार ही करता रह जाता था कि बाबाजी से मिलने चलूँ कि वे मेरे आने की सूचना पाकर पहले ही अपने मण्डलसहित श्रौतमुनि निवास में आ जाते थे। एक बार मैं स्टेशन पर उतरकर श्रौत्तमुनि निवास में न जाकर सीधा बाबा जी के दर्शनार्थ उनके आश्रम पर ही पहुँचा। उन्होंने पूछा, "आप कब आए ?" मैंने उत्तर दिया, " अभी आ रहा हूँ।" वे बोले "इतनी शीघ्रता क्यों ? श्रौतमुनि निवास में नहीं गये ?" मैं बोला "क्या करें, आपके पास पहुँचने से पहले ही आप मेरे पास पहुँच जाते

हैं। इसलिए डर बना रहता है कि कहीं आपही पहले न पहुँच जांय।'' अधिक क्या कहें? बाबाजी स्वयं अमानी और दूसरे के लिए मानद थे।

एक बार श्रौतमुनि निवास में भण्डारा था। श्रीबाबाजी को आमन्त्रण देने में मुझसे भूल हो गयी। ठीक पंक्ति लगते समय मुझे स्मरण हुआ कि बाबाजी को आमन्त्रित करना भूल गये। अपनी भूलपर पश्चात्ताप करते हुए मैंने तुरन्त एक व्यक्ति को सेवा में प्रार्थना करने के लिए भेजा। उस समय आप भोजन कर रहे थे। भोजन छोड़ कर तुरन्त चल दिए और पंक्ति में मेरे साथ सम्मिलित हुए। आप बतलायें ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष के अतिरिक्त और कौन व्यक्ति ऐसा कर सकता है?

बाबाजी सतत ब्रह्मचर्चा में निरत रहते थे। वे स्वयं तो आत्मनिष्ठ थे ही दूसरों के लिए भी आत्मनिष्ठा का द्वार खोलने का प्रयत्न करते रहते है। वे आनात्मचर्चा कभी नहीं करते थे। 'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया। न दद्यादवसरं कञ्चित्कामादीनां मनागपि'* यह सिद्धान्त उनके जीवन में अक्षरशः सत्य था। कई बार जब उनसे मेरा मिलन होता तो वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तों पर विचार हुआ करता था। यहां उदाहरणार्थ केवल एक विचार पाठकों के समक्ष रखा जाता है—

एक बार बाबाजी श्रौतमुनि निवास के ऊपर वाले कमरे में जहाँ मैं ठहरता हूँ मेरे पास आये। उनके साथ पल्टू स्वामी एवं रामदासजी आदि कई भक्तजन भी थे। बाबाने गीता के पन्द्रहवें अध्याय के पुरुषोत्तम तत्व सम्बन्धी विषय पर विचार प्रारम्भ किया। बोले, ''भैया! क्षर, अक्षर एवं

* सोने और मरने पर्यन्त वेदान्तचिन्तन में ही समय बितावे। कामादि दोषों के लिए कभी थोड़ा भी अवसर न दे।

पुरुषोत्तम ये तीनों क्या हैं ? आप इस पर कुछ सुनायें।'' आज्ञा पाकर मैंने इस विषय का वर्णन आरम्भ किया–''महाराज ! 'क्षर' शब्द का अर्थ विनश्वर प्रकृति या कार्य प्रपञ्च है, 'अक्षर' शब्द का अर्थ सापेक्ष अविनाशी जगत् का मूल कारण प्रधान तत्त्व है तथा प्रकृति एवं प्रकृति के कार्य प्रपञ्च की कल्पना का अधिष्ठान अखण्ड सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म 'पुरुषोत्तम' पद का अर्थ है। किसी–किसी आचार्य ने 'अक्षर' शब्द का अर्थ जीवात्मा भी माना है। माया के कपटमय भोग्यरूप प्रपञ्च में वह भोक्तारूप से वर्तमान रहता है। अतः वह कूटस्थ कहा जाता है।'' बाबाजी व्याख्या को सुनकर प्रसन्न हुए। उनके साथ शास्त्रीय विषयों पर जो विचार होते रहे हैं यदि वे लिपिबद्ध किये जाँय तो इस संस्मरण का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जायगा।

बाबाजी जिस वर्ष ब्रह्मलीन हुए थे उसी वर्ष होली के अवसर पर मेरी उनसे भेंट हुई थी। मैंने उनसे उत्सवादिसे अलग रहने की अनुमति माँगते हुए कहा, ''महाराज ! ये महोत्सवादि मनाने में बहुत विक्षेप होता है। भूल से कार्यकर्ताओं द्वारा कई व्यक्तियों का अपमान हो जाता है तथा जनसंसर्ग के कारण एकान्त भाव से ब्रह्मचिन्तन में भी बाधा होती है।'' उत्तर में महाराज ने एकही बात कही, ''भैया ! इन प्रवृत्तिप्रधान कार्यों को छोड़ना तो एक ओर रहा, संहार ही कर डालूँगा।'' इस वाक्य के गूढ़ तत्व की ओर मेरी दृष्टि नहीं गयी कि आप इस वर्ष लीला–संवरण करना चाहते हैं। उनका संकेत इस ओर ही था।



सर्वतन्त्रस्वतन्त्र न्यस्तदण्ड
पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती, वृन्दावन

(१)

स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूप ब्रह्मही सम्पूर्ण नाम रूपात्मक प्रपञ्च के रूप में प्रतिभासित हो रहा है। वह स्वयंही विषय और विषयी के द्विविध रूप में विवर्तमान होकर भी अपने अद्वितीय निर्विकार स्वरूप में ही प्रतिष्ठित है। इस अनिर्वचनीय विश्व में जो अलौकिक, पारलौकिक अथवा अलौंकिक दिव्य चमत्कार चमक रहा है, इनसे उसकी एकरस अनुभवस्वरूप अद्वितीयता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। विश्व के एक–एक कण में विराजमान अगणित वैचित्र्य एवं परस्पर विलक्षणताएँ उनके निर्निमित भेद रहित अभयादि स्वतन्त्र्य का ही उद्घोष करती हैं। निखिल वेद्य पदार्थ अपने परमस्वरूप की एकता, अधिष्ठानता एवं चिन्मात्रता से ही उद्भासित हैं। वह परमस्वरूप भी प्रत्येक् चैतन्य से भिन्न होने पर तो अनुभाव्य, जड़ एवं विकारी सिद्ध होगा। तथा उस अविनाशी सत् से भिन्न होने पर यह प्रत्यक् चैतन्य भी क्षणिक एंव विनश्वर हो जायेगा। अतः परमार्थ सत्ता एवं प्रत्यक् चैतन्य का भेद अनुभव–विरुद्ध है। इस भेद रहित उपलब्धिका

एकमात्र द्वार है वह महापुरुष जो ऐक्यबोध की प्रचण्ड ज्वाला में अविद्या और उसके विलास को भस्मसात् कर चुका है।

कहना न होगा कि हमारे महाराज ऐसे ही जीवन्मुक्त महापुरुष थे। प्रत्यक्ष दर्शन के पूर्व भी सत्संगियों द्वारा उनकी महिमा सुनकर तथा 'कल्याण' में उनके उपदेश पढ़कर मेरे हृदय में उनके प्रति एक महान् आकर्षण था परन्तु उनके दर्शन का सौभाग्य तो तब प्राप्त हुआ जब वे स्वयं कृपाकरके प्रयागराज पधारे। उन दिनों मैं कथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलता था। कथा में ही उस चलते–फिरते ब्रह्मका दर्शन करने के अनन्तर सायंकालीन सत्संग में मैंने उनसे प्रश्न किया–"पुनर्जन्म किस वस्तु का होता है?"

मैंने अपने मन में यह सोचा था कि वे वेदान्तियों और वेदान्तग्रन्थों में प्रसिद्ध यह उत्तर देंगे कि सत्रह तत्वोंवाले लिंग शरीरकाही पुनर्जन्म होता है। साथ ही कहेंगे कि मनुष्य इस जन्म में जो सुख–दुःखरूप फल भोग रहा है इससे पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों की सिद्धि होती है तथा इस जन्म में किये जाने वाले कर्मों के फल अभी देखने में नहीं आते, इसलिए आगामी जन्म की सिद्धि होती है। ऐसा न मानने पर अकृताभ्यागम[१] और कृतविप्रणाश[२] दो दोषों की प्राप्ति होगी तथा ईश्वर में पक्षपात और निर्दयता के दोषों का प्रसंग उपस्थित होगा। अतः पुनर्जन्म अवश्य स्वीकार करना चाहिए। इसके पश्चात् पूछने के लिये मनही मन यह सोच रखा था कि लिंग शरीर का ही जन्म होता है तो हुआ करे, मैं तो द्रष्टा हूँ, उससे मेरा क्या सम्बंध? मैं (आत्मा) तो द्रष्टा हूँ, इसलिए मेरे लिए तो पुनर्जन्म के निवारण का प्रयत्न करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

---

१. बिना किये कर्म के फल की प्राप्ति।

२. किये हुये कर्म के फल का नाश।

परन्तु यह सब तो मेरा मनोराज्य था। उनका उत्तर था अश्रुतपूर्व ! उन्होंने कहा, "विचार पुनर्जन्म के निषेध के लिए किया जाता है, सिद्धि के लिए नहीं।" इतना कहकर वे हँसने लगे। मैं इस अतर्कित उत्तर पर आश्चर्यचकित रह गया। बात कितनी सीधी–सादी किन्तु मर्मस्पर्शी है। अविद्या से सिद्ध वस्तु की उपपत्ति के लिए विचार को क्या आवश्यकता है ? उसकी तो निवृत्ति का ही प्रयत्न करना चाहिये।

(२)

उन्हीं दिनों की बात है, झूसी के सुप्रसिद्ध संत ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी के यहाँ एकवर्षीय नामयज्ञ की पूर्णाहुति का समारोह था। मैं भी साधक रूप में इस यज्ञ का एक होता था। महाराजश्री के तत्त्वावधान में इस महोत्सव का आयोजन हुआ था। अन्त में प्रयाग पंचक्रोशी की परिक्रमा हुई। बाबा के एक निजजन थे ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी। निजजन क्या, भक्तों की भावना के अनुसार तो वे बाबा के पुत्र ही थे। बाबा में भक्तों का शंकरभाव था और ब्रह्मचारी जी को वे साक्षात् गणेश ही मानते थे। आकृति–प्रकृति से भी वे गणेशज़ी ही जान पड़ते थे। अधिकतर इसी नाम से उनकी प्रसिद्धि भी थी। एक दिन उनसे कुछ परमार्थ चर्चा होने लगी। गणेशजी ने पूछा, 'भगवान् कृष्ण के उपासक विविध रूपों में उनकी उपासना करते हैं। कोई बालरूप में, कोई किशोर रूप में, कोई गोपीवल्लभ रूप में और कोई पार्थसारथि के रूप में। इन सबको क्या एक ही कृष्ण के दर्शन होते हैं ?"

मैं–एक ही कृष्ण के दर्शन क्यों होंगे ? भक्त के भाव भेद अनुसार श्रीकृष्ण भी अनेक होंगे।

गणेशजी–ऐसा कैसे हो सकता है ? इस प्रकार तो अनेक ईश्वर सिद्ध होंगे।

मैं–ईश्वर तो एक ही है। परन्तु भगवान् का साकार विग्रह तो भक्त की भावना के अधीन है। वे भक्त के भगवान् हैं। इसी से तो भावुक भक्त वृन्दाबनबिहारी, मथुरानाथ और द्वारकाधीश को अलग–अलग मानते हैं।

इस प्रकार कुछ देर हम दोनों का परस्पर विचार–विनिमय होता रहा। गणेशजी का कथन था कि एक ही कृष्ण भक्तों की भावना के अनुसार विभिन्न रूपों में दर्शन देते हैं और मैं कहता था कि परमार्थतत्त्व में ईश्वरता तो आरोपित ही है और ईश्वर का व्यक्तित्व तो भक्त की भावना के अधीन है। अतः भक्तों के भाव भेद के अनुसार वे सब अलग–अलग हैं। फिर यही प्रश्न हमने श्रीमहाराजजी से किया। उन्होंने कहा, 'अरे ! प्रत्येक भक्त के कृष्ण अलग–अलग हैं–यही नहीं प्रत्युत प्रत्येक भक्त भी जब–जब दर्शन करता है उसे नवीन कृष्णका ही साक्षात्कार होता है, क्योंकि दृष्टि ही सृष्टि है। प्रत्येक दृश्य हमारी वृत्तिका ही तो विलास है। भगवद्दर्शन भी क्या बिना ही वृत्ति के होता है। अतः भक्त जब जब भगवदाकार वृत्ति करता है उसे नवीन भगवन्मूर्तिका ही दर्शन होता है। भगवान् तो एक भी हैं और अनेक भी। स्वरूपतः वे एक हैं और भक्तों के लिए अनेक।''

(३)

हमारे महाराजश्री तत्वनिष्ठ नहीं, स्वयं तत्वही थे। उनकी वाणी तत्त्वज्ञकी नहीं, स्वयं तत्त्वकी ही वाणी होती थी। वे उसी की भाषा में बोलते थे। इन्हीं दिनों की बात है। 'कल्याण' का वेदान्तांक प्रकाशित होने वाला था। उसके लिए आपके उपदेशों का संग्रह करने के उद्देश्य से कल्याण परिवार के कुछ सदस्य आये हुए थे। उनके तथा अन्यान्य जिज्ञासुओं के साथ आपका वेदान्त विषयक सत्संग चलता था। उसमें मैं भी सम्मिलित होता था। एकदिन मैंने

पूछा, 'महाराजजी ! आत्मा तो अपना स्वरूपही है। अतः वह अपने से कभी परोक्ष हो ही नहीं सकता। फिर आत्मा का परोक्ष ज्ञान कैसे ?''

मैं तो समझता था कि आप कहेंगे, 'ज्ञान सर्वदा अपरोक्ष ही होता है।' परन्तु आपने बड़ा ही चमत्कारपूर्ण उत्तर दिया। बोले, ''ज्ञान अपरोक्ष भी नहीं है रे ! जो स्वयं है उसका क्या परोक्ष और क्या अपरोक्ष। केवल जिज्ञासुओं का भ्रम मिटाने के लिए ही परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान की कल्पना की जाती है।'' मैं सुनकर चकित रह गया। मैंने इस प्रकार का खुला उत्तर पहले कभी नहीं सुना था। यद्यपि उस समय मुझे दृढ़ निश्चय था कि मैं तत्त्वज्ञानी हूँ। इसी प्रकार एक बार जब मैंने पूछा, ''महाराजजी ! जीवनमुक्ति श्रेष्ठ है या विदेहमुक्ति ? तो आप बोले, 'भैया ! इनका संकल्प ही अमंगल है।'' ऐसी थी आपकी तत्वदृष्टि।

(४)

मैं पूर्वाश्रम में और संन्यास लेने के पश्चात् भी अनेकों वर्ष श्रीमहाराजजी की सन्निधि में रहा हूँ। वे मुझे नित्य नये ही जान पड़ते थे। उनका अनुग्रह क्षण–क्षण में प्रकट होता रहता था। वर्षों बीत जाने पर भी उनकी गूढ़ोक्तियों को सुनकर आश्चर्य होता था। हम ज्यों–ज्यों उनके निकट सम्पर्क में आते थे त्यों–त्यों उनका स्वरूप और भी आश्चर्यमय प्रतीत होता था। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मतत्त्व के विषय में जो आश्चर्यरूपता की बात कही है वह उनके तो व्यक्तित्व के विषय में ही चरितार्थ होती थी–

'आश्चर्यवद् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।

(२। २९)

कारण कि वे अपने व्यक्तित्व को सर्वथा मिटा चुके थे अब जो चरम और परम तत्त्व निषेधावधिरूप से अवशिष्ट था वही

भक्तों की भावना से व्यक्तित्व के रूप में भासता था। स्वयं अपनी दृष्टि में तो वे सर्वातीत अथवा सर्व स्वरूप ही थे।

किसी जिज्ञासु ने पूछा, "भगवन्! आप ब्रह्म हैं?"

श्रीमहाराजजी—क्या तू ब्रह्म को आँखों से देख कर पूछ रहा है?

जिज्ञासु—तब क्या आप ज्ञानी हैं?

श्रीमहाराजजी—ज्ञान होने पर भी क्या ज्ञान का अभिमानी कोई धर्मी रहता है?

जिज्ञासु—तब क्या आप अज्ञानी हैं?

श्रीमहाराजजी—बावले हो। क्या अज्ञान कभी दृष्टि में आया है?

जिज्ञासु—तब आप कौन हैं?

श्रीमहाराजजी—तुम जितना देख रहे हो उसी के विषय में पूछो। तुम मुझे काम करता देखते हो। बस, मैं चराचर का सेवक हूँ।

हम लोगों को ऐसे उत्तर का अनुमान नहीं था। जिज्ञासु का मन श्रद्धा से झुक गया। उसने मन ही मन कहा, चराचर के सेवक तो भगवान् ही हैं, अथवा वे सन्त हैं जो उनसे एक हो चुके हैं।

(५)

श्रीमुनिलालजी आदि कुछ भक्त आपकी जीवनी लिखना चाहते थे। परन्तु आपके अलौकिक चरित्र का चित्रण कैसे किया जाय—यह उनकी समझ में नहीं आता था। एक दिन किसी ने आपसे पूछा, "प्रभो! संन्तों की जीवनी कैसी लिखनी चाहिये? आप बोले, "सन्तों की जीवनी कागज पर नहीं, दिल पर लिखनी चाहिए।" सचमुच सन्तों की जीवनी कागज पर लिखने की वस्तु है ही नहीं। सन्त का जीवन

तो सन्तत्त्व का जीवन है। वह अमर और एकरस है। उसका आविर्भाव हृदय में ही होता है। जो संत के जीवन की एक हल्की सी झाँकी पा लेता है वह स्वयं सन्त हो जाता है।

(६)

महाराजश्री के सामने मैंने उनके आश्रम में बहुत दिन तक श्रीमद्भागवत आदि सद्ग्रन्थों की कथा कही है। एक दिन किसी प्रसंगवश मैंने कहा, "जीव अपने को भगवान् का भोग्य समझने लगे–इसी का नाम भक्ति है। भक्त की दृष्टि अपने सुख पर कभी नहीं होती, वह तो सर्वदा अपने प्रियतम को ही सुख प्रदान करना चाहता है।" कथा समाप्त होने पर सायंकाल में जब मैं आश्रम की छतपर आपके सत्संग में गया तो इसी प्रसंग को लेकर चर्चा चली। आप बोले, "भैया ! जीव का परम प्रेमास्पद तो अपना आत्मा ही है। वह भ्रम से भले ही किसी अन्य को अपना प्रियतम माने। जीव चेतन है, अतः वह कभी किसी का भोग्य या दृश्य नहीं हो सकता। वस्तुतः वही सबका भोक्ता या द्रष्टा है। जो जीव विषय का भोक्ता होता है उसे 'संसारी' कहते हैं और जो भगवान् का भोक्ता होता है वह 'भक्त' कहलाता है। इसी प्रकार समाधि का भोक्ता 'योगी' कहा जाता है और जो भोक्ता एवं भोग्य का बाध कर देता है वह 'ज्ञानी' है। 'मैं भगवान् का भोग्य हूँ' इस भावना में जो दिव्य एवं अलौकिक रस है भक्त उसका भोक्ता ही है। 'मैं भोग्य हूँ' यह भावना तो उसकी भोग्य ही है। अतः आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' भवति' (वृ.उ. २।४।५) यह श्रुति समानरूप से सभी जीवों के स्वभाव का निर्देश करती है।"

(७)

श्री महाराज जी जिन लोगों के साथ वेदान्तचर्चा करते थे उनसे ब्रह्माभ्यास की बात प्रायः कहा करते थे। उनका कथन था कि तत्त्वज्ञान हो जाने पर भी निरन्तर ब्रह्माभ्यास में तत्पर रहना चाहिये। परन्तु मेरी बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती थी। भला, जो कर्ता, कार्य, करण सभी से अतीत सर्वाधिष्ठानभूत स्वयंप्रकाश प्रत्यक्‌चैतन्य में परिनिष्ठित है उस तत्त्ववेत्ता के लिये किसी भी प्रकार के साध्य–साधन की बात कैसे कही जा सकती है ? जिसमें कर्तृत्व ही नहीं उसके लिये किस कर्त्तव्य का विधान किया जा सकता है ? अतः एक दिन मैंने एकान्त में पूछा, "महाराजजी ! तत्त्वज्ञ के लिये तो शास्त्र किसी भी कर्त्तव्य का विधान नहीं करता। फिर आप ब्रह्माभ्यास का प्रतिपादन किस दृष्टि से करते हैं ?" आप बोले, "भैया ! ये लोग कुछ जानते तो हैं नहीं। अभ्यास भी छोड़ देंगे तो साधनहीन हो जायेंगे। मैं इसीलिये ब्रह्माभ्यास पर जोर देता हूँ जिससे साधन में लगे रहने से इनकी निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर प्रगति होती रहे।" मैंने पूछा, "ब्रह्माभ्यास का स्वरूप क्या है ?" आप बोले, "ब्रह्म क्या अभ्यास की वस्तु है ? अरे ! सब प्रकार के अभ्यासों का निषेध ही ब्रह्माभ्यास है। मैं किसी भावनात्मक अभ्यास की बात थोड़े ही कहता हूँ।"

(८)

"एक बार मैंने पूछा, महाराज जी ! ध्यान किसका करना चाहिए ?"

आप बोले, "अपना।"

मैं–'अपना' से क्या आशय ? क्या अपने आत्मा का ?

आप–आत्मा क्या किसी का ध्येय हो सकता है ? मेरा आशय है–अपने शरीर का।

मैं—शरीर का ध्यान करने से क्या लाभ होगा? ध्याता जिसका ध्यान करता है अन्त में उससे उसका तादात्म्य हो जाता है। अतः शरीर का ध्यान करने से तो शरीर से ही तादात्म्य होगा।

आप—तादात्म्य तो तब होता है जब ध्येय में उपादेय बुद्धि होती है। मैं उपादेय बुद्धि रख कर शरीर का ध्यान करने की बात नहीं कहता। यदि उपादेय बुद्धि न रख कर शरीर का ध्यान किया जायगा तो वह इसी प्रकार अपने से पृथक भासेगा जैसे घटद्रष्टा से घट। इस प्रकार अपने से शरीर का पार्थक्य अनुभव होने से तो असंगता ही बढ़ेगी।

(९)

श्रीभोलेबाबाजी एक सुप्रसिद्ध वेदान्तनिष्ठ सन्त थे। जब उनका देहावसान हुआ तो मैंने श्रीमहाराज जी से पूछा, "क्या श्री भोलेबाबाजी की मुक्ति हो गयी होगी?" आप बोले, "मुक्ति क्या मरने से होती है? जो मुक्त है वह तो सर्वदा ही मुक्त है। जीना—मरना तो स्वप्न के समान केवल प्रतीतिमात्र है।

(१०)

मैंने गुरुतत्व के सम्बन्ध में शास्त्रों में बहुत कुछ पढ़ा—लिखा था और सोचा—समझा भी था। परन्तु इस सम्बन्ध में महाराज श्री ने जो बात बतायी वह उसके पहले मेरी बुद्धि में उतनी स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने कहा कि अधिकारी को भगवत्प्राप्ति अथवा परमार्थतत्त्व का साक्षात्कार कराने के लिये स्वयं पूर्णता ही आकारविशेष के रूप में साधक के हृदय में आविर्भूत होती है। बाहर का आकार तो केवल निमित्त मात्र ही होता है। सम्बन्ध सर्वथा मानसिक वस्तु है

और वह मानसमूर्त्ति के साथ होता है। इसलिये बाहर गुरुमूर्ति के मरने, बिछुड़ने या संसारी लोगों की दृष्टि से प़तित हो जाने से भी उन बातों का सम्बन्ध अपनी मानसी मूर्त्ति के साथ किञ्चित् नहीं होता। अपनी वासना के अनुसार जितनी भी स्वप्नवत् सृष्टियाँ बनेंगी, जन्म–जन्मान्तर होंगे। अन्तरतल के गम्भीर प्रदेश में विराजमान वह गुरुदेव भी बार–बार अपने शिष्य के साथ जन्म लेते रहेंगे। साधक के हृदय में विराजमान जो गुरुमूर्त्ति है वह तब तक उसी में रहेगी जब तक ग्रन्थिभेद होकर अन्तःकरण बाधित नहीं हो जाता अथवा प्रतिभास नाश होकर विदेह मुक्ति नहीं हो जाती। इसको यों कह सकते हैं कि यदि किसी साधक को एक बार ठीक ठीक गुरुदेव की प्राप्ति हो गयी तो वे दोनों सर्वदा के लिये परस्पर बँध गये। दोनों साथ ही साथ मुक्त होंगे। शिष्य की मुक्ति हुए बिना हृदय में विराजमान गुरुदेव की भी मुक्ति नहीं हो सकती।

कहना नहीं होगा कि उनके इस उपदेश के पूर्व इस संबंध में मेरी जानकारी इतनी स्पष्ट नहीं थी और तब मुझे उन महात्मा के बचनों के अर्थ का साक्षात्कार हुआ जिन्होंने अपने एक शिष्य से कहा था कि बेटा ! जब तक तू मुक्त नहीं होगा, मैं मुक्ति स्वीकार नहीं करूँगा।

(११)

महापुरुष साधक के जीवन में बाह्यरूप से ही पथप्रदर्शन नहीं करते, वे उसकी अन्तश्चेतना में आविर्भूत होकर भी समय–समय पर आवश्यक स्फूर्ति प्रदान करते रहते हैं। इसी से साधकों का जिन सन्तों से आध्यात्मिक सम्बन्ध हो जाता है वे कभी–कभी स्वप्न और ध्यानादि के समय भी प्रकट होकर उन्हें पथ प्रदर्शित करते रहते हैं। श्रीमहाराजजी के भक्तों से ऐसे स्वप्नसम्बन्धी सैकड़ों अनुभव सुने गये हैं।

मेरी यद्यपि स्वप्नों में कोई विषेष आस्था नहीं थी तथापि दो–तीन बार मुझे भी उनके विषय में बड़े विचित्र स्वप्न देखने में आये। एक बार तो मैंने उन्हें श्रीकृष्ण के समान कटि–काछिनी और मुकुट आदि धारण किये देखा। दूसरी बार ऐसा हुआ कि मेरे पितामहजी ने कुछ भूमि खरीदी थी। उसका जब हम उपयोग करने लगे तो उसमें प्रेतों ने कुछ बाधा उपस्थित की। उस समय मैंने स्वप्न में देखा कि श्रीमहाराजजी उसी स्थानपर १ चबूतरे पर बैठे हैं और कह रहे हैं कि तुम इस भूमिको जोत–बो तो सकते हो, परन्तु इसकी पैदावार कोई अपने काम में मत लाना, उसे धर्मार्थं लगा देना। हमने ऐसा ही किया और फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ।

तीसरी बार एक बड़ा ही विलक्षण स्वप्न देखा। मैंने स्वप्न में भी अपने को उसी कुटी में देखा जिसमें कि मैं सोया हुआ था। वहाँ दो तख्त पड़े देखे। उनमें से १ पर मैं लेटा हुआ हूँ और दूसरे पर श्रीमहाराजजी आकर लेट गये। फिर देखा कि वे दोनों तख्त मिलकर १ हो गये हैं और महाराजश्री मेरा आलिंगन किये हुए हैं। उस आलिंगन के द्वारा मैं मानों उनसे अभिन्न हो गया हूँ। उस अवस्था में मुझ वे ही दीखते थे, अपना आप मानों लुप्त हो गया था। इस प्रकार स्वप्न में मुझे उनसे अभिन्नता का अनुभव हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् आपका निर्वाण हुआ। निर्वाणोत्सव समाप्त होने पर मैं अपने कुछ साथियों के सहित गोवर्धन की परिक्रमाको गया। परिक्रमा के मार्ग में कुछ समय के लिये मैं अकेला रह गया। सब साथी मुझसे बिछुड़ गये। उस समय स्वयं ही मेरे मन में कुछ मनोराज्य होने लगा। मैंने देखा–सामने से श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। उन्होंने मुझे आलिंगन किया है और मैं उन से अभिन्न हो गया हूँ। कुछ देर यह स्थिति रही। फिर मैं सचेत हो गया और थोड़ी देर में ही मेरे साथी भी मिल गये।

(१२)

ऐसा था हमारे महाराजश्री का अलौकिक स्वरूप। उनके विचार का उत्कर्ष, चित्त की समाधि, जीवन की प्रेममयता और रहनी की सादगी पास रहकर देखने योग्य थीं। भक्त लोग उनको सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् मानते थे। बहुतों के तो वे गुरु देव ही नहीं इष्टदेव भी थे।

एक दिन की बात है। अभी मैं सन्यासी नहीं हुआ था। रात्रि के समय आश्रम की छतपर लेटा हुआ था। मेरे पास थें १ सन्यासी मित्र स्वामी निर्मलदासजी। हम दोनों ने निश्चय किया कि कहीं एकान्त में चलकर दोनों साथ–साथ रहें। प्रातः काल चार बजे हम दोनों वेदान्त के सत्संग में श्रीमहाराजजी के पास गये। आप बोले "शान्तनु"* ! तुम दोनों का साथ रहना ठीक नहीं है।"

मैंने मन ही मन सोचा–'क्या महाराजजी ने हमारी बात जानली है ? यदि ऐसी बात है तो इस समय ही ये मुझे खाने के लिये कोई चीज दें, तब मैं समझूँगा कि ये मेरे मन की बात जान गये हैं।' तुरन्त आपने एक सेवक को पुकार कर कहा, 'भैया ! शान्तनु को इस समय भूख लगी है। कुछ लाओ तो।" सेवक कुछ सामग्री ले आया और मुझे प्रसाद में बहुत से केले और पेड़े मिले। मैं लज्जा और संकोच से दब गया। क्या प्रातः काल चार बजे का समय भीं भोजन के लिये उपयुक्त होता है ? श्रीमहाराजजी के विषय में ऐसी एक नहीं, अनेकों घटनाएँ जीवन में देखी और सुनी हैं।

परन्तु सिद्धियों की बात को न तो वे महत्व देते थे और न मेरी दृष्टि में ही उनका विशेष महत्व है। वे तो अधिकतर ऐसी बातों को

* लेखक महोदय का पूर्वाश्रम का नाम 'पं० शान्तनु बिहारी द्विवेदी था।

स्वीकार भी नहीं करते थे। हमारी दृष्टि में तो उनका सबसे बड़ा चमत्कार यह था कि वे सभी से प्रेम करते थे, सभी को अपना मानते थे और हममें से प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि उनकी सबसे अधिक कृपा उसी पर है। यद्यपि उनके समीपवर्ती लोगों के रुचि, स्वभाव, साधन एव विचारों में बहुत अधिक भेद था, तथापि वे सभी को अपने जान पड़ते थे। वे भक्त के लिये भक्त, ज्ञानी के लिए ज्ञानी, कर्मी के लिए कर्मी और योगी के लिये योगी थे। श्रीरामभक्त उन्हें रामरूप में देखते थे, श्रीकृष्णभक्त कृष्णरूप में और शैवों को उन्होंने शिवरूप में दर्शन दिये थे। सौ–दो सौ मील रहनेवाले भक्तों ने भी समय–समय पर ऐसा अनुभव किया कि श्रीमहाराजजी ने प्रकट होकर उनके यहाँ भोग लगाया। भक्तों पर कोई आपत्ति–विपत्ति आ पड़ती तो वे उनके एकमात्र सहायक होते थे। मैं एक बार कर्णवास में बीमार पड़ गया था। उस समय महाराजजी रातभर नहीं सोये, मेरे ही आस–पास चक्कर काटते रहे।

निरभिमानता की तो वे मूर्त्ति ही थे। "साहिंब मानप्रद आपु अमानी।" आप सर्वदा पैदल ही यात्रा करते थे रास्ते में जब कोई आगे चलता दिखाई देता और कोई भक्त उससे रास्ता छोड़ने के लिए कहने को आगे बढ़ता तो आप उसे डाँट देते अथवा उसके कहने से पहले ही रास्ता काटकर आगे निकल जाते। इस बात का आप बहुत ध्यान रखते थे किसी को तनिक भी कष्ट न पहुँचने पावे। यदि आश्रम में कहीं गन्दगी दीख जाती या बर्तन जूठे पड़े होते तो किसी से कुछ भी न कहकर स्वयं ही झाड़ू लगाने या बर्तन माँजने के लिए दौड़ पड़ते। उनकी सभी के प्रति समदृष्टि थी। किसी को भूखा वे देख नहीं सकते थे। कई बार समागत

व्यक्ति को भोजन कराकर वे स्वयं भूखे रह जाते। अच्छा भोजन उनसे किया ही नहीं जाता था। खीर, पूड़ी, दूध मिठाई और फल आदि में उनकी स्वाभाविक ही अरुचि थी। स्वयं तो सबको भोजन करा देने के पश्चात् ही खाते थे। दूरवाले तो समझते थे कि ये गुरु हैं, पुजते हैं धनी हैं, मौज से रहते हैं परन्तु निकट वाले जानते थे कि वे एक–एक की पूजा में ही लगे रहते हैं, सबकी पूजा ही करते हैं। पास में एक कौड़ी नहीं रखते थे और कभी किसी से कुछ मांगते नहीं थे। कभी–कभी तो बिना कुछ ओढ़े–बिछाये पृथ्वी पर ही सो जाते थे। सचमुच वैराग्य की तो वे मूर्त्ति ही थे।

साधनकाल में आप कभी लेट कर नहीं सोते थे। पीछे भी कभी आपको दो–तीन घण्टे अधिक सोते हुए किसी ने नहीं देखा। अपनी निन्दा सुनकर आपको प्रसन्नता होती थी और जो निन्दा करता उसे अपने समीप रखकर सबसे अधिक उसी का आदर–सत्कार करते थे। दूसरों के साथ सम्बन्ध निभाना आप खूब जानते थे। जिससे जिस प्रकार पहले दिन मिले उसके साथ जीवनभर वैसा ही वर्ताव किया। किसी को बुलाना या हटाना तो आप जानते ही नहीं थे। ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसने आपके जीवन में कभी किसी विकार की छाया भी देखी हो। आपके मुखमंडल पर सर्वदा प्रसन्नता खेलती थी रोम–रोम उत्साह से फड़कता था। और आपकी चाल में अद्भुत मस्ती थी। वह ज्ञान प्रेम और आनन्द की मूर्त्ति अब कहाँ देखने को मिलेगी ?



पूज्य स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजी महाराज

पूज्य स्वामीजी अपने प्रेमद्वारा दूसरों को आकर्षित कर लेते थे। मेरा स्वभाव किसीके पास रहनेका नहीं है। इसीसे मैं प्रायः अलग एकान्तमें ही ठहरता हूँ। परन्तु स्वामीजीके प्रेमसे आकर्षित होकर मैं समय–समय पर उनके पास जाया करता था।

एकबार श्रीहरिबाबाजी के बाँध पर होली के अवसर पर विशाल महोत्सव हो रहा था। स्वामीजी भी वहीं थे। वहीं क्या थे ? उनके बिना तो वह उत्सव होता ही नहीं था। मैं भी पहुँच गया। अवसर पाकर बाबा मेरे सम्मुख कहने लगे, "जिसके स्थान पर रहे उसके अनुकूल होकर रहना चाहिए।" बात यह थी कि मुझे अपनी स्वतन्त्रता के अनुसार ही रहने का स्वभाव है। बाबा का अभिप्राय यह था कि जब हम हरिबाबाजी के बाँध पर हैं तब हमें उनके बनाये नियमों के अनुसार ही रहना चाहिये। यह बात उन्होंने सभी के हित की दृष्टि से कही थी।

श्रीवृन्दावन में स्वामीजी के आश्रम में नित्य ही रासलीला होती थी। मैं भी प्रायः नित्य ही वहाँ रास देखने के लिये जाता था। एक दिन स्वामीजी ने मुझसे पूछा, "आप किस भाव से रास देखते हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "विकाररहित परब्रह्म परमात्मा ही माया से युक्त हो श्रीकृष्ण और गोपिकाओंके रूपमें लीला कर रहे हैं ; मैं उनसे अपने को अभिन्न अनुभव करके रास देखता हूँ।" यह उत्तर सुनकर स्वामीजी चुप हो रहे ।

एक बार मैं स्वामीजी के पास रामघाट गया। उन दिनों उनके लिये भिक्षा यद्यपि श्रद्धालुओं द्वारा अपने–आप कुटिया पर ही

आ जाती थी, तथापि संन्यासी को भिक्षा करनी चाहिये इस नियम को लक्ष्य करके वे हर सातवें दिन स्वयं भी भिक्षा करने के लिये गाँव में जाते थे। एक दिन जब वे भिक्षा करने चले तो मैं भी उनके साथ चलने लगा। परन्तु उन्होंने मुझे रोक दिया और स्वयं चले गये। उनके चले जाने के पश्चात् मेरे मन में आया कि जब स्वामीजी भिक्षा करने गये हैं तो मैं ही क्यों रुकूँ? यह सोचकर मैं भी चल पड़ा। परन्तु वे भिक्षा लेकर लौटते हुए रास्तें में ही मिल गये और मुझे हाथ पकड़कर लौटा लाये। मेरे लिये वहीं भिक्षा आ गयी। उनका ऐसा प्रेममय व्यवहार हृदय को आकर्षित कर लेता था।

एकबार मैं श्रीस्वामीजी के पास कर्णवास गया। सत्संग हो रहा था। सत्संग समाप्त होने पर वे सभी भक्तों को अपने हाथ से रोटी बाँटने लगे। थोड़ी देर बाद ही जब मैं वहाँ से उठ कर चलने लगा तो वे मेरे मन के समाधान के निमित्त बोले, "क्या करें? यदि हम न बाँटें तो दूसरे लोग ठीक नहीं बाँटते, गड़बड़ कर देते हैं।" मैंने समझा कि कदाचित् मेरे उठकर चल देने से स्वामीजी ने मन में समझा है कि मैं यह सोचकर जा रहा हूँ कि सन्यासी को रोटी नहीं बाँटनी चाहिये। तब मैंने स्पष्ट कर दिया कि मेरे मन में ऐसी कोई शंका नहीं है कि सन्यासी होकर आपको रोटी नहीं बाँटनी चाहिये। आप तो सिद्ध पुरुष हैं। जो करते हैं वह ठीक ही है।

स्वामीजी की सिद्धियाँ मुख्य रूप से नहीं थीं। गौणरूप से थीं। महापुरुष सिद्धियों का मान नहीं करते। प्रत्युत परमार्थ प्राप्ति में तो सिद्धियाँ विघ्नरूप ही हैं। उनमें सबसे बड़ी सिद्धि यही थी कि वे तत्त्ववित् थे, ब्रह्मवेत्ता थे।



दण्डिस्वामी श्रीनारायणाश्रमजी, कर्णवास

पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित रहते थे। उनको किसी भी वस्तु की स्पृहा नहीं थी। जैसे पत्थर की शिला के ऊपर कितना ही जल बहने लगे, अथवा बिल्कुल भी न रहे, वह ज्यों की त्यों रहती है, उसी प्रकार कितनी भी विभूति आ जायँ उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती थी। वे उसमें आसक्त नहीं हो सकते थे। वे जैसे पहले थे वैसे ही विभूतियों के आने पर भी रहे। कभी स्वरूप से चलायमान नहीं हुए। अब भी वे वैसे ही हैं। हम उनके सम्बन्ध में क्या लिख सकते हैं। उनकी महिमा अनन्त है।



स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज, बम्बई वाले

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वर श्रीहरि की कृपा से सज्जन और दुर्जन सभी मिलते हैं। मैं मन्द वैराग्य होने के कारण बम्बई से भाग कर अनूपशहर श्रीगंगाजी के तट पर श्री भोलेबाबाजी के पास आया। चार–छः दिन रहने के बाद सुना कि रामघाट में श्री उड़ियाबाबाजी और बाँध पर श्रीहरिबाबाजी अच्छे सन्त हैं। तब मैंने रामघाट जाकर श्री उड़ियाबाबाजी महाराज के दर्शन किये। उनके दर्शन से मुझे अपार सुख हुआ और यह भावना हुई कि ये श्रीरामकृष्ण परमहंस हैं। तब से बाबा को मैं निरन्तर गुरु और ईश्वर रूप से ही देखता रहा हूँ तथा उनके सामने अपने को स्वामी विवेकानन्द की श्रेणी में मानता हूँ। बाबा की कृपा से मुझे बड़ी–बड़ी बातें समझने को मिलीं। मुझे दीन हीन गरीब ब्राह्मण समझकर आप मुझ पर सदैव दया कृपा रखते थे। आपकी कृपा से मुझे बड़े–बड़े सन्त महात्माओं के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक वर्ष आप कर्णवास में चातुर्मास्य कर रहे थे। मैं आपसे आज्ञा लेकर श्री वृन्दावन दर्शन करने के लिये पैदल गया। वहाँ मुझे अनुभव तो बड़े अच्छे हुए परन्तु अन्नका और ठहरने का कोई ठिकाना नहीं था। एक महीना ठहरकर मैं कर्णवास लौट आया। बाबाने मुझसे पूछा कि वृन्दावन में क्या देखा ? मैंने उत्तर दिया 'प्रभो ! भगवान् के धाम में बड़ा ही सुख हुआ परन्तु रहने और

खाने का कोई ठिकाना न लगा। इससे बहुत कष्ट हुआ।" इसके दूसरे वर्ष ही श्रीकृष्णाश्रम बना जो 'श्रीउड़ियाबाबा का आश्रम' नाम से भी विख्यात है और जहाँ आज भी श्रीरासलीला, कथा, कीर्त्तन और सत्संग का सदावर्त्त लगा रहता है।

मैं प्रायः बीस वर्ष बाबा की छत्र छाया में रहा हूँ, और आज भी उन्हीं की छत्रच्छाया में हूँ। उनकी वाणी में बड़ा ही मिठास था। उनके उपदेश से सहस्रों नर–नारी कल्याणपथ पर अग्रसर हुए और हो रहे हैं। आप जैसा अधिकारी देखते थे उसे वैसा ही उपदेश करते थे। मेरे जैसों के सामने प्रायः कहा करते थे कि जो साधु भिक्षा माँगने में शर्माता है वह आधा साधु है और ऐसा भी कहा करते थे–

"तब लग जोगी जगद्गुरु, जग सों रहत निरास।
जब आशा मन में लगी, जग गुरु जोगी दास।।"

आपके सहस्रों उपदेश 'कल्याण' आदि मासिक पत्रों में छपे थे, जो अब 'श्रीउड़ीयाबाबा के उपदेश' नाम से श्रीकृष्णाश्रम द्वारा पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए हैं।

बाबको किसी भी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं था। वे सभी सम्प्रदाय के महापुरुषों का आदर करते थे। एक बार सत्संग में जब श्रीहरिबाबाजी भी विद्यमान थे मैंने आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानन्दजी पर कुछ कटाक्ष कर दिया। इस पर बाबा और हरिबाबाजी दोनों ही मुझ पर बहुत अप्रसन्न हुए और बोले, "तुमने स्वामी दयानन्द को क्या समझ रखा है? मैं तो चुप रह गया।

एक बार बम्बई में एक वृद्ध मारवाड़ी सेठ ने मुझसे पूछा

"आप उड़ियाबाबाजी के पास बहुत रहते हैं, सो उड़ियाबाबाजी महाराज क्या बताते हैं?" मैंने कहा, "वैराग्य।" तब सेठजी बोले, "दस–बीस माला तो मैं जप सकता हूँ, पर वैराग्य कठिन है।" जब मैंने यह बात बाबा को सुनायी तो वे बहुत हँसे।

एक दिन वृन्दावन आश्रम के कथामण्डप में सायंकाल के समय पंखे चल रहे थे। जब अँधेरा हो आया तो किसी ने बिजली का बटन दबाया। परन्तु किसी कारणवश बिजली नहीं जली। तब आप बटन दबाने वाले से बोले, "अरे बेवकूफ! पहले पंखा बन्द कर तब न बिजली जलेगी?" इस सरलता पर सभी हँसने लगे।

एक समय आप खुरजा में सेठ खूरजमल बाबूलाल के बाग में ठहरे हुए थे। साथ में अनेकों सन्त और भक्त भी थे। मैं भी था। आपको बाल्यकाल से यही मालूम था कि बिना टिकट स्टेशन पर जाते ही आदमी पकड़ लिया जाता है। एक दिन आपके साथ सब लोग कहीं निमन्त्रण में जा रहे थे। पल्टू बाबा ने कहा, "स्टेशन से होकर सीधा रास्ता है।" तब आप बड़े जोर से बोले, "अरे पल्टू! तू सबको गिरफ्तार करा देगा।" सेठ सूरज–मल भी साथ थे। उन्होंने कहा, "महाराज जी! स्टेशन में हर समय नहीं पकड़ते। फिर आपको तो कौन पकड़ सकता है।"

अत्यन्त महान् होने पर भी बाबा में ऐसी सरलता थी।



दण्डिस्वामी श्रीतत्वबोध तीर्थ 'गार्डस्वामी'

मैं पूर्वाश्रम में सन् १६१५ के लगभग रामघाट की इमलीवाली कुटी में गायत्री का पुरश्चरण कर रहा था। एक दिन पूर्व की ओर से श्रीमहाराज जी पधारे। मैंने आपसे भिक्षा के लिये प्रार्थना की। आपने स्वीकार कर लिया। मैंने प्रार्थना की कि मेरे साथ ही घर पधारें। आप बोले, "तुम चलो, मैं आ जाऊँगा।" मैंने कहा, "आपने घर तो देखा नहीं है, कहाँ ढूढ़ते फिरेंगे ? अतः साथ ही चलिये।" फिर बोले, "तुम चलो मैं आ जाऊँगा।"

मैं चल दिया। रास्ते में घूम–घूम कर देखता जाता था कि आ रहे हैं या नहीं। परन्तु आते दिखायी न दिये। घर पहुँचकर मैंने लोटा– धोती रखा और भिक्षा की व्यवस्था कर बाहर देखने गया तो आप दरवाजे पर उपस्थित मिले। उस समय मैं कुछ नहीं समझ सका कि बिना घर देखे वे स्वयं ही कैसे पहुँच गये। परन्तु पीछे अनुभव हुआ कि उनमें ऐसी शक्ति थी। मैंने उन्हें भिक्षा करायी और फिर स्वयं प्रसाद पाया।

उसके पश्चात् बाबा से मेरा सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मैं उस समय रेलवे में गार्ड था। मुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कभी संन्यास लेना पड़ेगा। यह एकमात्र श्रीमहाराजजी की अहैतुकी कृपा ही है। कि उन्होंने मुझे दण्डिस्वामी बना दिया। बाबा के पास स्वार्थी और परमार्थी सभी प्रकार के लोग आते थे। वे स्वार्थियों का स्वार्थ सिद्ध करते थे और परमार्थियों का परमार्थ।

लीला संवरण के बाद भी कई बार स्वप्न में उनके दर्शन हुए हैं। एकबार स्वप्न में ही उन्होंने कहा था कि अपने नियमों का दृढ़ता से पालन करते रहो। उनकी सर्वदा ही बड़ी कृपा रही है। उनकी कृपा से मेरे जीवन में अनेकों लाभ हुए हैं जिनका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

स्वामी श्रीविश्वबन्धुजी 'सत्यार्थी'
अलहदादपुर (अलीगढ़)

पूज्य श्री उड़िया बाबाजी के प्रथम दर्शन मुझे खुरजा में सन् १९२१ ई० में हुए थे। उन दिनों मैं तिलक पाठशाला सीकरा में अध्यापनकार्य करता था। एक प्रेमी सज्जन ने मुझे उनके खुरजा पधारने की सूचना दी और मैं तुरन्त चला आया। उस समय जब तक वे खुरजा में रहे मैं बराबर उनकी सेवा में रहा। एक दिन घूमते–घूमते बाबा सिद्धेश्वर मन्दिर गये। साथ में मैं भी था। वहाँ उन्होंने मुझे सिद्धासन और भ्रुकुटि के मध्य में दृष्टि रखकर ध्यान करने की पद्धति बतायी और कहा कि ढाई घण्टा दृष्टि स्थिर होने पर आसन उठ जाता है तथा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

सन् १९२१ के बाद मैं प्रायः प्रतिवर्ष उनके चरणों में जाता रहा हूँ। इससे मुझे जो लाभ हुआ है उसका अनुमान तो मैं भी नहीं कर सकता।

एक बार मैं बाबा के दर्शनार्थ कर्णवास गया। वहाँ मैं खुरजा से पैदल ही गया था इसलिए बहुत थक गया था। पहुँचते ही मालूम हुआ कि बाबा तो अनूपशहर चले गये हैं। मैं उसी समय अनूपशहर को चल दिया। वहाँ पहुँचते–पहुँचते रात्रि हो गयी। अतः बाबा के चरणों में प्रणाम किया और एक वृक्ष

के नीचे जा पड़ा। उन्हें यह बात असह्य हो उठी। मुझे तलाश कराकर वहीं प्रायः एक सेर दूध भिजवाया। वे हम पर माता–पिता के समान प्यार करते थे।

मैंने कई बार अपने हाथ से बनाकर उन्हें भोजन कराया था। वे मेरे बनाए भोजन को बड़े प्रेम से पा लेते थे। इससे मैं कृतकृत्यता का अनुभव करता था। उनके सत्संग से मैं इस प्रकार पला जैसे जल से सींचे जाने पर धीरे–धीरे वृक्ष बढ़ता है। अब जब कभी रामघाट–कर्णवास आदि स्थानों में अनुभव किये उस दृश्य का स्मरण करता हूँ तो उस आनन्द के लिये बड़ा ही छटपटाता हूँ, तड़पने लगता हूँ। पर अपने वश की बात तो है नहीं, इसलिए हताश होकर चुप रह जाता हूँ।

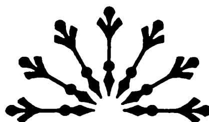
बाबा के यहाँ भण्डारे तो प्रायः होते ही रहते थे। एक बार रामघाट में मैंने उनसे कहा, "बाबा! इन भण्डारों में कुत्तों और बन्दरों को नित्य ही भगया जाता है, एक दिन इनकी भी दावत होनी चाहिए।" बाबा ने तुरन्त मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा कि जिस दिन यहाँ से उठेंगे उस दिन इनकी भी दावत होगी। फिर मैं तो चला आया, परन्तु मैंने सुना था कि वहाँ कुत्तों और बन्दरों की बड़ी अद्‌भुत दावत हुई थी। उसमें उन्हें पत्तल परोसकर खिलाया गया था। उसमें न जाने कहाँ–कहाँ के कुत्तें और बन्दर आकर सम्मिलित हो गये थे और उनकी बड़ी भारी भीड़ जमा हो गई थी।

बाबा को अपनी निन्दा सुनकर प्रसन्नता होती थी। एक बार मैंने निन्दकों को प्रतीकार किया तो बाबा मुझसे बोले, "बेटा! बस यही स्थिति है? अरे! हमको अपनी स्थिति से चलायमान नहीं

होना चाहिए।" मुझे लज्जित होना पड़ा। मैंने स्वयं बाबा की स्थिति देखी थी। वे आत्मनिष्ठा की मूर्ति थे। उन्हें कोई हिला नहीं सकता था। उनका आत्मज्ञान अलौकिक था। उन्हें गीता का यह श्लोक बहुत प्रिय था–

'नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।। *(१४। १६)

एक बार मैंने पूछा कि बाबा! आत्मरति किसे कहते हैं? इसका उन्होंने बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। बोले 'बेटा! सब प्रकार की रतियों के अभाव को ही आत्मरति कहते हैं।" इस उत्तर की यदि व्याख्या की जाय तो इसकी विशेषता का पता लग सकता है। परन्तु विचारशील स्वयं ही इसका अनुभव करें। मैं तो इसे यहीं छोड़ देता हूँ। विशेष लिखने की प्रेरणा नहीं है।



* जब पारदर्शी पुरुष सत्व, रज, तम इन तीन गुणों को ही कतृत्व का हेतु अनुभव करता है, अर्थात् गुणों के सिवा किसी और को कर्ता नहीं समझता तथा गुणों से परे आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेता है, तब वह मेरी स्वरूपता को अर्थात् भगवान के सादृश्य को प्राप्त कर लेता है।

स्वामी श्रीसनातन देवजी, वृन्दाबन

संसर्गका सूत्रपात

(१)

सन् १६२२ ई० की बात है, एक दिन श्रीऋषिजी ने[१] कहा, 'एक बहुत अच्छे महात्मा हरसहायमल के बाग में[२] ठहरे हुए हैं। लोग उन्हें 'उड़िया बाबा' कहते हैं।'' मैं इस समय से प्रायः एक बर्ष पूर्व स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण कालेज छोड़ चुका था। और इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से विदाई लेकर काम–काज की खोज में रहता था। इस बाह्य दृष्टि से ही नहीं, आन्तरिक दृष्टि से भी यह मेरे जीवन का परिवर्तन–काल (Turning point) था। कालेज के एक वर्ष में ही मेरे जीवन में एक नवीन परिवर्तन हुआ। उससे पहले मैं अपने जीवन में एक प्रसिद्ध साहित्यसेवी और समाज–सुधारक बनना चाहता था। परन्तु भगवत्कृपा से इस वर्ष मुझे भगवान् बुद्ध, श्रीचैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामतीर्थ और महात्मा गाँधी–इन चार महापुरुषों की जीवनियाँ और उपदेश पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसका प्रभाव मेरे चित्त पर यह पड़ा कि उसकी अभिरुचि प्रधानतया आध्यात्मिकता की ओर हो गयी और

---

१. वर्तमान श्रीविश्वबन्धुजी। उस समय इनका नाम श्रीझम्मनलालजी था। परन्तु इनकी साधुजनोचित वृत्ति के कारण इनके विद्यार्थी जीवन से ही हम लोग इन्हें –'ऋषिजी' कहते थे।

२. यह बाग खुरजा में है।

चरित्रनिर्माण में भी जहाँ पहले बाह्य व्यवहार पर अधिक दृष्टि थी वहाँ आन्तरिक शोधन की प्रधानता हो गयी। इस स्वाध्याय और सुधार में सबसे अधिक प्रेरणा मुझे मिली थी श्रीऋषिजी से ही। अतः उनकी बात का स्वभाव से ही मेरे हृदय में बड़ा आदर था। उस समय तक यद्यपि साधु संन्यासियों के पास जाने का मेरा स्वभाव नहीं था, तथापि ऋषिजी के कहने पर मैं उसी दिन अथवा दूसरे रोज हरसहाय मल के बाग में गया।

वहाँ मैंने देखा एक श्यामवर्ण पतले–दुबले मध्यमकाय महात्मा गुदड़ी बिछाये बैठे हैं। उनके पास जो दर्शनार्थी आते हैं वे कुछ मिष्टान्न या फल आदि भी लाते हैं। परन्तु वे स्वयं उनमें से कुछ भी ग्रहण नहीं करते, सब आने–जानेवालों को ही बरता देते हैं। शरीर दुबला–पतला होने पर भी उसमें एक अपूर्व ओज और तेज है। दर्शकों का आपके प्रति अद्भुत आंकर्षण है। हर समय कुछ सत्संग–चर्चा भी चलती रहती है। दिन भर आनेजाने वालों का ताँता लगा रहता है, किन्तु रात को वहाँ कोई नहीं रह सकता। ब्रह्मचारी बद्रीप्रसाद, जिनके साथ आप खुरजा पधारे थे, पास ही किसी दूसरे स्थान में रहते थे। यह ज्येष्ठ क़ा महीना था, परन्तु रात्रि में आप कमरे के सारे दरवाजे बन्द करके भीतर ही रहते थे। इन दिनों आपका ध्यानाभ्यास बहुत बढ़ा हुआ था, अतः शीतोष्ण का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। अधिकांश रात्रि ध्यान समाधि आदि में ही व्यतीत होती थी। उसको गुप्त रखने के लिये ही आपकी यह तीव्र तितिक्षा थी।

उस समय तक महात्माओं से मिलने और बातचीत करने का तो मेरा स्वभाव था नहीं। मैं केवल आपके दर्शनों के लिये आता था। आप इन दिनों माधूकरी ही करते थे, किसी का निमन्त्रण आदि स्वीकार नहीं करते थे। एक दिन मध्याह्नोत्तर काल में मैं कुटी पर

गया हुआ था। आप तब तक भिक्षा करके लौटे नहीं थे। भिक्षा के पश्चात् बस्ती में मैं ही किसी भक्त के यहां ठहर गये थे। थोड़ी देर में आप पधारे। मैंने चरणस्पर्श किये। आप भी ठहर गये और खड़े–खड़े ही बोले–"तू क्या करता है ?"

मैं–अभी तो कुछ नहीं करता। प्रायः एक बर्ष हुआ कालेज छोड़ा है, किसी काम की खोज में हूँ।

महाराजजी–क्या करने का विचार है ?

मैं–मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता जो धर्म या देश के विरुद्ध हो। सरकारी नौकरी करने का भी मेरा विचार नहीं है।* व्यापारादि में लोग प्रायः मिथ्या भाषण का आश्रय लेते हैं। अतः मेरा विचार तो किसी राष्ट्रीय विद्यालय या गुरुकुल आदि में अध्यापन अथवा किसी समाचारपत्र में सम्पादनकार्य करने का है।

महाराजजी–इसके लिये कुछ प्रत्यन भी किया है ?

मैं–हाँ, गुरुकुल वृन्दावन में कोई स्थान मिल जाने की सम्भावना है। वहाँ के प्रधानाध्यापक मेरे मित्र हैं।

बस, यही श्रीमहाराजजी से मेरी पहली बातचीत हुई थी उस समय आपने मुझे गुरुकुल की नौकरी करने के लिये अनुत्साहित ही किया था। सम्भवतः उसी दिन सायंकाल में मैं फिर गया अनेकों भक्तजन बैठे हुए थे। उनमें खुरजा के सुप्रसिद्ध दानी और धर्मनिष्ठ सेठ गौरीशंकर गोइनका भी थे। उन्होंने प्रार्थना की, "महाराजजी, कल भिक्षा के लिये दास के घर की ओर पधारने की कृपा करें।"

---

* सन् १९२१ के सत्याग्रह में सरकारी नौकरियों का बहिष्कार किया गया था। वे ही संस्कार मुझे भी सरकारी नौकरी करने से रोक रहे थे।

महाराजजी–हाँ, जाऊँगा तो उधर भी हो आऊँगा।

सेठजी–किस समय पधारेंगे ? मुझे मालूम हो जाय तो मैं भी वहाँ उपस्थित रहूँ।

महाराजजी–मुझे तुम्हारी क्या आवश्यकता है ? जाऊँगा तो स्वयं ही रोटी ले आऊँगा।

इस पर सेठजी चुप हो गये। अनेक प्रकार का सत्संग हो रहा था। इस समय मुझे भी कुछ पूछने की इच्छा हुई। परन्तु स्वयं प्रश्न करने का साहस न हुआ। पं० रमादत्तजीवैद्य मेरे पास बैठे हुए थे। उन्हीं से मैंने प्रश्न कराया। वे बोले, "महाराजजी, ये पूछते हैं कि मृत्यु क्या है "

इन दिनों मेरे चित्त में यह समस्या कभी–कभी खलबली पैदा करती रहती थी, अतः मैंने यही बात पुछवायी। इसका श्रीमहाराजजी ने जो उत्तर दिया वह मुझे अब स्मरण नहीं है। परन्तु यह आपके प्रति मेरा पहला प्रश्न था, इसलिये यहाँ इसका उल्लेख कर दिया है।

रात्रि को सब लोग अपने–अपने घर चले गये, सबेरे मैं कुटी पर पहुँचा तो वह सूनी पड़ी थी और ब्रह्मचारी बद्रीप्रसाद सिर लटकाये उदास बैठे थे। बाबा रात ही में उठ कर चले गये थे। उन दिनों यही आपका स्वभाव था कि बिना कोई समय निश्चय किये आना और बिना किसी को सूचना दिये चले जाना अब मालूम हुआ कि आपने सेठ गौरीशंकरजी को क्यों ऐसा गोलमोल उत्तर दिया था।

(२)

यह श्री महाराज जी से मेरा प्रथम मिलन हुआ। इससे मुझे दो लाभ हुए–(१) श्रीचरणों के प्रति आकर्षण और (२) भक्तवर श्री केदारनाथ जी से

परिचय। खुरजा में भक्त केदार नाथ जी एक सुप्रसिद्ध साधुसेवी और सत्संगी थे। गृहस्थों में ऐसे सत्पुरुष विरले ही होते हैं। मैंने उस समय तक आपका नाम भी नहीं सुना था। किन्तु अब श्रीमहाराजजी के पास आपके दर्शन करके मेरा चित्त आपकी ओर आकर्षित हुआ और मुझे आपका सत्संग करने की रुचि पैदा हो गयी। धीरे–धीरे मैं आपके संसर्ग में आने लगा। फिर संसर्ग सत्संग में परिणत हुआ और आगे चल कर तो उनके साथ मेरा घनिष्ट सम्बन्ध ही पैदा हो गया।

थोड़े दिनों में मेरी काम–काज की समस्या भी हल हो गयी। मैंने अरहर की दाल का कारखाना कर लिया। इधर श्री भक्तजी के सत्संग और महापुरुषों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहने से मेरी आध्यात्मिक अभिरुचि भी बढ़ गयी थी। परन्तु अपने लिये कोई साधनमार्ग निश्चित नही हो पाया था। किन्हीं महात्मा में ऐसी श्रद्धा भी नहीं थी जो आत्मसमर्पण करके उनसे अपना मार्ग निश्चय कर लेता। चित्त बार–बार श्रीमहाराजजी की ओर ही आकर्षित होता था। परन्तु उनका कोई पता ठिकाना मालूम नहीं था। और उन दिनों इस विषय में विशेष खोज करने का साहस भी नहीं हुआ था। इस प्रकार प्रथम दर्शन को अब प्रायः चार साल बीत चुके थे।

दैवयोग से एकबार श्री भक्तजी गंगातट पर अनूपशहर ठहरे हुए थे। मैं भी आपके पास पहुँच गया। वहाँ सुना कि इन दिनों श्रीमहाराजजी कर्णवास में है। वहाँ से आठ मील ही तो जाना था। बस, एक बैल–गाडी किराये पर की गयी और उसमें हम दोनों के अतिरिक्त भक्तजी के छोटे भाई ला०बाबूलालजी और श्रीरामलालजी कोठीवाले इस प्रकार कुल चार आदमी कर्णवास को चल दिये वहाँ पहुँचे तो देखा, श्रीमहाराजजी पं० किशोरीलाल के बगीचे

की धर्मशाला के बीचवाले कमरे में एक लम्बी चौकी पर लेटे हैं और अनेकों भक्त आपके आस–पास बैठे हुए खिलबाड़ सा कर रहे हैं। हम पहुँचे तो आप उठकर बाहर बरामदे में बैठ गये और फिर परमार्थ–चर्चा होने लगी।

इस समय तक मुझे तो कोई प्रश्न आदि करना आता नहीं था, श्रीभक्तजी के साथ ही महाराजजी की बात होती रही, वे ही हम सबके अगुआ थे। किन्तु मेरे चित्त में प्रश्न उठते न हों–ऐसी बात नहीं थी। कुछ दिनों से श्रीरामकुमार दारोगा के[1] उपदेश से मैं हर समय मन ही मन द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करने लगा था। परन्तु इतने से ही चित्त सन्तुष्ट नहीं था। मुझे एक निश्चित और शीघ्रातिशीघ्र लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले साधन की अपेक्षा थी। परन्तु इन सब गुरुजनों के सामने श्रीमहाराजजी से ऐसी कोई प्रार्थना करने का साहस नहीं हुआ। तथापि इस समय आप जो बात कह रहे थे वे मुझे ऐसी लगती थीं मानो मेरे ही लिए कह रहे हैं, उनमें मुझे अपनी स्थिति का उल्लेख और कर्त्तव्य का निर्देश दिखायी देता था। इसके सिवा इस समय मुझे एक और बड़ा विलक्षण अनुभव हुआ। मेरा चित्त आरम्भ से ही बड़ा नीरस–सा है, किसी भी व्यक्ति के प्रति मेरा विशेष आकर्षण नहीं होता। परन्तु इस समय श्रीमहाराजजी के प्रति चित्त ऐसा आकर्षित हो रहा था कि बार–बार उन्हें आलिंगन करने की इच्छा होती थी।

बस, इतना अनुभव लेकर ही सबके साथ मैं भी वहाँ से लौट चला। रास्ते में हमलोग आपस में श्री महाराजजी के विषय में ही चर्चा करने लगे। भक्तजी तो आपकी अद्‌भुत निष्ठा और विरक्तिपर मुग्ध ही थे। ला० रामलालजी कोठीवाले आर्यसमाजी

---

१. ये बरेली के रहने वाले एक प्रेमी सज्जन थे और अपने कार्य से अवकाश ग्रहण करके जहां तहां विचरते रहते थे।

विचारों के थे। परन्तु इससमय वे भी कह रहे थे कि महाराजजी के हृदय में आनन्द का ऐसा उद्रेक जानपड़ता है कि मानों वह वहां न समा सकने के कारण बाहर भी छलक रहा हो। उसके प्रभाव से समीपवर्ती लोग भी आनन्द में मग्न हो जाते हैं। मैं तो उनके बच्चे की तरह था। जब मैंने उनसे अपने मन की बात कही कि मेरा चित्त तो बार–बार उनका आलिंगन करने को होता था तो उन्होंने मुझे झिड़क दिया। शायद वे मोहवश मुझे एक त्यागी–विरागी संत की आसक्ति में फँसा देखना नहीं चाहते थे।

चलते समय श्रीमहाराजजी ने हमें शीघ्र ही अनूपशहर पधारने का आश्वासन दिया था। अतः चित्त में यह सन्तोष था कि अब कुछ दिन निरन्तर सत्संगका सुअवसर प्राप्त होगा। प्रायः एक सप्ताह में आप अनूपशहर पधारे और माता की गढ़ीवाली कुटी में आसन किया। यहाँ जीवन में पहलीबार मैंने भक्त प्यारेलालजी को आपकी पूजा करते देखा। अब तो बराबर आपके पास मेरा आना–जाना रहता ही था। अतः मैंने अपने लिये कोई निश्चित साधन बताने की प्रार्थना की। परन्तु आप टाल–टूलही करते रहे मेरी मुख्य समस्या यह थी–मैंने कुछ भक्तिग्रन्थों को तो देखा ही था। महाप्रभु श्रीगौरांगदेव का जीवनचरित (Lord gaurang) भी पढ़ चुका था और इन्हीं दिनों भक्तवर अश्विनीकुमार दत्तका 'भक्तियोग' भी पढ़ा था। इन ग्रन्थों में मैंने भक्ति के अश्रु, कम्प आदि अष्ट सात्विक भावों की बात पढ़ी थी। उससे कुछ काल पूर्व मैंने पूज्य श्रीहरिबाबाजी के भी दर्शन किये थे। उनके संकीर्तनों में उन दिनों लोगों को बड़े–बड़े भावावेश होते थे। श्रीभक्तजी को भी मैंने घण्टों रोते देखा था। परन्तु मुझे न तो संकीर्तन में ही कोई विलक्षण आनन्द आता था और न कभी कोई सात्त्विक भाव ही होता था। अपना चरित्र में

बहुतों से अच्छा समझता था और कभी–कभी कोई ऐसी बात भी कह देता था जिसे सुनकर दूसरों को अश्रुपात होने लगते थे। परन्तु मेरे चित्त पर उसका ऐसा कोई प्रभाव नहीं होता था। अतः मैंने श्रीमहाराजजी से यही प्रश्न किया कि मुझे भावावेश क्यों नहीं होता और किस प्रकार मुझे ऐसी स्थिति प्राप्त हो सकती है। परन्तु आपने इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। यही कहकर टालते रहे कि तुम जो कुछ करते हो वही करते रहो।

अब होली का पर्व समीप था। बाँधपर पूज्य श्रीहरिबाबा जी उत्सव का आयोजन कर रहे थे। वहाँसे उन्होंने चार आदमी श्री महाराजजी को लेने के लिए भेजे। दूसरे ही दिन श्रीमहाराजजी ने अपने भक्तपरिकरके सहित बाँध के लिए प्रस्थान किया। मैं और भक्तजी भी आपके साथ पैदल ही चले। वहाँ हमने दोनों महापुरुषों का बड़ा ही अद्भुत मधुर मिलन देखा। श्रीहरिबाबाजी तो बहुत देर तक मानों भावसमाधि में डूबे–से बैठे रहे। मैंने बाँध का यह उत्सव जीवन में पहली ही बार देखा था। वहाँ तो भगवन्नाम और भगवत्प्रेम की मानो निरन्तर झड़ी लगी हुई थी। इस समय ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी भी यहीं विराजमान थे। उनसे मेरा बचपन का प्रेम था। अभी संकीर्तनादि में उनकी कोई रुचि या श्रद्धा नहीं थी। वे इसे ग्रामीण और अशिक्षित लोगों का साधन समझते थे। इसी प्रश्नको लेकर कभी–कभी श्रीमहाराजजी से उनकी बातचीत भी होती थी।

अस्तु, होली के पश्चात् उत्सव की समाप्ति हुई। श्रीमहाराजजी ने वहाँ से हरिद्वार के कुम्भ में पहुँचने के लिए प्रस्थान किया और हम सब अपने–अपने घरों को लौट आये।

(३)

यह सन् १९२६ ई० की बात है। मैं बाँध से एक नवीन प्रकार का अनुभव लेकर लौटा था। मैंने लोगों को संकीर्तनानन्द में मग्न होकर इस प्रकार नृत्य और प्रलाप करते कभी नहीं देखा था अतः अपने में जो भावुकता का अभाव था वह और भी अधिक खटकने लगा। कभी–कभी चित्त में ऐसे प्रश्न भी उठा करते थे कि यह विश्व क्या है ? मैं कौन हूँ ? यह सब कहां से प्रकट हो गया ? इस विश्वरचना का प्रयोजन क्या है' इत्यादि। कभी–कभी तो यह जिज्ञासा बहुत बेचैन कर देती थी। ऐसा लगता था कि यह समस्या हल न हुई तो जीवन व्यर्थ ही है। कभी तो ऐसा अनुभव होता कि भले ही त्रिलोकीका राज्य मिल जाय और बड़ी से बड़ी सिद्धि प्राप्त हो जाय तो भी यह जाने बिना कि मैं कौन हूँ मेरा चित्त शान्त नहीं हो सकता। ऐसी थी उन दिनों मेरे चित्त की अवस्था।

श्रीभक्तजी का सत्संग तो अब नित्य ही होता था। उन्हें मैं कोई न कोई पारमार्थिक ग्रन्थ सुनाया करता था। कभी–कभी अपने समाधान के लिए परस्पर बातचीत भी हो जाती थी। उनके विचार और भक्तिभाव से तो मैं प्रभावित था, परन्तु उनकी बातों से मेरी सन्देह की वेदना शान्त नहीं हो पाती थी। पूज्य श्रीमहाराजजी चैत्र के आरम्भ में हरिद्वार गये थे और लौटती बार खुरजा आने की बात कही थी। परन्तु ज्येष्ठ समाप्त हो गया तब भी वे नहीं आये। मन में उनके दर्शनों की बड़ी लालसा थी। उनका कोई निश्चित पता ठिकाना भी नहीं था जो पत्रद्वारा कोई बात मालूम कर सकें। चित्त में तरह तरह की आशंकाएँ भी होने लगती थीं। परन्तु आशा यही थी कि अबकी बार श्रीमहाराजजी मिलेंगे तो उनसे अपने मानस–रोग की कोई अमोघ औषधि अवश्य मिल जायगी। यह श्लोक बार–बार याद आता था–

एको हि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।*

इसे स्मरण करके सोचता था कि इसबार मैं श्रीमहाराजजी को वहीं प्रणाम करूँगा जिससे पुनः जन्म न लेना पड़े।

उन दिनों अर्वाचीन महात्माओं में मेरी सबसे अधिक श्रद्धा थी परमहंस श्रीरामकृष्ण पर। एक रात स्वप्न में मैंने देखा कि परमहंस श्रीरामकृष्ण पर। एक रात स्वप्न में मैंने देखा कि परमहंसदेव हमारे घर आये हैं। परन्तु मैं देखता हूँ कि उनका वेष तो श्रीपरमहंसदेव का–सा है परन्तु हैं श्रीमहाराजजी। दूसरे दिन दोपहर को मैं श्रीभक्तजी के पास बैठा हुआ था। उसी समय किसी ने आकर कहा कि उधोजी की छत्री पर श्रीहरिबाबाजी पधारे हैं। किन्तु मेरे मन में हुआ कि श्रीहरिबाबाजी नहीं श्री उड़ियाबाबा जी ही पधारे होंगे। तुरंत ही हम दोनों दर्शनों को चल दिये। वहाँ पहुचने पर मालूम हुआ कि उड़ियाबाबाजी ही आये थे, किन्तु अब वे हरसहायमल के बाग में चले गये हैं। हम सीधे वहीं पहुँचे। वहाँ बाबा को देखते ही हमारे हृदय हरे हो गये। मैंने अपने जीवन में पहलीबार उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उस समय उस प्रणाम में मेरा वहीं भाव था जो मैंने पहले से सोच रखा था।

अब तो पहले की अपेक्षा श्रीमहाराजजी का सुयश कुछ अधिक फैल चुका था। इसलिए स्थानीय ही नहीं, अनूपशहर आदि बाहर के स्थानों से भी भक्तगण आते रहते थे। सत्संग भी पहले की अपेक्षा अब अधिक खलकर होता था। मैं दिन में कई बार दर्शनों के लिए जाता था। परन्त

* श्रीकृष्ण को किया हुआ एक ही प्रणाम दश अश्वमेधों के समान है। इनमें भी दश अश्वमेध करनेवाले का तो पुनः जन्म होता है, किन्तु श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाले का फिर जन्म नहीं होता।

श्रीमहाराजजी की कुछ बातों का उल्टा–सुल्टा अर्थ लगाने के कारण आपके प्रति मेरी श्रद्धा कुछ शिथिल हो चली थी। एक दिन आपने कोई ऐसी बात कही जिससे मैंने समझा कि बाबा अपने प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा समझते हैं। मुझे उन दिनों सत्यका बड़ा आग्रह था। अतः मेरे मन में यह हुआ कि मुझे किसी प्रकार बाबा के प्रति अपनी श्रद्धा की शिथिलता प्रकट कर देनी चाहिए। इसी उद्देश्य से मैंने आपसे पूछा–"महाराजजी! क्या आपने कोई ऐसे महात्मा देखे हैं जिन्हें निर्विकल्प समाधि हो गयी हो?"*

महाराजजी–हाँ, देखे हैं, परन्तु तुम विश्वास कैसे करोगे? देखो, भैया! जब तक तुम्हारी किसी एक महापुरुष में पूर्ण श्रद्धा नहीं होगी तब तक तुम्हारा मार्ग नहीं खुल सकता।

मैं–महाराजजी! यह तो मैं भी समझता हूँ कि यदि किसी पामर के प्रति भी मेरा ठीक–ठीक गुरुभाव हो जाय तो भी मेरा कल्याण हो सकता है। परन्तु यह बात मेरे वशकी तो नहीं है।

महाराजजी–सो तो ठीक है।

एक दिन भक्तजी के साथ आपका कुछ सत्संग हो रहा था। प्रसंगवश उन्होंने कहा, "महाराजजी! ज्ञान का प्रधान साधन तो विचार है। परन्तु मुन्नीलाल का[१] तो यह आग्रह है कि बिना निर्विकल्प समाधि हुए ज्ञान हो नहीं सकता। आप इन्हें इस विषय में कुछ समझाने की कृपा करें।"

श्रीमहाराजजी मुझसे बोले, "क्यों रे! तेरा क्या विचार है, तू अपनी बात कह।"

---

* इससे मेरा तात्पर्य यह था कि मैं आपकी तो ऐसी स्थिति नहीं समझा।

१. मेरा घर का नाम।

मैं—महाराजजी ! मैं तो यह समझता हूँ कि ज्ञान कोरी बात बताने से नहीं हो सकता। जबतक मुर्दे या सिरकटा का स्वांग* न हो तब तक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

महाराजजी—अरे ! ज्ञान क्या किसी को होता है ? आज तक सृष्टि में क्या कोई भी ज्ञानी हुआ है ? (भक्तजी से) भक्तजी ! तुम इस बात पर ध्यान देना।

श्रीमहाराजजी की यह गूढ़ोक्ति उस समय मेरी समझ में कुछ नहीं आयी। इसके पश्चात् और भी कुछ बातें हुई, परन्तु अब वे मुझे स्मरण नहीं हैं।

इसी प्रकार प्रायः प्रन्द्रह दिन तक हम लोग श्रीमहाराजजी के सत्संग का आनन्द लेते रहे। मैंने दो—एक बार अपने लिए कोई साधन पूछा, परन्तु आप टाल ही करते रहे। अब गुरुपूर्णिमा आयी। खुरजामें श्रीमहाराजजी की केवल यही गुरुपूर्णिमा हुई है। अभी भक्तिपरिकर बहुत नहीं बढ़ा था। अनूपशहर, रामघाट हाथरस और रबूपुरा के पच्चीस—तीस भक्तगण बाहरसे आये थे। आप नित्यप्रति प्रातःकाल सिद्धेश्वर महादेव पर चले जाते थे। वहीं पूजनादि का निश्चय हुआ और उसके पश्चात् वहीं सबके लिए प्रसादकी व्यवस्था की गयी। श्रीभक्तजी के यहाँ से सब लोगों के लिए पक्का भोजन बनकर आ गया और मैंने कुछ आम मँगा लिये।

मैं सबेरे ही सिद्धेश्वर पहुँच गया था। इन दिनों नीमकरोरीके महात्मा भी खुरजा आये हुए थे। उनकी सिद्धियों की कुछ प्रसिद्धि थी। वे भी इससमय सिद्धेश्वर पर ही थे श्रीमहाराजजी उनसे कुछ

* मुर्दे का स्वांग अर्थात् निर्विकल्प समाधि और सिरकटाका। स्वाँग—भगवद्विरह असह्य होने पर सिर काटने के लिए तैयार हो जाना।

बातें करते रहे। भक्तजी की आज विचित्र अवस्था थी। वे घर से तो सिद्धेश्वरके लिए ही चले, किन्तु मार्गमें भावमग्न हो जानेके कारण रास्ता भूलकर दूसरी ही ओर निकल गये। जब चेत हुआ तो लौटकर निर्दिष्टस्थान पर पहुँचे। वे तालाब के किनारे एकान्तमें श्रीमहाराजजीको अपनी वे सब बातें सुना रहे थे। इसी समय मैं भी वहां पहुँच गया। बस अपनी बात समाप्त करके उन्होंने श्रीमहाराजजी से कहा, "भगवन्! इस मुन्नीने मुझे बहुत ग्रन्थ सुनाये हैं। आप कृपा करके इसे भी कोई साधन बताइये।" ऐसा कहकर वे उठ गये और अब वहाँ मैं और श्री महाराजजी ही रह गये।

आज मेरा भाग्योदय हुआ। मैंने इतने दिनों से कई बार श्रीमहाराजजी से अपने लिए कोई साधन पूछा था। परन्तु वे बराबर टाल ही करते रहे। इसका क्या कारण था, सो तो वे ही जानें। आज बोले, "मेरे विचार से तुम्हारी प्रवृत्ति साकारोपासना में नहीं हो सकती। तुम्हारी बुद्धि तर्कप्रधान है। इसके लिए तो शुद्ध श्रद्धा की आवश्यकता है। सो, रूप और नाममें तो तुम्हारी श्रद्धा हो सकती है, किन्तु लीला और धाममें होनी कठिन है। तुम तो गीता के इस श्लोक पर विचार किया करो–

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। (२। २४)

इसके लिए द्रष्टा और दृश्यका विवेक होना परम आवश्यक है। देखो जिस प्रकार तुम संसार की सब चीजों को देखते हो उसी प्रकार इस शरीर को भी तो देखते हो। इसी तरह मन के संकल्प–विकल्प बुद्धि के निश्चय और सुख–दुःख आदि भी तुम्हारे दृश्य ही हैं। और यह नियम है कि दृश्य से द्रष्टा सर्वथा भिन्न होता है। अतः तुम शरीर, मन एवं

बुद्धि आदि सभी से भिन्न हो। इसलिये इनके किसी भी व्यापार से तुम्हारा कोई हानि–लाभ नहीं हो सकता। बस, तुम उठते–बैठते, चलते–फिरते हर समय अपने को इनसे असंग देखा करो। तुम्हारा यह अभ्यास इतना दृढ़ हो जाना चाहिए कि जिस प्रकार तुम घड़े को अपने से भिन्न देखते हो उसी प्रकार तुम्हें यह शरीर भी दिखायी दे।''

मैं–महाराजजी ! जब इस प्रकार शरीर अपने से भिन्न दिखायी देने लगेगा तब तो इसे कोई काटे–कूटेगा तो उससे भी कोई उद्वेग नहीं होगा ?

महाराजजी–हाँ, दृढ़ अभ्यास होने पर तो ऐसा ही होगा। तुम अभी यही अभ्यास करो। जब इसमें तुम्हारी कुछ स्थिति हो जायगी तब तुम्हें और भी साधन बताया जायगा। फिर तो तुम्हें यह सारा विश्व आकाश में बादल के समान सर्वथा असत् और अपनी ही दृष्टि का विलास जान पड़ेगा।

बस, आज गुरुपूर्णिमा को यही श्रीमहाराजजी ने मुझे प्रथम दीक्षा दी। परन्तु यह बात तो मुझे बड़ी कठिन–सी जान पड़ी। मैं तो कोई ऐसी युक्ति चाहता था जिससे भगवान् में मेरा प्रेम बढ़ जाता और मुझे भी अश्रुपात आदि सात्त्विक भाव होने लगते। इतने ऊँचे साधन का तो मैं अपने को अधिकारी नहीं मानता था। परन्तु यह तो मेरी समझ थी। शिष्य के यथावत् अधिकार को तो तत्त्वदर्शी गुरुदेव ही जानते हैं।

अस्तु। इसके पश्चात् सब लोगों ने श्रीमहाराजजी का पूजन किया, फिर पंक्ति में बैठकर एक साथ प्रसाद पाया और कुछ देर विश्राम करके वहाँ से हरसहायमल के बाग को लौट आये। दोपहर पश्चात् मैं श्रीभक्तजी के घर गया। उन्होंने पूछा, ''क्यों, श्रीमहाराजजी ने तुम्हें कोई साधन बताया ?''

मैंने सब बातें सुनाकर कहा, "साधन तो बताया, परन्तु मुझे तो यह अपनी योग्यता से परे जान पड़ता है। भला, जब मैं अपने को शरीरादि से परे अनुभव करने लगूँगा तो और शेष ही क्या रहेगा। अभी मेरी ऐसी योग्यता कहाँ है। मैं तो चाहता था कोई भजन की युक्ति बता देते।"

भक्तजी–हाँ, बात तो ठीक है। अब तुम महाराजजी से फिर प्रार्थना करो कि भगवन् यह तो बहुत ऊँची बात है, मुझे तो आप कोई भजन की सरल–सी युक्ति बताइये।

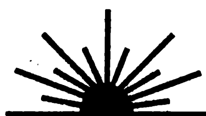
मैं–अब तो उनसे पुनः कुछ कहने की मेरी इच्छा नहीं होती। इतनी बार पूछने पर तो उन्होंने यह बताया है।

इस प्रकार अब और कोई बात पूछने की ओर से मैं निराश हो गया। इसके कुछ देर पश्चात् मैं बाजार की ओर गया। जब मैं बाजार में चल रहा था उस समय अकस्मात् मेरी मनोवृत्ति समाहित हो गयी और मुझे ऐसा लगने लगा मानो शरीर स्वयं ही चल रहा है और में उसे तटस्थ रूप से देख रहा हूँ। इस विचित्र अवस्था में मुझे बड़ी ही निश्चिन्तता और शान्ति का अनुभव हुआ तथा ऐसा जान पड़ा कि यदि यह दृष्टि बनी रहे तो फिर कुछ भी हुआ करे उसकी मुझे क्या परवाह। बस इतने ही से मुझे निश्चय हो गया कि यह साधन मेरे लिये ठीक है, मुझे इसका अभ्यास करना चाहिये।

श्री महाराजजी दूसरे दिन प्रातः काल ही खुर्जा से जाने वाले थे। अतः रात्रि में मैं बहुत देर तक उन्हीं के पास रहा। जब सब लोग चले गये तो मैंने उन्हें सब बातें बतायीं और इस विषय में मेरे चित्त में जो अन्य शंकाये थीं उनका समाधान कराया।

इस प्रकार श्रीमहाराज जी के साथ मेरे सम्पर्क का सूत्रपात हुआ। फिर तो मैं उनके पास बार–बार जाने लगा और कुछ ही दिनों में वे ही

मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक हो गये। मैं व्यावहारिक और पारमार्थिक सभी विषयों में उनसे सलाह लेता था और यथासम्भव उनकी आज्ञा का अनुसरण करता था। मेरा भावी जीवन तो उन्हीं का कृपाप्रसाद है। इसमें जो कुछ विकास हुआ है वह सब उन्हीं की देन है और जितनी त्रुटियाँ हैं वह मेरे प्रमाद, आलस्य और अश्रद्धा के परिणाम हैं। मेरा चित्त आरम्भ से ही बड़ा नीरस है। श्रीमहाराजजी कहा करते थे, "तेरा चित्त सूखी लकड़ी की तरह है, इसमें द्रवता की बहुत कमी है। साधक का चित्त तो जतु (लाख) की तरह होना चाहिए, जो साधन की आँच लगते ही पानी की तरह पिघल जाय और विषयों की ठण्ड के सामने काठ की तरह कड़ा हो जाय।" परन्तु उन्होंने इस सूखी लकड़ी का भी सदुपयोग कर लिया। उनके सदुपदेशों के औजारों ने इसे पादुकाओं के रूप में घड़ दिया, जिससे इसे भी उनके चरणों में स्थान मिल गया। शरण में आने पर भला महा पुरूष किसे आश्रय नहीं देते ?



बाबा श्रीरामदासजी

('श्रीबुद्धिप्रकाशजी उदासीन) पटना

प्रथम दर्शन

आज से लगभग २५–३० वर्ष पूर्व की बात है उस समय मेरी आयु बीस वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। मेरे हृदय में एक ऐसे सन्त के दर्शन की उत्कट लालसा जाग्रत हुई जो मुझे निरन्तर भजन में प्रवृत्त कर दें। इसी उद्देश्य से मैंने चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि अनेकों तीर्थस्थानों में भ्रमण किया। कई सन्तों का संग किया और उनकी सेवा भी की। परन्तु कहीं भी मेरी श्रद्धा न जमी। इस प्रकार खोजते खोजते जब मैं निराश हो गया तो मुझे प्यारेलाल नाम के एक सज्जन मिले। उनसे मैंने श्रीमहाराजजी की गुणगरिमा सुनी तब मैं उन्हीं के साथ श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट गया। उनके दर्शनमात्र से मुझे ऐसा लगा मानों मुझे अपनी खोयी हुई निधि मिल गयी। मुझे ऐसा जान पड़ा मानों मैं साक्षात् श्रीशंकर भगवान् के दर्शन कर रहा हूँ। मेरी सारी थकान उतर गयी।

श्री महाराजजी की आज्ञा पाकर प्यारेलालजी ने प्रश्न किया,–महाराज ! क्या आजकल भी प्रभु के दर्शन होते हैं ?

श्री महाराजजी– हाँ अवश्य होते हैं और बहुतों को हुए भी है।

मैं—क्या मुझे भी हो सकते हैं ?

श्रीमहाराजजी— हाँ।

मैं—किस् प्रकार ?

श्रीमहाराजजी—मैं करा दूँगा।

मैं—मैं चाहता हूँ कि मुझे भजन में अत्यन्त प्रीति हो जाय और मैं निरन्तर भजन किया करूँ।

इससे श्रीमहाराजजी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, "भजन से प्रेम चाहने वाले तो एक तुम्हीं मिले हो।"

फिर आपने अपने एक अनन्य भक्त गार्ड साहब के यहाँ ठहरने का मुझे आदेश दिया। उन दिनों श्रीमहाराजजी का अटल नियम था। कि रात्रि में उनकी कुटिया में और कोई नहीं रह सकता था। रात्रि को दस बजे प्रति दिन पं० वंशीधरजी आरती करके महाराजजी को शयन करा देते थे और सब लोग उन्हीं के साथ गॉव में चले जाते थे। पण्डितजी बहुत गरीब ब्राह्मण थे, परन्तु महाराजजी में उनकी अनन्य भक्ति थी। एक बार उन्होंने दीपावली के अवसर पर पैसे का अभाव होने के कारण अपनी थाली—लोटा बेचकर बाबा की कुटी पर दीपक जलाये थे। मैं दिन के समय तो कुटिया पर रहता था और रात्रि को सोने के लिये गार्ड साहब के घर चला जाता था। इस प्रकार सात दिन् बीत गये। फिर आपने जप के लिए मुझे एक मन्त्र बताकर अपना ही ध्यान करने का आदेश दिया और कहा कि तुम खुर्जा जाकर भक्त केदारनाथ का सत्संग किया करो। साधु वेश धारण मत करना। इससे अभिमान बढ़ जाता है और भजन से वञ्चित होना पड़ता है—ऐसा मैंने कई बार देखा है। तुम तीन वर्ष तक स्वयं अपने हाथ से बनाकर रोटी खाओ और नियम से भजन करो।

भक्त केदारनाथजी के पास

भक्त केदारनाथजी खुर्जा के रहने वाले एक सद्‌गृहस्थ महापुरुष थे। वे बड़े सन्तसेवी थे और बिना सन्तों को भोजन कराये कभी स्वयं भोजन करना नहीं चाहते थे। उनके पास पहुँचकर मैंने श्रीमहाराजजी की आज्ञा सुनायी तो उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु छलछला आये और वे बोले, "मैं हरिद्वार से लौटने वाले सन्तों का प्रतिवर्ष सत्संग करता हूँ। चालीस वर्षों से मेरा यह नियम चल रहा है। उस सत्संग के फलस्वरूप ही मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए हैं, मुझे तो महाराजजी साक्षात् भगवान् शंकर और विष्णु रूप ही जान पड़ते हैं। जब मुझे पहली बार उनके दर्शन हुए तो मैंने उनसे वेदान्त सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। इस पर वे बोले—भक्तजी ! मुझे आत्मज्ञानी तो बहुत मिलते हैं, परन्तु आत्मप्रेमी कोई नहीं मिलता, बस, तबसे मेरे मन में तो महाराज जी की वही बात घर कर गयी है।

भक्तजी के पास मैं तीन वर्ष रहा। उन्हीं के यहाँ मुझे मुन्नीलालजी के दर्शन हुए। ये प्रति दिन भक्तजी को दो घण्टे तक भक्ति या ज्ञानसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की कथा सुनाया करते थे। इस समय ये स्वामी सनातनदेव के नाम से विख्यात हैं। मैं कभी—कभी इनके या भक्तजी के साथ श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ जाया करता था। श्रीमहाराजजी का उन दिनों ऐसा नियम था कि वे वेदान्त की चर्चा गुप्तरूप से केवल जिज्ञासुओं के आगे ही करते थे। उस समय भक्तिमार्गियों को वे एकान्त में भजन करने के लिये भेज देते थे। पीछे तो आप मेघवृष्टि के समान सभी के सामने वेदान्त का भी प्रतिपादन करने लगे। बाबू रामसहायजी ने इसका विरोध भी किया तो आपने कहा कि बादल जिस प्रकार ऊसर भूमि का विचार न करके सर्वत्र समान भाव से वृष्टि करता है उसी प्रकार सब लोग.वेदान्त चर्चा सुनाने पर भी इसे वे ही ग्रहण कर सकेंगे

जो इसके अधिकारी होंगे। मुझे तो श्रीमहाराजजी केवल नाम की महिमा ही सुनाया करते थे। किन्तु भक्तजी ने मुझे कुछ वेदान्त भी पढ़ा दिया था। अतः फिर महाराजजी भी मेरे सामने भक्ति के साथ वेदान्त चर्चा भी करने लगे।

तीन वर्ष बीत जाने पर मेरा मन निरन्तर श्रीमहाराजजी के पास रहने के लिये उतावला हो उठा। अतः मैं खुर्जा से उनके पास कर्णवास चला आया। महाराजजी ने पाँच–सात दिन पश्चात् मुझे पुनः भक्तजी के पास जाने की आज्ञा दी। परन्तु मुझ से इस आज्ञा का पालन न हो सका। मैं सियाराम ब्रह्मचारी के साथ गंगा तट पर विचरने के लिये निकल पड़ा। हम दोनों विचरते हुए श्रीकाशीजी पहुँचे। वहाँ श्रीसियाराम ने दण्ड ग्रहण किया और मैंने एक उदासीन सन्त से साधुवेश ग्रहण कर लिया। यहां से सियारामजी तो रेलद्वारा दिल्ली चले गये और मैं पुनः गंगातट पर विचरता कर्णवास पहुँच कर श्रीमहाराजजी के चरणों में उपस्थित हो गया।

उन दिनों कर्णवास में लम्बेनारायण स्वामी का भण्डारा था। पूज्य श्रीमहाराजजी और श्रीस्वामी निर्मलानन्दजी के तत्त्वावधान में यह उत्सव हो रहा था। श्रीमहाराजजी ने मुझे देखा और पाँच–सात दिन तक आप बिल्कुल चुप रहे फिर बोले, "बेटा! क्या तू पहले साधु नहीं था, जो अब साधुवेश में मेरे सामने आया है।" किन्तु ऐसा कहने पर भी वे मुझपर थे प्रसन्न। उस समय की उनकी मधुर मुसकान मेरे लिये उनके अविचल आश्रयका संदेश थी। तबसे मैं सदा ही उनका एक अंग बनकर रहा हूँ और आज उनके अभाव में अपने को एक अनाथ बालक–सा पा रहा हूँ। उसके पश्चात प्रायः चौदह वर्ष तक मैं बराबर उन्हीं के साथ रहा हूँ।

भक्त केदारनाथजी बहुत बृद्ध थे। उनका शरीर रोगग्रस्त हो गया। तथापि गुरुपूर्णिमा पर वे श्रीमहाराजके दर्शनार्थ रामघाट गये। किन्तु

प्रभु की इच्छा! इस वर्ष वहाँ आगमन की पूर्ण सम्भावना होने पर भी श्रीमहाराजजी नहीं आये। भक्तगण निराश होकर अपने–अपने घर लौट आये। मैं श्रीभक्तजी के साथ खुर्जा आ गया। कुछ भक्त श्रीमहाराजजी की खोज करने लगे। पिलखुवा के पास सिखेड़ामें मुन्नीलाल आदि चार भक्तों को आपके दर्शन हुए। परन्तु सबके बहुत प्रार्थना करने पर भी आप रामघाट की ओर चलने को तैयार न हुए। तथापि दूसरे दिन प्रातःकाल ध्यानावस्था से उठते ही आप बोले, "मैंने भक्त केदारनाथ को आज स्वप्नावस्था में बीमार देखा है। अतः मैं उनसे मिलने के लिये खुर्जा जाऊँगा।" बस, वहाँ से कुछ भक्तों के साथ आप खुर्जा पधारे। भक्तजी की शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं थी। दो आदमियों के उठाने से वे खाट से उठ सकते थे। परन्तु महाराजजी के पहुँचने पर वे स्वयं खाट से उतरकर नाचने लगे। उन्होंने श्रीमहाराजजी के चरणस्पर्श किये और विधिवत् उनकी पूजा की। महाराजजीने उस समय उन्हें वेदान्त की ही चर्चा सुनायी तीन–चार दिन ठहरकर आप रामघाट की ओर चल दिये। चलते समय मुझसे कहा, "भक्तजी का शरीर सोलह दिन और रहेगा। तुम यहीं रहकर इनकी सेवा करो।"

मैंने सहर्ष श्रीमहाराजजी की आज्ञा का पालन किया। ठीक सोलहवें दिन दोपहर के दो बजे भक्तजी का निर्वाण हुआ। उनका त्रयोदशा होनेपर मैं श्रीमहाराजजी के पास रामघाट चला आया।

श्रीमहाराजजी की चर्या

अब मैं निरन्तर श्रीमहाराजजी की सेवा में रहकर उनके श्रीमुख से भक्ति और ज्ञानकी चर्चा सुनने लगा। आपमें अलौकिक आकर्षण था। भक्तजन आपका दर्शन पाकर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। आने वाले लोगों में मुझे किसीमें भी जाने की इच्छा दिखायी नहीं देती थी। महाराजजी जहाँ ठहरते वहाँ से जब चलने लगते तो उस स्थान के निवासियों को उनका वियोग

असह्य हो जाता था। उनके चेहरों पर अपार खेद दिखायी पड़ता था, मानों उनकी निधि उनसे छीनी जा रही हो। आपके साथ कुछ साधु, सन्त और ब्रह्मचारी भी रहा करते थे। उनमें यद्यपि मैं अत्यन्त अल्पशिक्षित था, तथापि मुझ पर आपकी अपार कृपा थी। आपका किसी से रंचकमात्र भी भेदभाव नहीं था, सभी से अत्यन्त स्नेह रखते थे।

आपका सत्संग सबेरे प्रायः तीन बजे से ही आरम्भ हो जाता था। उस समय के सत्संग में अभ्यास और वैराग्य की चर्चा ही प्रधानतया रहती थी। फिर नौ बजे से दस बजे तक आप श्रीगीताजी के दो श्लोकों पर प्रवचन करते थे। वह प्रवचन क्या था मानो आप जिज्ञासुओं के हृदय में अपना अनुभव ही उड़लते थे मध्याह्नोत्तर तीन बजे के समय पुनः सत्संग प्रारम्भ होता था। उस समय पहले भक्तजन मिलकर श्रीरामचरितमानस का गायन करते थे और फिर किसी भक्त या संतचरितकी कथा होती थी। पीछे इस समय श्रीमद्भागवत की कथा होने लगी। श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि भक्तों के चरित्र सुनने से उनके गुणों को अपने में लाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। अतः भक्तचरित अवश्य सुनने चाहिये। जब तक भक्तों के चरित्र से प्रेम नहीं होगा और उनकी सेवामें रुचि नहीं होगी तब तक कोई संत या भक्त नहीं बन सकता।

प्रायः देखा जाता था कि जिसकी जिस मार्ग में श्रद्धा होती थी महाराजजी उसकी उसी निष्ठाको पुष्ट कर देते थे। वे ज्ञान मार्गियों से कहते कि एक सैकण्ड भी आत्मचिंतन से खाली मत रहो—'क्षणमात्रं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं बिना।" प्रेमी भक्तों से कहते कि भक्त तो वहीं है जो एक क्षण के लिये भी प्रभु के नामका वियोग सहन नहीं कर सकता—'सा हानिः तन्महच्छिद्रं सा चान्धजड़मूढता। यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्।' इसी प्रकार कर्मकाण्डी पण्डितों से कहते थे कि

जो ब्राह्मण संध्यावन्दन नहीं करता वह शूद्रतुल्य हो जता है तथा जो ब्राह्ममुहूर्त्त में नहीं उठता उसका समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है।

संसार में साधुओं की दो कोटियाँ हैं। एक आचार्य कोटि और दूसरी अवधूत कोटि। श्रीमहाराजजी में दोनों कोटियों के लक्षण विद्यमान थे। जब वे सत्संगमें परमार्थका प्रतिपादन करते थे तो अवधूत कोटिके जान पड़ते थे और व्यवहार करते समय आचार्य कोटिके प्रतीत होते थे। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण में परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नता दोनों साथ–साथ प्रतीत होती हैं। उनकी कमरमे एक वित्तेकी रत्नजटित स्वर्णकरधनी पड़ी रहती थी, परन्तु जब माता यशोदा ने उन्हें बाँधना चाहा तो सारे गोकुल की रस्सियाँ मिलाने पर भी ओछी रहीं। इन प्रसगों से जिस प्रकार भगवान्श्रीकृष्ण की परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नता साथ–साथ सूचित होती हैं उसी प्रकार श्रीमहाराजजी के जीवन में निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों मार्गों का विलक्षण सम्मिश्रण जान पड़ता है।

प्रयागयात्रा

ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज बाबा के प्रेमियों में अग्रगण्य हैं। उनके यहाँ झूसी में एक वर्ष तक अखंड संकीर्तन यज्ञ का अनुष्ठान हुआ। उसकी पूर्णाहुति के समय प्रयाग की अर्धकुम्भी भी थी। श्रीब्रह्मचारीजी की बड़ी उत्कण्ठा थी कि इस पर्व पर पधारकर श्रीमहाराजजी पूर्णाहुति के महोत्सव की शोभा बढ़ावें। इसके लिये उन्होंने आपसे प्रेमपूर्ण आग्रह किया। यद्यपि इतनी लंबी पैदलयात्रा कोई सामान्य कार्य नहीं थी, तथापि ब्रह्मचारीजी के प्रेम ने विजय पायी और आप बीस–पच्चीस भक्तों को साथ ले गढ़मुक्तेश्वर से झूसी के लिये चल पड़े। यह यात्रा सैकड़ों मील की थी। सौभाग्य से मैं भी इस यात्रा में आपके साथ था।

श्रीमहाराजजी के साथ पैदल यात्रा का आनन्द भी विलक्षण था। मैं देखता था कि चलते समय कभी चुप्पी सधती तो दो–दो तीन–तीन घंटेतक सब लोग मीलों चुपचाप चले जाते, कोई भी कुछ न बोलता। और यदि सत्संग छिड़ जाता तो मीलों सत्सगमें ही निकल जाते। मालूम ही न पड़ता कि हम इतनी दूर चले आये हैं। भक्ति और ज्ञान की ऐसी धारा प्रवाहित होती कि उसमें सब लोग निमग्न हो जाते। श्रीमहाराजजी का एक मिनट भी बेकार नहीं जाता था और न वे अपने पास रहने वालों को ही समय का दुरुपयोग करने देते थे। जो सुकुमार प्रकृति के लोग कभी पैदल नहीं चले थे वे भी आपके साथ पन्द्रह–पन्द्रह मील चलने पर भी नहीं थकते थे। दिन या रात्रि में जहाँ भी आप विश्राम करते वहीं दर्शनार्थियों की भीड़ लग जाती थी। भोजन के लिये विविध प्रकार के पदार्थ उपस्थित हो जाते थे। इस पैदल यात्रा में भी हम महाराजजी को पैर फैलाकर सोते हुए नहीं देखते थे। दिन भर की थकान के कारण जब सब लोग निद्रा देवी की गोद में सो जाते तब भी आप सिद्धासन लगाकर रात्रिभर ध्यानस्थ बैठे रहते थे। अधिक से अधिक मैंने यही देखा कि दोनों कुहुनियोंको दोनों घुटनों पर टेककर हस्त तलपर ठुड्डी रखकर विश्राम कर लेते। कभी कभी यदि ब्राह्ममुहूर्त का समय हो जाता और हम लोग सोते रहते तो आप कहते, "अरे रामदास ! ओ सियाराम ! अरे भैया उठो। भजन करो, ध्यान करो। यह मनुष्य जन्म सोने के लिये थोड़े ही मिला है।" इस प्रकार अपने कृपापात्रों पर सदैव कृपादृष्टि रखते थे। प्रातः काल अँधेरे में ही चल देते थे और नौ–दस बजे तक चलकर ठहर जाते थे। फिर भोजन की व्यवस्था होती। कभी–कभी सायंकाल में भी दो घंटे चलते और कहीं रात्रि को ठहर जाते। भिक्षा का प्रबन्ध प्रायः गाँववालों की ओर से हो जाता था अथवा हम लोग सामान माँग लाते और दो–तीन ब्रह्मचारी मिलकर भोजन बनाते थे।

यात्रामें श्रीमहाराजजी प्रायः किसी वृक्ष के तले विश्राम करते थे। हम लोग कुछ पत्ते इकट्ठे करके आसन लगा देते, उसी पर आप बिराज जाते। कभी–कभी आपस में खूब विनोद भी होता था। हमलोगों को पृथक–पृथक वृक्षों के नीचे आसन लगाने की आज्ञा थी। सायंकाल में जब कहीं ठहरना होता तो हमलोग झटपट घने घने वृक्षों के नीचे अपना–अपना आसन लगा लेते और पल्टूबाबा के लिये सूखा ठूँठ छोड़ देते। जब उन्हें कोई स्थान न मिलता तो वे श्रीमहाराजजी के पास पहुँचकर हमारी शिकायत करते। बाबा उनसे अपने पास ही आसन लगानेको कह देते। तब हम उन्हें अपने लिये चुने हुए स्थानोंमें से ही कोई जगह दे देते थे।

यात्रामें भी श्रीमहाराजजी के तीनों समय के सत्संग का कार्यक्रम नियमानुसार चलता रहता था। बीच–बीच में कीर्तन भी होता था। कासगंज, सोरों और फर्रुखाबाद आदि मुख्य–२ स्थानों में तो आपको ४–५ दिन तक ठहरना पड़ा। वहाँ तो उत्सवका–सा रूप ही बन गया। आपके दर्शनार्थ जो लोग एकत्रित होते थे उनमें सभी वर्ग के व्यक्ति होते थे और उन सभी के साथ आपका जो स्नेहपूर्ण व्यवहार होता था उससे जान पड़ता था मानो आप संन्यासी वैरागी, उदासीन, गृहस्थ और ब्रह्मचारी आदि सभी के अपने हैं। बस सत्संग एवं कथा कीर्तनादिकी घूम मच जाती और ज्ञान तथा भक्तिकी गंगा–यमुना प्रवाहित होने लगतीं। गढ़मुक्तेश्वर से कासगंज तक भक्तों सहित आपकी भिक्षाकी व्यवस्था गोरहा के रईस ठाकुर कञ्चनसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी ने की। वे दोनों ही श्रीमहाराजजी के अनन्य भक्त हैं।

कासगंज से चलकर आप सोरों पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का बाल्यकाल व्यतीत हुआ था और जहाँ उन्होंने श्रीनरहरिदाससे भगवान् रामका चरित्र सुना था। वहाँ से आगे

सहवाजपुर पड़ा। यहाँ अमरसा वाले स्वामी श्रीरामानन्दजी सरस्वतीसे भेट हुई। श्रीमहाराजजी से मिलकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए। ऐसा जान पड़ता था मानो दोनों का पहलेसे ही परिचय हो। वहाँ तीन दिन विश्राम करके फर्रुखाबाद पहुँचे। यहाँ ब्रह्मचारी चन्द्रसेनजी मिले। इन्होंने कांग्रेस के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राममें कार्य किया था और कई बार जेल भी जा चुके थे। श्रीमहाराजजी से मिलने पर ये इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने गुरुभाव से उन्हें आत्मसमर्पण कर दिया। आगे चल कर ये दण्डिस्वामी आत्मबोध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए। फर्रुखाबाद से आगे सरैयापुर तक इन्होंने ही सबके भोजन की व्यवस्था की। फर्रुखाबाद के अन्य प्रेमियों में पं० लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री, बाबू मथुराप्रसाद दीक्षित, पं० श्यामसुन्दर (बड़े बाबूजी), पं० रामचन्द्र (छोटे बाबूजी) और पं० शीतलदीनजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी उच्चकोटि के भगवद्भक्त थे। यहाँ सहस्रों नर–नारियों ने श्रीमहाराजजी के दर्शन और सत्संगसे लाभ उठाया।

फर्रुखाबादसे आगे चलने पर एक दिन सायंकालमें एक बगीचेमें विश्राम हुआ। चाँदनी रात थी, सब लोग अपने–अपने काममें लग गये। सुखरामजी लोटेमें जल लेकर शौच के लिये चले उनके साथ ही दस कदम की दूरी पर एक प्रेत भी चलने लगा। सुखरामने यद्यपि समझ लिया कि यह प्रेत है तो भी वे निर्भय रहे। शौचकृत्यसे निवृत्त होकर वे लौट आये और उनके साथ प्रेत भी लौटकर कुएँ पर पहुँचा। यहाँ ब्रह्मचारी रमाकांत जी, जो पीछे महर्षि कार्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुए संध्योपासन के लिये जल खींच रहे थे। उस प्रेत ने उनके समीप जाकर अपने मुँह से हाथ लगाकर जल पिलाने का संकेत किया। वे झट से बोले, "अरे ! मैं संध्या के लिये जल खींच रहा हूँ

इसमें से नहीं पिला सकता।" वे जल लेकर चलते तो उसने फिर दूसरी बार जल पिलाने का संकेत किया। तब भी उसे उन्होंने जल न पिलाया। कहते हैं, जल पिलाने से प्रेत की शक्ति अपने ऊपर काम करने लगती है, अतः ऐसे अवसर पर प्रेत को जल नहीं पिलाना चाहिये। फिर वह पल्टू बाबाके पास पहुँचा। कभी उनके सिराहाने जाता, कभी पायताने और कभी बीच में रहता। वे उठकर बैठ गये और भजन करने लगे। तब प्रेत श्रीमहाराजजी के पास पहुँचा। वे वृक्षों की गुमटीके नीचे बैठे हुए थे। प्रेत कभी इस वृक्षसे उस वृक्ष पर और कभी उस परसे इस पर आता। कभी वृक्षों को पकड़कर झकझोर देता। इस प्रकार जब उसने बहुत ऊधम मचाया तो महाराजजी बोले "अरे रामदास! सियाराम! यहाँ आओ। भैया! यह प्रेत तो बहुत ऊधम मचा रहा है।" सब इकट्ठे हो गये। सुखराम ने कहा, "महाराज! यह मेरे साथ भी शौचस्थान तक गया था।" रमाकांत बोले, "भगवन्! मुझसे इसने पानी पिलाने के लिये हठ किया था। पल्टूबाबा कहने लगे, "कृपालु! मुझे भी यह तंग कर रहा था।" तब सभी लोग भजन करने लगे। इससे थोड़े ही देर में वह प्रेत चला गया।

इससे आगे जब आप सरैयापुर पहुँचे तो वहाँ स्वामी श्रीहीरानन्दजी मिले। ये महाराजजी के पूर्व परिचित और अत्यन्त प्रेमी थे। महाराजजी से मिलने पर आपको अपार आनन्द हुआ और सम्पूर्ण मंडली की सुविधा के विचार से आप महाराजजी से चार–पाँच मील आगे–आगे चलने लगे। इस प्रकार कानपुर तक प्रायः सौ मील चलकर आपने सबके भोजन की सुन्दर व्यवस्था की। इससे महाराज के प्रति आपको अपूर्व अनुराग प्रकट होता है। कन्नौजमें आपने बाबाको पाँच–छः दिन ठहराया। वहाँ पं० गणेशदत्तशास्त्री आदि आपके अनेकों प्रेमी थे। उन्होंने महाराजजी का सत्संग करके अपने को धन्य माना।

यहाँ से आगे कानपुर में हम सब लोग श्रीगंगाजी की रेती में ही ठहरे। यह समाचार जब सेठ कमलापति की धर्मपत्नी ने सुना तो वे तुरन्त महाराजजी के दर्शनों को आयीं। ये सेठानी सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ पद्मपति सिंहानिया की माताजी हैं। पहले से ही साधुसेवामें इनकी बहुत रुचि है। श्रीमहाराजजी को देखकर ये अत्यन्त भावविभोर हो गयीं, मानों उनकी पूर्वपरिचिता हों। उन्होंने श्रीमहाराजजी का अपूर्व स्वागत किया और अत्यन्त आग्रह करके कई दिन कानपुरमें रोके रखा। यहाँ भी सहस्रों नर–नारियोंने आपके दर्शन और सत्संग से लाभ उठाया।

कानपुरसे चलकर हम लोग फतहपुर पहुँचे। यहाँ के एक सुप्रसिद्ध वकील श्रीशंकरलालजी ने आपका बड़े समारोह से स्वागत किया। ये अपनेको श्रीमहाराजजी का शिष्य मानते थे। इनके शिष्यत्व ग्रहण करने की घटना बड़ी विचित्र है, एक रात्रि में इन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर श्रीमहाराजजी ने बताया कि मैं रामघाट में रहता हूँ। वकील साहब उठकर दूसरे ही दिन रामघाट गये और वहाँ आपको देखकर श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

फतहपुर तक तारकोल की सड़क पर चलनेके कारण श्रीमहाराजजीके तलवे घिस गये थे, और उनमें रुधिर झलकने लगा था अतः वकील साहब की धर्मपत्नी और पुत्री ने आपके चरणों में मखमल की गद्दीया बाँध दीं। वहाँ तीन दिन ठहरकर आपने पुनः यात्रा आरम्भ की और विभिन्न स्थानों में ठहरते एकादशी के दिन प्रयागराज पहुँचे। यहाँ अनूपशहर वाले पं० शिवशंकरजी कई दिनों से आपकी प्रतिक्षा कर रहे थे। यद्यपि मेले की बहुत भीड़ थी तथापि दैवयोग से अनायास ही उनसे हमारी भेंट हो गयी। श्रीमहाराजजी को देखते ही वे हर्षोल्लास से उछल पड़े और

उन्होंने ही हम सबके फलाहार की व्यवस्था की। फलाहारके पश्चात् सब लोग झूसीमें ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी के आश्रम पर पहुँचे।

श्रीब्रह्मचारीजी का महाराजजी के प्रति बड़ा अनुराग था। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह पर ही आप झूसी पधारे थे। ब्रह्मचारीजी ने अपूर्व प्रेमका परिचय दिया और स्वागत–सत्कार के पश्चात् सबको यथायोग्य विश्राम कराया। ब्रह्मचारीजी नित्यप्रति स्वयं डोंगी खेकर बाबाको त्रिवेणीस्नान कराने के लिये ले जाया करते थे। साथ ही दूसरी डोंगियों पर अन्यान्य भक्तगण जाते थे। श्रीगंगाजी में जाते और आते समय हरिनामसंकीर्तन की अलौकिक शोभा होती थी।

श्री ब्रह्मचारीजी के यहाँ कीर्तन, कथा एवं सत्संग की बड़ी सुन्दर दिनचर्या थी। श्रीमहाराजजी वहाँ के प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मिलित होते थे। एक ओर तैलधारावत् अखण्ड संकीर्तन चलता रहता था तथा दूसरी ओर कथा–प्रवचनादिका कार्यक्रम रहता था। ब्रह्मचारीजी नित्यप्रति नये–नये विद्वान् और महात्माओं को लाकर उनके प्रवचन कराते थे। इसी जगह हमें पहले–पहल श्रीमद्भागवत के प्रकांड पण्डित श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी की कथा सुनने को मिली। इनकी कथा सुनकर श्रीमहाराजजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराजजी से वेदान्तसम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। उनके आपने ऐसे स्पष्ट उत्तर दिये कि पण्डितजी का चित्त सदा के लिये आपकी ओर आकर्षित हो गया। आगे चलकर आप ही सन्यास लेने पर स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीमहाराजजी का निर्वाण होने पर आपही उनके आश्रम के ट्रस्टाधिपति हुए। इनके अतिरिक्त श्रीजयरामदासजी 'दीन' और बाबारामदासजी ग्वालियरवालों के भी रामचरितमानस पर बड़े विलक्षण प्रवचन होते थे। इनमें दीनजी तो पूर्वपरिचित थे, परन्तु बाबा

रामदासजी से यहीं परिचय हुआ और वह प्रेमसंबन्ध ऐसा जुड़ा जो अन्ततक अक्षुण्ण बना रहा। स्वामी श्रीकरपात्रीजी और विरक्तप्रवर श्रीरामदेवजी मेले के बीच में ठहरे हुए थे। ये दूसरे–तीसरे दिन अवकाश पाने पर श्रीमहाराजजी से मिलने के लिये आते रहते थे।

विरक्तमण्डल की कुटियायें झूसी से प्रायः तीन मील दूर थीं। एक दिन श्रीमहाराजजी करपात्रीजीको साथ लेकर विरक्तों से मिलने के लिये गये। उस समय उनके साथ प्रायः पाँच सौ मनुष्य होंगे। वहाँ के प्रायः सभी गण्य–मान्य विरक्त महाराजजी से परिचित थे। उनमें स्वामी श्रीऋषभदेवजी, श्रीसच्चिदानन्दजी, श्रीजीवनमुक्तजी और श्रीमंगलहरिजी आदि के नामविशेष उल्लेखनीय हैं। बाबा इन सबकी कुटियाओं पर जाकर इनसे मिले। आपने श्रीकरपात्रीजी से सत्संग चलाने के लिये कोई प्रश्न करने का संकेत किया। श्रीकरपात्रीजी ने पूछा, "जीव के कल्याण का प्रधान साधन क्या है?" इस पर श्रीऋषभदेवजी बोले, "कल्याण तो सर्वत्याग से होता है, आप लोग तो इतनी भीड़ लेकर आये हैं। इसमें कल्याण कहाँ? तब करपात्रीजी ने हँसकर कहा, "महाराज! जब विवेक द्वारा सम्पूर्ण प्रपञ्च का निषेध हो गया तो इन मच्छरों से हमारी क्या हानि हो सकती है?" इसी प्रकार कुछ देर सत्संग चलता रहा। तदन्तर महाराजजी कुटीपर लौट आये इसी प्रकार आप प्रत्येक मण्डलेश्वर के कैम्प में जाकर उनसे मिले।

साधु–महात्माओं का वृहद् भण्डारा था। उसमें आठ–दस मण्डलेश्वर भी एकत्रित हुए थे। श्रीमहाराजजी भी आमन्त्रित होकर गये। आपके साथ गीताप्रेस गोरखपुर के संस्थापक श्रीजयदयालगोयन्दका भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने उपस्थित महात्माओं के आगे यह प्रश्न

रखा कि ज्ञान हो जाने पर अविद्यालेश रहता है या नहीं ? प्रायः सभी मण्डलेश्वरों का यही मत था कि यदि अविद्यालेश नहीं रहेगा तो ज्ञानी के प्रारब्ध का भोग कैसे होगा और गुरु–शिष्य परम्परा भी कैसे चलेगी ? इसलिये भगवान् शंकराचार्य ने अविद्यालेश को स्वीकार किया है और इसे मानना भी चाहिये। यही प्रश्न जयदयालजी ने श्रीमहाराजजी से भी किया। आप इसके उत्तर में चुप रहे। किन्तु जब आपका उत्तर सुनने के लिये अत्यन्त उतावले होकर उन्होंने एकान्त में फिर आपसे यही प्रश्न किया तो आप बोले, "भैया ! उत्तर तो हो गया। फिर क्या पूछते हो ? रज्जूका ज्ञान हो जाने पर भी क्या उसमें अध्यस्त सर्पकी पूँछ रह जाती है ? इस पर जयदयालजी ने पुनः आपत्ति की, "भगवान् शंकराचार्यजी ने तो माना है" तब महाराजजी बोले, "भगवान् शंकराचार्य स्वप्न पुरुष थे। या स्वप्नद्रष्टा ?" यह उत्तर पाकर श्रीजयदयालजी गद्गद् हो गये तथा चुप हो रहे।

श्री ब्रह्मचारीजी के यहाँ जो अनुष्ठान चल रहा था उसकी पूर्णाहुति हरिहाटके महोत्सव के साथ हुई। उस समय जगह–जगह भजन कीर्तन, सदुपदेश, कथा, प्रवचन तथा भगवल्लीलाओं का क्रम चलता था। अन्त में अनुष्ठानमें व्रती साधकोंने श्रीमहाराजजीके सम्मुख भविष्यमें भी नामजप करते रहने की प्रतिज्ञा करके अपना मौन खोला तथा स्वामी श्री एकारसानन्दजी सरस्वती ने दीक्षान्त भाषण दिया।

उत्सव के पश्चात् श्रीब्रह्मचारीजी ने सन्तमण्डली के साथ बहुत दिनों से लुप्त हुई तीर्थराज प्रयाग की परिक्रमा करने का विचार प्रकट किया। यह परिक्रमा प्रायः पच्चीस मील की थी। श्रीमहाराजजी ने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर क्या था ? श्रीमहाराजजी का सम्पूर्ण परिकर, बाबा श्रीरामदासजी का संत समाज और

ब्रह्मचारीजी की कीर्तनमण्डली के अतिरिक्त और भी सहस्रों नर–नारी परिक्रमा में सम्मिलित हो गये। प्रस्थान के पूर्व ब्रह्मचारीजी के कोषाध्यक्ष ने बताया कि उनके पास केवल डेढ़ आना शेष है। परन्तु ब्रह्मचारीजी तो प्रभुपर निर्भर रहने वाले थे। उन्हें इसकी क्या चिन्ता हो सकती थी। उन्होंने तो 'कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव' बोलकर कूच का आदेश दे दिया। बस, यात्रा आरम्भ हुई और मार्ग में स्थान–२ पर कथा, कीर्तन, सत्संग, भजन प्रवचन, रासलीला, रामलीला, आदि की अपूर्व धूम मची रही। इस प्रकार तीन चार दिन में वह यात्रा सम्पूर्ण हुई। खर्चे का सब प्रबन्ध स्वयं ही होता रहा।

काशी और अयोध्या में

प्रयाग–परिक्रमाके पश्चात् श्रीमहाराजजी काशी पधारे। वहाँ हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था खुरजावाले सेठ गौरीशंकर गोइनका की ओरसे ज्ञानवापीके समीप उन्हींकी कोठीमें थी। सेठजी यद्यपि इस समय बाहर गये हुए थे, किन्तु उनके आदेशानुसार उनके मुनीमने सब व्यवस्था बड़ी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक की थी। प्रातःकाल दो–ढाई मील चलकर हम सब लोग अस्सीघाट से आगे नित्य कृत्य से निवृत्त होते थे और वहाँ से लौटते समय भगवान् विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के दर्शन करते थे।

इन दिनों हिन्दूविश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे अनूपशहरवाले पं० गंगाशंकर मेहता। ये हमारे श्रीमहाराजजी के पूर्वपरिचित और प्रेमी थे। इन्होंने हम सबको ले जाकर विश्वविद्यालय दिखाया। वहाँ का पुस्तकालय भी बड़ा विशाल था। उसमें संसार के सभी देशों की पुस्तकें संगृहीत थीं। हमने उस पुस्तकालय की छत पर बैठकर संकीर्तन किया।

मेहताजी ने ही महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी को श्रीमहाराजजी के आगमन की सूचना दी। सुनते ही श्रीमालवीयजी मेहताजी के स्थान पर पधारे। दोनों महापुरुष परस्पर लिपट गये और प्रेमाश्रु बहाने लगे। इन दिनों श्रीमालवीयजी दशाश्वमेध घाट पर हरिजनों को 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र की दीक्षा दिया करते थे। इस विषयमें उन्होंने पुराणोंसे अनेकों प्रमाण संगृहीत किये थे। उस पुस्तक की कई प्रतियां उन्होंने श्रीमहाराजजी को भेंट कीं।

इस प्रकार कुछ दिन काशीमें रहकर आप पुनः प्रयाग लौट आये। अब चैत्रमास आरम्भ होने पर श्रीब्रह्मचारीजी और ग्वालियरवाले बाबा रामदासजीने अपने-अपने भक्तमंडल सहित अयोध्याको प्रस्थान किया। सब मिलाकर पचास-साठ मूर्ति होंगे। मार्ग में जहाँ भी ठहरते महाराजजी के भक्तमंडल और बाबा रामदासजी के विरक्तमंडलकी वृक्षों के नीचे अलग-अलग रसोई बनती तथा साथ मिल-जुलकर संकीर्तन एवं सत्संग होता। इस यात्रामें भी बड़ा अलौकिक आनन्द रहा।

इस प्रकार कई दिन की यात्रा के पश्चात् हम अयोध्या पहुँचे। यह श्रीरामनवमी का अवसर था। सड़कों पर अपार भीड़ थी। श्रीमहाराजजी विचारने लगे कि इस भीड़ में होकर कैसे जायँ। इतने ही में किशनसिंह दरोगा ने घोड़े से उतरकर आपके चरणोंमें प्रणाम किया। ये अतरौली के पास एक गाँवके रहने वाले थे और इनका सारा घर ही श्रीमहाराजजी का अनन्यभक्त था। इन दिनों ये फैजाबाद में थे। और इनकी नियुक्ति मेलाका प्रबन्ध करने के लिये अयोध्यामें थी। वे बोले, "मैं तो कई दिनों से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था।" बस, वे सब भीड़ को हटाते हुए आगे-आगे चले और हम सब

लोग बड़ी सुविधासे हनुमत निवास पहुँच गये। यहीं एक स्वतंत्र मकानमें हम सब ठहरे। यहाँ रहकर हमने यथासमय हनुमानगढ़ी, कनक भवन और जन्मस्थान आदि सभी प्रमुख स्थानोंके दर्शन किये।

अयोध्या के अनेकों संतों से भी आप उनमें स्थानों पर जाकर मिले। उनमें स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी, श्रीमौनीबाबाजी और श्री अंजनीनन्दनशरणजी (शीतलासहायजी) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। श्रीरामवल्लभाशरणजी उस समय अयोध्या के प्रमुख सन्त थे। वे बहुत बड़े विद्वान्, तेजस्वी और भगवान् के अनन्य भक्त थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। अब वे बहुत वृद्ध हो गये थे, और उनके स्थान की व्यवस्था उनके प्रधान शिष्य श्रीरामपदार्थदासजी वेदान्ती करते थे। जिस समय श्रीमहाराजजी जानकीघाट पर उनके स्थान में गये उस समय वेदान्तीजी की कथा हो रही थी।

श्रीमौनीबाबा की छावनी सरयूतट पर अयोध्या के दक्षिण में थी। कहते हैं, एकबार इनके गुरुजी के यहाँ बहुत बड़ा भण्डारा था। ये सरयू स्नान को गये हुए थे। जब लौटे तो स्थान का फाटक बन्द पाया। वहाँ बहुत से दरिद्रनारायण (कंगले) भी इकट्ठे हो गये थे। इनके फाटक खुलवाने पर वे सब भी भीतर घुस गये। कंगलों को भीतर आया देख संन्तों की पंगत प्रसाद छोड़कर खड़ी हो गयी। इससे इनके गुरुमहाराजको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने इन्हें आदेश दिया कि तुरन्त हमारे सामने से चले जाओ। वे क्या करते ? भीगे कपड़े पहने उल्टे पाँव वहाँ से चले आये और सरयूतट पर बारह वर्षतक मौन रहकर तपस्या करने लगे, इससे इनकी बड़ी ख्याति हो गयी और एक राजा इनका शिष्य हो गया। फिर तो जैसी साधुसेवा गुरुजी के स्थानपर होती थी वैसी ही इनके यहाँ भी होने लगी। इस समय इनकी आयु सौ

वर्षके लगभग थी और ये बहुत बीमार थे। बोलने की भी शक्ति नहीं थी। इन्होंने लेटे–लेटे ही श्रीमहाराजजीको नमस्कार किया। इनके स्थानपर 'श्री राम जय राम जय जय राम' की अखण्ड ध्वनि होती रहती थी।

मानसपीयूष के सम्पादक श्रीअंजनीनन्दनशरणजी भी बड़े विलक्षण महात्मा थे। वे जैसे भगवत्प्रेमी थे वैसे ही सन्तप्रेमी भी थे। उनका नियम था कि वे केवल सन्तों का उच्छिष्ट प्रसाद ही पाते थे। एक दिन उन्होंने परिकर सहित श्रीमहाराजजी को आमन्त्रित किया। तरह–तरह के व्यञ्जन तैयार करके सबको भोजन कराया और फिर हाथों में थाली लेकर सब सन्तों से उच्छिष्ट प्रसाद की भिक्षा माँगी। भगवान् की आरती करते समय वे ऐसे प्रेम विह्वल हुए कि आरती की थाली भी दूसरों को सँभालनी पड़ी। जब श्रीमहाराजजी वहाँ से चलने लगे तो आप उनके चरणों पर सिर रखकर साष्टाँग पड़ गये। बहुत प्रयन्त करने पर भी जब उन्होंने महाराजजी के पैर न छोड़े तो महाराजजी ने ब्रह्मचारीजी की ओर देखा। वे क्या करते, बस, अंजनीनन्दनशरणजी के चरणों पर सिर रखकर वे साष्टांग पड़ गये। इस पर अंजनीनन्दनशरणजी के एक भक्त ब्रह्मचारीजी के चरणों पर सिर रखकर बैठ गये। कोई किसी को छोड़ता नहीं था। यह अद्भुत प्रसंग देखकर श्रीमहाराजजी के सब भक्त कीर्तन करते हुए इस दण्डवतशृङ्खला की परिक्रमा करने लगे। कुछ देर में यह शृङ्खला खुली। तब सब लोग कीर्तन करते अपने निवासस्थान पर आये।

अयोध्या में रहते हुए श्रीमहाराजजी जिस घाट पर सरयूस्नान के लिये जाते थे वहाँ श्रीसीता और राम के दो स्वरूप भी रहते थे। उनका स्वाभाविक ही आपसे बहुत प्रेम हो गया। अयोध्या में जहाँ **कहीं** उनकी झाँकी होती वे श्रीमहाराजजी को भी बुलाते थे। ये दोनों स्वरूप जैसे सुन्दर थे वैसे ही दयालु भी थे। एक बार उन्होंने एक वैष्णव साधु को

उदास देखा। उदासी का कारण पूछने पर साधु ने बताया कि श्रीरामेश्वरजी की यात्रा के लिये जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा तो बहुत उत्कट है परन्तु पास में पैसा है नहीं। यह सुनकर स्वरूप चुप हो रहे। रात्रि को उन्होंने उस साधु के वस्त्रों में रामेश्वर की यात्रा के लिये पुष्कल रुपये बाँध दिये। रुपयों की पोटली देखकर वह साधु बहुत प्रसन्न हुआ और उसी दिन यात्रा के लिये चला गया।

अलीगढ़ निवासी बाबू रामस्वरूप केला के बड़े भाई श्रीमक्खनलाल केला उस समय जिला बस्ती में डिप्टी कलक्टर थे। वे एक दिन सम्पूर्ण भक्तमण्डल के सहित श्रीमहाराजजी को सरयू के दूसरे तटपर जिला बस्तीके अन्तर्गत हरया तहसील के विक्रमज्योति डाक बँगले पर ले गये। इसके लिये उन्होंने दो नौकायें भेजी थीं। उन्हींके द्वारा वहाँ की यात्रा हुई। जिस डाक बँगले पर अँग्रेजों का निवास और अँग्रजी विलासिता का बाहुल्य रहा था। उसी पर भगवान्‌की पूजा, सन्त–महात्माओं की सेवा, भगवन्नाम कीर्तन और कथा–सत्संगादिका शुभ संयोग देखकर श्रीब्रह्मचारीजी आनन्दावेश में विह्वल होकर रोने लगे। उस दिन एकादशी तिथि थी। अतः सभी को श्रीकेलाजी ने फलाहारी भोजन कराया।

अयोध्या से प्रस्थान करने पर सायंकाल में सब लोग गुप्तारघाट पर ठहरे। यह स्थान अयोध्या से प्रायः तीन मील, फैजाबाद के समीप सरयूतटपर है। यहाँ का दृश्य बड़ा सुन्दर है। इसी स्थान से भगवान् राम ने प्रजाजनके सहित परमधाम साकेतलोकको प्रस्थान किया था। यहाँ सुप्रसिद्ध संत श्रीनारायणस्वामी के कृपापात्र श्री मौनी बाबा मिले, जो टाट की लँगोटी लगाते थे। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह से यहाँ श्रीमहाराजजी दो–तीन दिन रुके। श्रीनारायणस्वामी जी की माताजी तथा भाई ने सम्पूर्ण भक्तगण के भोजनादि की व्यवस्था की।

लखनऊ की ओर

ब्रह्मचारीजी के कुछ प्रेमियों ने झूसी में ही श्रीमहाराजजी से लखनऊ पधारने की प्रार्थना की थी। आपने उन्हें वहाँ जाने का वचन भी दे दिया था। अतः अब श्रीमहाराजजी की सम्मति से आपने अपने भक्तपरिकर सहित लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। जब लखनऊ प्रायः १८ मील रहा तब एक दुर्घटना हो गयी। मार्ग में दोपहर के समय एक बगीचे में विश्राम हुआ। वहाँ ब्रह्मचारी रमाकान्त और मास्टर राधाबल्लभ मिलकर रोटी बनाने लगे। उस बगीचे में डंगारा मधुमक्खियों का छत्ता था। धूँआ लगने से वे क्षुब्ध हो गयीं और सबको काटने लगीं। लोग इधर–उधर दौड़कर अपने को बचाने लगे। जिन्होंने बचने के लिये पानी में डुबकी लगायी उनके आस–पास भी मक्खियाँ मँडराती रहीं और जब उन्होंने पानी से सिर निकाला तभी उनके डंक मार दिया। श्रीमहाराजजी को भी कई जगह मक्खियों ने काटा। भक्तों ने उनके ऊपर कम्बल डाल दिया और कहा कि भागिये। वे उठकर जैसे ही भगे कि गिर गये। इससे उनके घुटने में बहुत चोट लगी। लखनऊ पहुँचने पर डाक्टरों ने मधुमक्खियों के डंक निकाले और उस चोट की भी चिकित्सा की।

जिस दिन मधुमक्खियों ने महाराजजी को काटा उसी रात फतहपुरके तत्कालीन पुलिस सुपरिन्टेण्डैण्ट ने स्वप्न में यह घटना देखी। उन्होंने फोन द्वारा इस स्वप्न की सूचना महाराजजी के भक्त सरकारी वकील श्रीशंकरलालजी को दी। सुनते ही वे मोटरद्वारा आये और वैसी ही घटना देखकर आश्चर्यचकित हो गये। जिस सड़क से श्रीमहाराजजी लखनऊ पहुँच रहे थे उसी पर सेठ जमनालाल बजाज के साथ महात्मा गाँधी लखनऊ की ओर से टहलने के लिये आ रहे

थे। श्रीब्रह्मचारीजी ने आपसे पूछा कि महात्माजी से मिलाऊँ? परन्तु इस स्थिति में आपने महात्माजी से मिलने की अनिच्छा प्रकट की। अतः मिलना न हो सका।

लखनऊ में ब्रह्मचारीजी के एक प्रेमी भक्त प्रोफेसर लुम्बा थे। उनके नवनिर्मित भवन में प्रवेश करके श्रीमहाराजजी ने उसका उद्घाटन किया। लुम्बाजी का सारा परिवार ही अत्यन्त भगवद्भक्त और सन्तप्रेमी था। यहाँ श्रीमहाराजजी और उनके परिकर को पुराने शहर के एक मन्दिर में ठहराया गया था। वहीं विशेष रूप से सत्संग एवं कथा–कीर्तनादि भी होते थे। दर्शनार्थियों की भीड़ से मन्दिर खचाखच भरा रहता था। श्री महाराजजी के सत्संग और बाबा रामदास जी के रामचरितमानस की कथा से वहाँ सहस्रों नर–नारियों ने लाभ उठाया। इस प्रकार प्रायः दस दिन तक वहाँ सन्त समागम की धूम रही।

इन दिनों यहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन था। अतः कांग्रेस के प्रायः सभी प्रधान नेता लखनऊ में आये हुए थे। बरहजवाले बाबा रामदासजी की सहायता से मुनिलालजी ने महात्मा गाँधी के साथ श्रीमहाराजजी की भेंट का समय निश्चित किया। इस समय श्रीब्रह्मचारी जी कहीं बाहर गये हुए थे। अतः महाराजजी स्वामी ब्रह्मचैतन्यपुरी, बाबा रामदास और मुनिलाल को साथ लेकर महात्माजी के निवास–स्थान पर गये। सेठ जमुनालालजी ने भेट की व्यवस्था की। महात्मा जी ने खड़े होकर सन्तों का अभिवादन किया। परन्तु सामान्य कुशल प्रश्न के सिवा और कोई विशेष बात नहीं हो सकी। यह महात्माजी के यहाँ रामचरितमानस के गान का समय था। गान समाप्त होने पर एक सज्जन महात्माजी को कुछ आय–व्यय का लेखा सुनाने लगे, अतः सब लोग समय समाप्त हुआ समझकर वहाँ से उठ आये।

लखनऊ से बाबा रामदासजी तो ग्वालियर चले गये और ब्रह्मचारीजी सनातन धर्म सभा के उत्सव में कानपुर। महाराज जी को जिला आगरे में खाँड़ा पहुँचना था। अतः वे अपने परिकर सहित वहाँ के लिये चले।

खाँड़े का ब्रह्मसत्र

लखनऊ से खाँड़े तक की यात्रा भी बड़ी अलौकिक थी। परन्तु यहाँ स्थानाभाव के कारण उसका विवरण नहीं दिया जा सकता। खाँड़ा जिला आगरे में चमरौला स्टेशन के समीप एक गाँव है। यहाँ पं० चोखेलाल, घूरेलाल और प्यारेलाल आदि कुछ वेदान्तनिष्ठ सत्संगी प्रतिवर्ष कुछ महात्माओं को आमन्त्रित करके ब्रह्मसत्र किया करते थे। इस वर्ष उन्होंने इस आयोजन में श्रीमहाराजजी को भी आमन्त्रित किया। आपने उसमें सम्मिलित होना स्वीकार करते हुए उनसे कहा कि इस वर्ष का सत्र अपूर्व होना चाहिये। अतः इस बार उन्होंने बड़ी तैयारी की थी और वहाँ जनतामें भी बड़ी जागृति थी। सत्रमें पधारनेके लिये आस–पास के सभी प्रमुख संत आमन्त्रित किये गये थे। जो महापुरुष पधारे उनमें पण्डित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रमजी स्वामी निर्मलानन्दजी श्रीकरपात्रीजी, परमहंस रामदेवजी, विरक्त श्री सच्चिदानन्दजी और बालब्रह्मचारी पं० जीवनदत्तजी के नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। श्रीमहाराजजी भी कई स्थानोंमें होते ठीक समय पर खाँड़ा पहुँच गये। उनके पहुँचते ही उत्सवकी शोभा बहुत बढ़ गयी नित्यप्रति दर्शनार्थियों की अपार भीड़ आती थी और जब तक जनता उनके दर्शन नहीं कर लेती थी तब तक कोई कार्यक्रम आरम्भ नहीं हो पाता था। दर्शनार्थियों की सुविधा के लिये आपको ऊँचे तख्त पर विराजमान करा दिया जाता था। फिर भी चरणस्पर्श के लिये इतना संघर्ष होता था कि कई तख्त टूट गये। इस धक्का–मुक्की में एक बुढ़िया आपके पैर पर गिर गयी। तबसे उस चरण में नाड़ीका कोई ऐसा व्यतिक्रम हो गया कि कई वर्षों तक जलन–सी होती रही और आपको विशेष चलने में भी कठिनता हो गयी।

इस उत्सवमें योगवासिष्ठ, उपनिषद्, गीता और उपदेश–साहस्री आदि वेदान्तग्रन्थों पर प्रवचन होते थे। सायंकाल में चार से छः बजे तक वेदान्तसम्बन्धी प्रश्नोत्तर होते थे, जिनके लिये सभी को छूट थी। कोई भी सज्जन अपनी समस्या रख सकते थे। उसपर उपस्थित महापुरुष अपना–अपना विचार व्यक्त करते थे। इस उत्सव में अवागढ़ के राजासाहब श्रीसूर्यपालसिंह अपनी कीर्तन मण्डली के सहित आये हुए थे। वे नित्यप्रति बैण्डबाजे के साथ श्री महाराजजी के सामने कीर्तन किया करते थे। उत्सव की समाप्ति पर महाराजजी उनकी प्रार्थना से अवागढ़ पधारे। यह उत्सव सचमुच बहुत सफल हुआ। पं० चोखेलाल आदि स्वभाव से ही अत्यन्त सन्तप्रेमी हैं। उन्होंने सन्तों की सेवा भी खूब की।

वज्रदपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

इसके कुछ वर्षों पश्चात् श्रीवृन्दावनधामे महाराजजी का आश्रम बना। उसकी नींव व्रजमण्डल के सुप्रसिद्ध संत श्रीग्वारिया बाबाजी से रखवायी गयी थी। आश्रम बन जाने पर उसका उद्‌घाटनोत्सव ऐसी धूमधाम से हुआ कि जैसा श्रीमहाराजजी के जीवनकाल में न तो उससे पहले ही हुआ था और न उसके पश्चात् ही। श्रीवृन्दावन धाम में भी हमने ऐसा विशाल उत्सव और कोई नहीं देखा।

किन्तु इस उद्‌घाटन समारोह के कुछ दिन पूर्व मुझ से एक अपराध बन गया था। मैंने जब अपना अपराध स्वीकार कर लिया तो श्रीमहाराजजी ने तीन वर्षों के लिये अपने चरणों से अलग करके मुझे कठोर दण्ड दिया। मैंने बहुत प्रार्थना की और अनेक प्रकार से रुदन भी किया, परन्तु आपने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया। इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे प्रभु जैसे

दयालु और कृपालु थे वैसे ही निजजननिष्ठुर भी थे। बाबूराम सहायजी ने मेरे लिये बहुत बहस भी की परन्तु हमारे लिये तो इस बार आप अत्यन्त कठोर बन गये। श्रीगोसाईंजी ने भी कहा है–

'जदपि परम दुख पावहि, रोवइ बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननि पै, गनति न सो सिसु पीर।।'

संस्कृत के किसी कवि की भी उक्ति है–

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

इसको गोसाईं जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुझि परै कहु काहि।।

श्रीमहाराजजी के चरणों से बिछुड़ने पर हमारी दशा मणिविहीन फणी के समान हो गयी। उस व्याकुलता में मेरे भीतर ऐसी प्रेरणा हुई कि अब मुझे केवल प्रभु का ही सहारा लेना चाहिये। अतः मैंने पुनः श्रीमहाराजजी की प्रसन्नता प्राप्त करने के उद्देश्य से पाँच हजार विष्णुसहस्रनाम–पाठ करने का संकल्प किया।

उन दिनों मैं अत्यन्त दुःखी था। फिर भी अपने अनुष्ठान को नियमानुसार करता, मैं कर्णवास से विचरता भगवानपुर पहुँचा वहाँ स्वामी श्रीशास्त्रानन्द जी महाराज अपनी कुटी पर ही थे। आप श्रीमहाराजजी के अत्यन्त प्रेमी हैं और श्री महाराजजी भी आपसे अत्यन्त स्नेह रखते थे। मैंने सोचा कि यदि मैं आपसे मिलूँगा तो आप मुझ से श्रीमहाराजजी का समाचार और उनसे अलग होकर मेरे विचरने का कारण अवश्य पूछेंगे और मुझे उस का उत्तर देना एक

जटिल समस्या होगी, अतः मैं उनके पास न जाकर वहाँ से तीन मील दूर बुगरासी नामक गाँव में चला गया और पाँच महीने तक वहीं अपना अनुष्ठान करता रहा।

इन्हीं दिनों श्रीवृन्दाबन के आश्रम का उद्घाटनोत्सव आरम्भ होनेवाला था। उसके लिये विभिन्न महानुभावों के पास निमन्त्रण पत्र गये थे। स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी को लाने के लिये उनके पास एक आदमी भी आया था। उसके साथ आप बुगरासी होते हुए श्रीवृन्दाबन जा रहे थे। आपको मेरे विषय में लोगों से यह सूचना मिल चुकी थी कि बुगरासी में एक सन्त आये हुए हैं जो दिनभर केवल पाठ करते रहते हैं, केवल रात्रि के समय ही एक–आध बातचीत करते हैं ? पूछने पर अपना कोई परिचय नहीं देते, कहते हैं कि मैं पूर्व से विचरता हुआ आया हूँ।

श्रीशास्त्रानन्दजी ने इस सन्त से मिलने का यह अच्छा अवसर समझा। अतः वे मेरी कुटी पर आकर खड़े हो गये। मैंने देखते ही आसन से उठकर उनका चरणस्पर्श किया। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा, "ओहो ! रामदासजी ही अच्छे सन्त के नाम से यहाँ विख्यात हो रहे हैं–यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। आपके श्रीमहाराजजी की कुटियापर वृन्दाबनमें महान् उद्घाटनोत्सव होने वाला है। आप भी साथ–साथ चलिये।' मैंने कहा, "श्रीमहाराजजी ! मुझसे अप्रसन्न हैं। अतः जब तक वे वहाँ आने की आज्ञा न करें तब तक मैं जाने में असमर्थ हूँ। आप उनसे मेरी चर्चा करें और मेरी ओर से प्रार्थना भी कर दें।" आपने मुझ से पुनः पुनः चलने का आग्रह किया तो भी मैं वृन्दावन न जा सका। अन्त में आपने वहाँ के लिए प्रस्थान किया। इस समय मेरे चित्तकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी।

श्रीशास्त्रानन्दजी ने वृन्दाबन पहुँते ही मुझे न बुलाने का कारण पूछा। इस पर श्रीमहाराजजी यह कहकर चुप हो गये कि मैं कब मना करता हूँ चाहे कोई आवे, कोई जाय। जब उत्सव का सातवाँ दिन था तब महाराजजी ने अपने भक्तों से कहा, "बेटा ! उत्सव ने तो बड़ा विशाल रूप धारण कर लिया।" आपको प्रफुल्लित पाकर श्रीचैतन्यदेवजी ने कहा, "इस समय रामदासजी की अनुपस्थिति खटकती है। यदि आपकी आज्ञा हो तो उन्हें भी बुला लिया जाय।" श्रीमहाराजजी ने कहा, "तू अपनी ओर से आदमी भेजकर उसे तुरन्त बुला ले।" तब चैतन्यदेवजी ने मुझे लाने के लिये एक ब्रह्मचारी को भेजा। श्रीमहाराजजी का शुभ संदेश पाकर मैं तो हर्षोल्लास से उछल पड़ा। मेरे तन–मन की सुधि जाती रही और मैं तुरन्त वहां से चल दिया। मोटर और रेलद्वारा यात्रा करके मैं वृन्दाबन स्टेशन पर पहुँचा और वहाँ से किसी प्रकार गिरता–पड़ता आश्रम के भीतर पहुँचकर श्रीमहाराजजी के चरणों में लोटकर रोने लगा। किन्तु महाराजजी ने मेरी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया और न मेरी राजी–खुशी ही पूछी। संध्या समय चैतन्यदेवजी से कह दिया कि रामदासको किसी अच्छी कुटी में ठहरा दो और उसके खाने–पीने पर ध्यान दो।

अब मैं आनन्दपूर्वक उस समारोह का सुख लेने लगा। फाटक के बाहर ही संकीर्तन के लिये एक पृथक् मण्डप बना था। उसमें हर समय प्रायः सौ व्यक्तियों द्वारा अखण्ड संकीर्तन होता रहता था। आश्रम के भीतर जो मण्डप था उसमें प्रातः काल प्रमुख वैष्णवाचार्य श्रीरामानूजदासजी द्वारा श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक प्रवचन होता था। मध्याह्नोत्तर अनेकों सन्त और विद्वानों के प्रवचन होते थे। तथा रात्रि में विभिन्न रासमण्डलियाँ प्रभु की सरस रासलीलाओं का अनुकरण करती थीं। इन दिनों पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज भी

वृन्दावन में ही मिर्जापुरवाली धर्मशाला में ठहरे हुए थे। उन्हें भी उत्सव के लिए आमन्त्रित किया गया। उस पर आपने कहा कि यदि श्रीमहाराजजी हमारी दो बातें स्वीकार करें तो मैं उत्सव में सम्मिलित हो सकता हूँ—प्रथम तो श्रीहरिबाबा जी संकीर्तन के आरम्भ में जो ओंकार की ध्वनि करते हैं वह न करें क्योंकि शूद्र और स्त्रियों को ओंकार के उच्चारण का अधिकार नहीं है और संकीर्तन में तो सभी सम्मिलित होते हैं। दूसरी बात यह कि कथा या प्रवचनके समय वक्ताके आसनपर कोई ब्राह्मणेत्तर न बैठें। उनका यह सन्देश पं० श्रीलालजी याज्ञिक लाये। वे ही उत्सव में मञ्चव्यवस्थापक थे। उनसे श्रीमहाराजजी ने कहा, "भैया! संत के मुख से जो भी निकलता है उसे रोकने में कौन समर्थ है? श्रीहरिबाबाजी जो कुछ करते हैं सो सब उचित ही है। जहाँ तक आसन पर बैठने की बात है वहाँ मेरे विचार से तो सभी सन्त पूजनीय हैं। किसे छोटा या बड़ा कहे। हमारे यहाँ तो सभी सन्त आसन पर बैठकर उपदेश देंगे। करपात्रीजी से कहना कि मैंने तो उन्हें बालक की हैसियत से बुलाया था न कि आचार्य की हैसियत से। वे कितने ही बड़े हों मेरी दृष्टि में तो आज भी वहीं बालक हैं जो नरवर पाठशाला में रामघाट में मेरे पास आते थे। "पं० श्रीलालजी से यह उत्तर पाकर श्रीकरपात्रीजी ने कहा, " मैं बाबा के लिये तो बालक ही हूँ किन्तु मुझे शास्त्रमर्यादा का पालन तो करना ही होगा।" — अतः वे उस उत्सव में सम्मिलित नहीं हुए।

प्रायः दस दिन में इस समारोह की पूर्णाहुति हुई। उस समय बड़ा अपूर्व भण्डारा हुआ। श्रीमहाराजजी कमर में दुपट्टा बाँधकर स्वयं ही सब आगन्तुकों का निरीक्षण करते थे। उनकी वह अद्भुत छवि देखते ही बनती थी। यद्यपि आगन्तुकों की संख्या अपार थी तथापि रात्रि को सोने के समय श्रीमहाराजजी प्रत्येक व्यक्ति की

सुधि लिया करते थे। किसे भोजन मिला है, किसे नहीं मिला ? किसे सोने के लिये स्थान है, किसे नहीं है ? इत्यादि समस्त बातों का निरीक्षण वे स्वयं करते थे। यह उनकी परम दयालुता थी।

इस प्रकार यह अपूर्व और अद्भुत समारोह हुआ। किन्तु इसके समाप्त होते ही आप रात्रि के दो बजे हाथ में कमण्डलु ले वहाँ से चल दिये। आस–पास सैकड़ों आदमी सोये पड़े थे, किन्तु आपके जाने की आहट किसी को न मिली। यह आपकी कोई नई बात नहीं थी। उन दिनों तो आप जब कहीं जाते तो इसी प्रकार चल देते थे। आपके चले जाने पर मैं वृन्दाबन से चलकर ब्रह्माण्डघाट आ गया और पूर्ववत् अपना अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। इस प्रकार दस–बारह मास मैं ब्रह्माण्डघाटमें ही रहा। फिर बहुत दिनों तक मथुरा जिले के विभिन्न ग्रामों में विचरता रहा। बीच–बीच में जब विशेष विरह सताता तो एक–दो दिन के लिये श्रीमहाराजजी के पास जाकर दर्शन कर आता था।

मेरा तो अनुभव है कि जो भजन हमने विछोह के इन तीन बर्षों में किया वह पन्द्रह वर्षों तक श्रीमहाराजजी के साथ रहकर नहीं किया। मैं तो यही कहूँगा कि प्रभुपथ के पथिकों के लिये संयोग की अपेक्षा वियोग कहीं अधिक लाभदायक हैं। यद्यपि वियोग में घबड़ाहट और बेकली बहुत रहती है तथापि यह वेकली ही तो भजन का प्राण है। इसी से किसी कवि ने कहा है–'जो मजा है इन्तजारी में। वह न पाया वस्ले यारी में। हाँ, आवश्यकता है वियोग के समय सहन–शीलता और धैर्य की।

ब्रह्माण्डघाट के समीप ही श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव रहा करते थे। मैं उनसे मिलता रहता था। वे जब कभी श्रीमहाराजजी के समीप जाते तो उनके चरणों में मेरी व्यथा वर्णन करते। उनसे श्रीमहाराजजी कहा करते थे, "मैं अन्तःस्तल से रामदास से बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि

वह एकान्त में रहकर भजन में तल्लीन है। परन्तु मैंने जो तीन साल का नियम किया है वह उसे अवश्य पूरा करना है। यह इसलिये है कि वह खूब भजन करे।" श्रीमहाराजजी की ये बातें सुनाकर गोविन्ददासजी ने उन दुःखके दिनों में मुझे जो सुख पहुँचाया था उस उपकारको मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। किसी प्रकार वे विपत्ति के दिन कटे और पुनः सुख का सूर्य उदय हुआ। श्रीमहाराजजी की हमपर प्रसन्नता हुई। वे बड़ी प्रसन्नता और हँसी के साथ मुझसे भक्ति और ज्ञानसम्बन्धी बातें करते, परन्तु मेरे मुख पर उदासी ही छायी रहती।

उन दिनों श्रीमहाराजजी कर्णवास में विराजमान थे। एक दिन सायंकाल में टहलकर लौटते समय आप पक्के घाटपर श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव की कुटियामें घुसकर बैठ गये। साथ में जितने लोग थे सबको अपनी कुटियापर चलने का आदेश दिया और गोविन्ददासजी के द्वारा मुझे अपने पास बुलाया। तब आपने गोविन्ददासजी से कहा, "अब तो मैं रामदास से बहुत प्रसन्न हूँ, फिर भी रामदास उदास क्यों रहा करता है?" गोविन्ददासजी ने मुझे भी अपने हृदय की बात श्रीमहाराजजी से कहने के लिये कहा। मैंने प्रार्थना की, "प्रभु! आपने हमें थोड़े से अपराधपर इतना कठोर दण्ड दिया। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे साथ अन्याय किया गया है।" श्रीमहाराजजी ने मुझसे डाँट कर कहा, "अरे! हमें तू अन्यायी बताता है।" मैंने अपना मस्तक नीचा कर लिया और कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर पश्चात् आप फिर बोले, "अरे! तू मेरा है या नहीं?" मैंने कहा, "हाँ, प्रभु! आपका हूँ।" तब आप बोले, "तो फिर मैं तुझे कितना ही दण्ड दूँ, तुझे बोलने का क्या अधिकार है?" मैंने श्रीमहाराजजी के चरणों पर गिरकर दो आँसू अर्पण किये। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि

निजजन पर प्रभु इतने निष्ठुर क्यों होते हैं। अब मैं दण्ड सम्बन्धी सभी बातों को भूल गया और श्रीमहाराजजी से प्रसन्नता पूर्वक खूब प्रश्नोत्तर करने लगा। श्रीगोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है–

"मुनि शाप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।।"

गुरुदेव की सन्निधि में

एकबार मुझे श्रीमहाराजजी के साथ कानपुर के समीप बरूआघाट में श्रीज्ञानाश्रमजी के स्थान पर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीज्ञानाश्रम स्वामी में हमारे महाराजजी का गुरुभाव था। उनके पास पहुँचकर आपने जब उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने आपसे पूछा, "पूर्णानन्द तुम प्रसन्न चित्त तो हो?" श्रीमहाराजजी ने कहा, "जी हाँ महाराज! सब आपकी कृपा है।" ज्ञानाश्रमजी ने पूछा, "पूर्णानन्द! तुम्हारी तो अलीगढ़–बुलन्दशहर की तरफ बड़ी ख्याति हो रही है। नरवरके ब्रह्मचारी यहाँ आकर मुझसे कहा करते हैं।

श्रीज्ञानाश्रमजी के सामने आप जिज्ञासुभावसे चुपचाप बैठे रहते थे। बहुत कम बोलते थे। जब वे लेट जाते तो आप उनके चरण दबाते रहते थे। मैं प्रायः देखता था कि आप श्रीज्ञानाश्रम स्वामीके दोनों चरणों को अपनी गोदमें रख रात्रिके १२ बजे तक उनमें तेलकीमालिश करते रहते थे। वे कई बार कहते कि पूर्णानन्द जाओ, सो जाओ, तो भी आप उनके चरणों को छोड़ते नहीं थे। जब उन्हें पूर्णतया निद्रा आ जाती तो आप उनके तख्त के नीचे लेट जाते थे।

इस प्रकारका व्यवहार हमने तीन–चार रोजतक देखा। फिर आपने हमसे कहा तुम लोग प्रातः काल चार बजे चले जाना और अमुक स्थान पर मुझसे मिलना। उस रात आप दो बजे तक उनके चरण दबाते रहे, फिर गुदड़ी और कमण्डलु लेकर उक्त स्थान पर चले गये। जब हम प्रातःकाल चार बजे उठे और

श्रीज्ञानाश्रम स्वामी को दण्डवत् करने के लिये गये तो उन्होंने आँखों में आँसू भरकर कहा, "अरे भाई! पूर्णानन्द तो चले गये।" श्रीमहाराज जी से आप अत्यन्त स्नेह रखते थे।

इस घटना के द्वारा हमें तो यही जान पड़ा कि श्रीमहाराजजीने स्वयं गुरुसेवा करके हमें गुरुभक्ति का पाठ पढ़ाया था। आप कहा करते थे कि हम और निर्मलानन्द दो–तीन वर्ष इनके पास रहे हैं। जब ये सो जाते थे तो हम इनके आश्रम की सब सेवा कर लिया करते थे। उन दिनों हम इनके पूर्ण अनुयायी होकर रहे थे। जब हम चले गये तो लोग कहते थे कि वे तुम्हारी याद करके रोते थे।

ग्वालियर का उत्सव

ग्वालियर वाले बाबा रामदासजी ने श्रीमहाराजजी से कई बार प्रार्थना की थी कि कभी ग्वालियर पधारें। एकबार उनके स्थानपर एक विशाल उत्सव का आयोजन हुआ। उसमें रासमण्डली के सहित श्रीहरिबाबाजी तथा वृन्दावनधाम के कई वैष्णव संत और आचार्य भी पधारे। तब श्रीमहाराजजी ने भी कुछ भक्तपरिकरके सहित वहाँ के लिये पैदल यात्रा की। इस यात्रा में बड़ा आनन्द रहा। श्रीमहाराजजी का गीताप्रवचन और उपदेश भी नित्य नियम से होता रहा। दण्डिस्वामी सिद्धेश्वराश्रमजी ने यह प्रवचन नोट कर लिया था। बाबा रामदासजीका उस ओर बड़ा प्रभाव था, और उन्होंने गाँव–गाँव में इस बात का प्रचार कर दिया था कि श्री उड़ियाबाबाजी वृन्दावन से पैदल आ रहे हैं। अतः प्रत्येक ग्राम में हमारा बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। इस प्रकार बड़े आनन्द से विचरते हम ग्वालियर के समीप करहमें श्रीरामदास बाबा के आश्रम पर पहुँचे।

बाबा रामदासजी के गुरुमहाराज बड़े भजनानन्दी महापुरुष थे। उनके दर्शन करके मैं गद्‌गद् हो गया। उनकी आयु भी उस

समय अस्सी वर्ष से कम न होगी। तथापि उनके ओठों पर हर समय राम नाम विद्यमान रहता था। नामस्मरण के सिवा और आपको कोई काम ही नहीं था। आपने श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया और प्रेमानन्द से गद्‌गद् हो गये।

इस उत्सव का कार्यक्रम तो अन्य उत्सवों के समान ही था। प्रातः सायं पूज्य श्रीहरिबाबाजी का संकीर्तन, मध्याह्न से पूर्व श्री रासलीला और मध्यान्होत्तर, श्रीरामानुजदास आदि वैष्णवाचार्यो के प्रवचन। किन्तु यहाँ जनता की भीड़ का कोई पारावार न था। उत्सव गर्मी के दिनों में एक पर्वतीय प्रदेश में हो रहा था। वहाँ तीन मील तक पानी का कोई ठिकाना नहीं था। तीन मील दूर चम्बल नदी थी। वहीं से मोटर द्वारा पानी मँगाया जाता था। व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि अपार जनता होने पर भी पानी का कोई कष्ट अनुभव नहीं हुआ। इस उत्सव का अन्नभण्डार भी अपूर्व था। इसमें हजारों मन खाद्य सामग्री एकत्रित हुई थी। सैकड़ों मन आटा, सैकड़ों मन गुड़ और सैकड़ों टीन घी के थे। मालपुआ, पूड़ी, शाक, मिठाई हर समय तैयार होती रहती थी। कोई भी हो बिना रोकटोक प्रसाद पा सकता था। बड़े महाराज की आज्ञा थी कि कोई भी दर्शनार्थी बिना प्रसाद पाये न जाय। जब बाबा रामदासजी ने उनसे कहा कि महाराज! भीड़ अधिक है यदि सबको प्रसाद दिया गया तो सम्भव है कमी पड़ जाय, तो वे बोले, "अरे! संतों के भण्डारे में कभी किसी चीज की कमी नहीं होती। और यदि मानलो, कमी हो भी गयी तो इसमें हमारा क्या बिगड़ता है। साधु के पास रहे तो खूब खाओ, नहीं तो घुघनी और जल पर ही समय बिताओ।"

जिस दिन भण्डारा हुआ उस दिन पच्चीस गाँवों के आदमी उसकी व्यवस्था में लगे हुए थे। उन्होंने बाबा रामदास के बहुत

कहने पर भी स्वयं भोजन नहीं किया। कहा कि हम तो भण्डारा समाप्त हो जाने पर कल महाप्रसाद लेंगे। इस उत्सवमें स्थानीय अफसरों का भी पूर्ण सहयोग देखा गया।

उत्सव समाप्त होने पर श्रीहरिबाबाजी और अन्यान्य सन्तजन मोटर द्वारा वृन्दावन चले गये, और श्रीमहाराजजी ने अपने परिकरसहित पैदल प्रस्थान किया। मार्ग में एक विचित्र घटना हुई। उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि महापुरुष के दर्शन का बड़े दुर्दान्त दुष्टोंपर भी तत्क्षण कैसा प्रभाव पड़ता है। सामने से एक क्रूर प्रकृति का व्यक्ति कन्धे पर बन्दूक रखे आ रहा था। निकट आने पर उसने बन्दूक अलग रख दी और श्रीमहाराजजी को साष्टांग प्रणाम की। महाराजजी ने पूछा, "भाई ! तू अपने साथ बन्दूक क्यों रखता है ?" उसने कहा, "महाराज मैं यहाँ के डाकुओं का सरदार हूँ। ग्वालियर राज्य ने मुझे पकड़ने वाले को दो हजार रुपया इनाम देने की घोषणा कर रखी है। अतः मैं अपनी रक्षा के लिये हर समय बन्दूक अपने साथ रखता हूँ। इसे इस समय आपको दण्डवत् करने के लिये ही मैंने अपने से अलग किया था।

इसी प्रकार विचरते हुए हम सब लोग होलीपुरा पहुँचे। यह गाँव जिला आगरा में यमुनाजीके समीप है। वहाँ उस समय एक हाईस्कूल था, जो अब कालेज हो गया है। उस हाईस्कूल के हैडमास्टर और श्री छैलबिहारी अस्ठाना नामक एक मास्टर श्रीमहाराजजी के भक्त थे। छैलबिहारीजी की पत्नी का देहान्त हो चुका था और वे शेष जीवन भजन–साधन में ही व्यतीत करना चाहते थे। स्वामी प्रबोधानन्द और मुझसे भी उनका विशेष प्रेम था। उन्होंने आग्रह करके श्रीमहाराजजी को चार–पाँच दिन होलीपुरा में रोक लिया। एक दिन सायंकालमें श्रीमहाराजजी के साथ टहलते हुए हम लोग जंगल की ओर गये। वहाँ कुछ दूरसे हमें खजानची साहब की आवाज सुनायी दी वे कह रहे थे,, 'टीले पर तेंदुआ

बैठा है: आगे मत जाना।" हमने नेत्र उठाकर देखा तो सचमुच हमें सामने एक तेंदुआ दिखायी दिया। वह पूँछ उठाये खड़ा और क्रोध भरी दृष्टि से हमारी ओर देख रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानों वह छलाँग मारकर आना ही चाहता है। उसे देखकर श्रीमहाराजजी के साथ होने के कारण हम लोग शान्त और निर्भय रहे। बस कुछ ही देर में वह हिंस्र जीव छलांग मारकर दूसरी ओर चला गया और खजानची साहब के सहित हम लोग अपने स्थान पर लौट आये। श्रीमहाराजजी के प्रभाव से उस दिन किसी को कोई क्षति नहीं पहुँची।

होलीपुरा में सत्संग का बड़ा अपूर्व आनन्द रहा। फिर कई स्थानों में होते हुए सब वृन्दावन लौट आये।

पंजाब यात्रा

श्रीमहाराजजी का स्वास्थ्य कुछ समय से शिथिल हो गया था। बाँध के पिछले उत्सव पर भी जब वे समय पर न पहुँचे तो श्रीहरिबाबाजी और माँ आनन्दमयी ने वृन्दावन आकर उनसे मोटरद्वारा वहाँ चलने का आग्रह किया। प्रभु तो प्रेमपरवश थे। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह से उन्होंने सवारीपर न चढ़ने का अपना नियम त्याग दिया और वे मोटर द्वारा बाँध पर गये। अभी इस घटना को प्रायः दस मास हुए थे कि पूज्य श्रीहरिबाबाजी और माँ ने पंजाब यात्रा का प्रोग्राम बनाया। श्रीमहाराजजी अस्वस्थ थे, इसलिये यद्यपि इस यात्रा में जाने की उनकी रुचि नहीं थी। तो भी बाबा की प्रसन्नता के लिए उन्होंने भी जाना स्वीकार कर लिया। उनके साथ हम आठ–दस साधु भी इस यात्रा में सम्मिलित कर लिये गये।

इस यात्रा का पहला पड़ाव था दिल्ली। यहाँ कुदसिया घाट पर हम सबके ठहरने की व्यवस्था की गयी। यहीं पर रासलीला और

सत्संगादि भी होते थे। दिल्ली के असंख्य नर–नारी इस उतसव में आते थे। कुछ प्रमुख नागरिकों ने श्रीमहाराजजी को लेजाकर राष्ट्रपतिभवन और संसदसदन भी दिखाये। तीन दिन तक खूब धूमधाम रही। यहाँ से लारियों द्वारा कुरुक्षेत्र जाना था। एक लारी में श्रीमहाराजजी, उनके साथी और रासमण्डलीवाले बिठाये गये। इसी प्रकार अन्य दो लारियों में श्रीहरिबाबाजी और माँ आनन्दमयी अपने–अपने भक्तों के साथ सवार हुए। मार्ग में मैंने श्रीमहाराजजी से हाथ जोड़कर कहा, "प्रभु ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, अब आपके साथ हम लोग मोटरों में ही यात्रा किया करेंगे। अब तक तो आप पैदल चलते थे, इसलिये दूर ले जाने वालों को कहने में संकोच होता था। मोटर में चलने से तो अब आपको ले जाना सबके लिये सरल हो गया।" इसपर श्रीमहाराजजी उदास चित्त से बोले, बेटा !" देखो, इस यात्रा में क्या होता है ?" प्रभु के इन वचनों में करुणा थी।

अस्तु। हम लोग कुरुक्षेत्र पहुँचे और वहाँ गीताभवन में उतरे। वहाँ हमने गीतापाठ किया और श्रीमहाराजजी ने दो श्लोकों पर प्रवचन किया। यहाँ रात्रि के समय कीर्तन के पश्चात् श्रीहरिबाबाजी के मुख से ऐसी बात निकली कि मैं तो बाबा के हाथ में भी झाँझ देखना चाहता हूँ। बस, प्रेमपरवश प्रभु ने दूसरे ही दिन छबिकृष्ण से झाँझ ले ली और कीर्तन के समय कभी–कभी बजाने भी लगे।

यहाँ एक दिन ठहरकर अम्बाला छावनी गये और वहाँ से खन्ना। अम्बालेमें दो दिन का प्रोग्राम रहा। खन्ना इस यात्रा का प्रधान विश्राम स्थान था। यहाँ एक अपूर्व सन्त श्रीत्रिवेणी पुरीजी महाराज विराजते थे। अवधूत कृष्णानन्दजी का उनमें गुरुभाव था और उन्होंने ही इस यात्रा की व्यवस्था की थी। यहाँ नौ दिनतक बड़ा अद्‌भुत समारोह रहा। अब आगे बढ़ने के विषय में विचार होने लगा। इस

यात्रा में प्रायः सौ व्यक्तियों का समुदाय था। बाबा की इच्छा थी कि आगे पच्चीस–तीस व्यक्ति ही जाँय। शेष सब को लौटा दिया जाय। इन लौटाये जानेवालों में श्रीमहाराजजी के साथी साधुलोग भी थे। हम लोग श्रीमहाराजजी का साथ छूटने की सम्भावना से बहुत दुखी थे और श्रीमहाराजजी को भी अन्तःकरण से यह प्रस्ताव पसन्द नहीं था। परन्तु अपनी ओर से वे व्यवस्था में कोई दखल देना नहीं चाहते थे।

इसी बीच एक दिन कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने सरहिन्द की यात्रा की। यह वह स्थान है जहाँ मुसलमान शासकोंने गुरुगोविन्दसिहजी के दो पुत्रोंको उनकी माताके सामने दीवारमें चुनवा दिया था। इस स्थान को देखकर श्रीमहाराजजी के नेत्रों से जल बहने लगा और स्वाभाविक ही उनके मुख से निकला, "वाह ! हमारे देश की कैसी धर्मनिष्ठा थी ?" उनका शरीर अस्वस्थ तो था ही। कुछ ज्वर भी हो गया। चलने–फिरने में काफी कठिनता अनुभव होती थी। परन्तु फिर भी आपने अपनी ओर से यात्रा को आगे बढ़ाने में कोई अड़चन उपस्थिति नहीं की। किन्तु इस समय माँ श्रीआनन्दमयी का ध्यान आपकी ज्वरसन्तप्त मुखाकृति की ओर गया। उन्होंने तथा श्रीआंजनेय ब्रह्मचारी आदि ने बाबा को यात्रा स्थगित करने की सलाह दी। तब बाबा ने भी वहीं से लौटने का निश्चय कर लिया। सब लोगों को रात्रि की गाड़ी से ही वृन्दावन भेज दिया गया तथा श्रीमहाराजजी और माँ सोलन के राजा साहब की कार से और श्रीहरिबाबा एक अन्य कार द्वारा वृन्दावन लौट आये।

वृन्दावन लौट आने पर दस–बारह दिन तक श्रीमहाराजजी को बड़ा तीव्र ज्वर रहा। उससे मुक्त होने पर वहीं होली का उत्सव हुआ और फिर माँ श्रीआनन्दमयी काशी चली गयीं।

महासमाधि

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी को अमृतसर के भक्तवृन्द बुला रहे थे। वहाँ जाने की आज्ञा लेने के लिये वे मातृमण्डल में गये। श्रीमहाराजजी लेटे हुए थे। वे उदासीन भाव से बोले, 'अच्छा, भैया ! जाओ।" यह उनके लिये अन्तिम आज्ञा हुई। ब्रह्मचारी आंजनेय, स्वामी प्रबोधानन्द और मुझसे आप बोले, "काशी में माँ आनन्दमयी के यहाँ शंकरजी की प्रतिष्ठा है। तुम लोग पैदल ही वहाँ चले जाओ। हम मोटर से आकर वहाँ मिलेंगे, हमने माँ को वहाँ आने का वचन दे रखा है।" हम लोगों का चित्त वृन्दावन से उचाट हो रहा था और हम श्रीमहाराजजी की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीसनातनदेवजी हाथरस चले गये थे। कभी–कभी श्रीमहाराजजी हमसे कहा करते थे, "बेटा ! बड़े अपशकुन हो रहे हैं, न जाने क्या होने वाला है।" एकदिन आपकी कुटिया के ऊपर गिद्ध बैठा था आप बोले, "इसका बैठना किसी बड़े अनिष्ट का सूचक है।" हनुमानजीके मन्दिर का पुजारी पूजा का पारस मल रहा था। उस समय अचानक उसके सिर पर कौआ बैठ गया। जब उसने श्रीमहाराजजी को यह घटना सुनायी तो वे बोले, "तेरे इष्टदेव का कोई अनिष्ट होने वाला है।" पुजारी घबड़ाकर बोला, "महाराज ! मेरे इष्टदेव तो आप ही हैं।" आपने कहा, जा भगवान् का स्मरण कर।"

एक बार मुझे और प्रबोधानन्दजी को बुलाकर पूछा कि तुम लोग नित्य कितना जप करोगे। मैंने कहा, "मैं नित्य प्रति बारह हजार प्रणव–जप कर सकता हूँ। प्रबोधानन्दजी बोले, मैं छः हजार प्रणव जप सकूँगा।" श्रीमहाराजजी ने हँसकर पूछा, "क्यों तू छः हजार ही क्यों जप सकेगा ?" इस पर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "भगवन् !" मेरा शरीर रोगी रहता है।" बस, महाराजजी ने हम दोनों के नाम अपनी डायरी में लिख लिये और हमसे कहा, "नित्य प्रति जप और स्वाध्याय किया करो।" हम लोग उस समय यह न समझ सके कि महाराजजी हमें यह अन्तिम उपदेश दे रहे हैं।

प्रयाग में ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी चैत्र के नवरात्रमें उत्सव कर रहे थे। उसमें सम्मिलित होने के लिये चैत्र कृ० १३ के सायंकाल में श्रीहरिबाबाजी ने वहाँ के लिये प्रस्थान किया। श्रीमहाराजजी ने उनकी मोटर तक जाकर उन्हें विदा किया। दूसरे दिन चतुर्दशी आयी। इधर शरीर की अस्वस्थता के कारण बहुत दिनों से अपका गीताप्रवचन बन्द था। आज पुनः प्रारम्भ होने वाला था। हम लोगों ने गीतापाठ किया। आपने दो श्लोकों पर बड़ा अद्‌भुत और जोरदार प्रवचन किया। ज्यों–ज्यों आपके शब्द जोरदार होते जाते थे मेरे हृदय में एक प्रकार की जलन–सी बढ़ती जाती थी। मैं नहीं समझता था कि आज यह जलन क्यों हो रही है। मैं नित्य की भाँति रोटी खाकर अपनी झोंपड़ी में विश्राम करने के लिये चला गया। परन्तु आज निद्रा आती ही न थी। वरन् उसके स्थान में हृदयमें जलन ही जलन मालूम होती थी।

तीन बजे सत्संग की घण्टी बजी और मैं, श्रीमहाराजजी की कुटियापर आ गया। उनके साथ मैं सत्संग भवन में पहुँचा। पहले नित्यनियमानुसार 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की ध्वनि के साथ श्रीरामचरितमानस का पाठ हुआ। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी आनन्दजी ने 'भागवती कथा' सुनानी आरम्भ की। श्रीमहाराजजी ध्यानस्थ होकर बैठे हुए थे। स्वामी अद्वैतानन्दजी मोरछल से मक्खियाँ उड़ा रहे थे। इतने ही में आश्रम के एक सेवक ठाकुरदास ने आकर उनसे मोरछल माँगा। उन्होंने नहीं दिया। ठाकुरदास एक काला कम्बल ओढ़े हुए था। मोरछल न मिलने पर वह लौट गया। इसके पाँच–साँत मिनट बाद ही उसने लौटकर गड़ासे से श्रीमहाराजजी के सिर पर दो प्रहार किये। जब वह तीसरा प्रहार करने वाला था। उसी समय श्रीमहाराजजी के पास बैठी बहिनजी ने उनके सिर पर अपना हाथ रखकर उस दुष्ट को प्रहार करने

से मना किया। परन्तु उसने एक न सुनी और बहिनजी के हाथ घायल करते हुए तीसरा प्रहार भी कर डाला। अब तक श्रीमहाराजजी अचल भाव से बैठे रहे। अब वे मूर्च्छित होकर गिरे और वह दुष्ट भाग खड़ा हुआ। तब कुछ लोगों ने तो श्रीमहाराजजी को सम्भाला और कुछ उसके पीछे दौड़े। उन्होंने कुछ दूर पर ही उसे पकड़ लिया और रोष में आकर उसी गड़ासे से मार डाला। कुछ मिनटों में श्रीमहाराजजी सचेत हुए और उन्होंने पूछा, "यह सब क्या हो रहा है?" मैंने कहा "प्रभु! कुछ भी नहीं हो रहा।" उस समय प्रभु की ऐसी दशा देखकर और लोग तो रो रहे थे, परन्तु मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा था। न मुझे रुलाई आती थी और न कुछ बोल ही सकता था। प्रभुकी प्रेरणा से ही मैंने उस समय उच्च स्वर से तीन बार ॐकार की ध्वनि की। बस, उस ध्वनि को सुनते–२ ही श्रीमहाराजजी हम लोगों से विदा हो गये। हम अभागे देखते ही रह गये, कुछ भी करते न बना।

श्रीमहाराजजी अन्तर्धान क्या हुए हमारी तो सारी निधि ही खो गयी। आज उनके अभावमें मैं अपने को एक अनाथ बालक सा पाता हूँ।

श्रीमहाराजजी अपने पार्थिव विग्रह से भले ही हम लोगों के बीच में न हों, परन्तु अपने अजर–अमर चिन्मय स्वरूप से तो वे सदा अपने भक्तों का कल्याण करते रहते हैं और करते रहेंगे। इन शब्दों के साथ अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ। और इस लेख में अपनी अल्पज्ञता के कारण यदि मुझसे कोई भूल हुई हो तो उसके लिये श्रीमहाराजजी से क्षमा चाहता हूँ।



स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी, ब्रजवासी

वृन्दावन

महापुरुषों का प्रादुर्भाव संसार की शृंङ्खला में बँधे हुए प्राणियों को मुक्त करने के लिये होता है। यद्यपि अधिकांश लोग 'मुक्ति' का अभिप्राय मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाली कोई गति विशेष समझते हैं, परन्तु वास्तव में इसका तात्पर्य है दुःख की आत्यन्तिकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति। अतः मानव को चरम सुख की अनुभूति कराकर उसे कल्याण और सुयश का अधिकारी बनाने वाले व्यक्ति ही 'महापुरुष' माने गये हैं। भगवान् राम, श्रीकृष्ण चन्द्र, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, वैष्णव आचार्यगण स्वामी हरिदास एवं महात्मा गान्धी– ये सब ही महापुरुष माने जाते हैं। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव जाति के हित में ही समर्पित कर दिया था। जीवन को परार्थ उत्सर्ग करने वाले इन सन्तों के चरणोंमें नतमस्तक होकर संसार अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता है। हमारे श्री उड़िया बाबाजी भी इसी कोटि के एक सन्त महापुरुष थे!

प्रथम दर्शन

जब कभी साधुओं की चर्चा चलती तो अलीगढ़ के एक लालाजी पूज्य उड़िया बाबाजी के विषय में तरह–२ की बातें बताया करते थे। उनके मुख से महाराजश्री के ज्ञान, वैराग्य, तप, त्याग आदि की अद्भुत घटनायें जब कर्ण–कुहरों के द्वारा हृदय का स्पर्श करतीं

तो मेरा मन उनके दर्शनों के लिये लालायित हो उठता था। ऐसी इच्छा होती थी कि मैं अभी उड़कर वहाँ पहुँच जाऊँ और अपने को श्रीमहाराजजी के चरणों में समर्पित कर दूँ। परन्तु हृदय की स्थिति थी डाँवाडोल ही। एक ओर तो दर्शनों की लालसा थी और दूसरी ओर था सांसारिक मोह का बन्धन। कभी–कभी बड़ी कशमकश चलती। विश्व का व्यापार भी विचित्रताओं का समुद्र है। उसमें फँसा हुआ प्राणी बड़ी कठिनता से निकल पाता है, क्योंकि उसकी 'ज्यों–ज्यों सुरझि भज्यो चहति त्यों–त्यों उरझति जात' वाली गति हो जाती है अतः इसी ऊहापोह में बहुत समय निकल गया।

परन्तु जब कोई बीज पड़ जाता है तो समय पाकर वह अंकुरित हो ही जाता है। शनैः–शैनेः सत्संग की ओर मेरा आकर्षण बढ़ने लगा। मेरे गाँव के पास लाला प्यारेलाल के बाग में श्रीविष्णुस्वामीसम्प्रदायके संत दूधाधारीजी महाराज विराजते थे। वे बड़े सिद्ध महात्मा थे। मैं प्रायः उनके दर्शनार्थ जाया करता था। बाग की सीमा में पहुँचते ही एक अद्‌भुत शान्ति का अनुभव होता और उनके दर्शनों से बड़ा अनिर्वचनीय सुख मिलता। धीरे–धीरे मेरे मन की प्रवृत्ति वैराग्य की ओर बड़ी और संसार निःसार दिखायी देने लगा। तथापि उसे छोड़ने का साहस नहीं होता था। एक दिन श्रीवृन्दावनसे प्रकाशित होने वाले 'नाममाहात्म्य' नामक मासिक पत्र में यह दोहा पढ़ा–

'कबिरा यह मन एक है, चाहै जहाँ लगाय।
चाहे हरिको भजन करु, चाहै विषय कमाय।।'

बस, इसने मानों मेरी सुषुप्त वैराग्याग्नि में घृत की आहुति डाल दी। मैं दूसरे दिन ही अपने घरवालों को सारा कारबार सोंपकर

श्रीदूधाधारीजी के पास आया और उनसे विरक्त धर्म की दीक्षा ले ली। गुरु महाराज ने मेरा नाम रखा–गोपालदास।

अब मैंने पूज्य बाबा के दर्शनों का निश्चय किया। पता लगा कि वे उन दिनों में अनूपशहर में थे। अतः गुरुदेव से आज्ञा लेकर मैं अनूपशहर को चल दिया। वहाँ सेठ बालूशंकरजी के बगीचे में मझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। वर्षों की साध आज पूरी हुई। मैं लकुटकी भाँति उनके चरणों में गिर पड़ा। बाबा ने मेरे सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कराया। इस समय मुझे अद्‌भुत सुख शान्ति का अनुभव हो रहा था। आप एक चौकी पर लेटे हुए थे। आस–पास पच्चीस–तीस भक्त बैठे थे। मेरी ओर कृपादृष्टि से देखते हुए आप बोले–'कौन हो ? कहाँ से आये हो ?' मैंने अपना परिचय दिया। तब आपकी आज्ञा हुई कि इन्हें बस्ती में ले जाकर धर्मशाला में ठहरा दो। मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "महाराज ! यहीं कहीं पड़ जायेंगे।" आप बोले, 'यहां कोई नहीं रह सकता।"

मुझे नया वैराग्य था। मैंने अपने साथी ला० शंकरलाल से कहा कि यहीं किसी वृक्ष की छाया में पड़ रहेंगे। हम चरणस्पर्श करके चले। श्रीमहाराजजी ने दो सेवकों को आज्ञा दी कि इनका आसन लगवा दो। बस, श्रीपल्टूस्वामी की झोपड़ी के पास एक दूसरी झोपड़ी में आसन लग गया। कुछ लड्डू आदि प्रसाद में मिले। बाबा ने सेवकों से कह दिया था कि ये नये वैरागी हैं। भूखे हैं, इन्हें भोजन की आवश्यकता है। प्रसाद पाकर रात को सो गये। प्रातः काल नित्य–नैमित्तिक कार्य से निवृत्त हो आपके दर्शनार्थ गये। अनेकों भक्तगण बैठे हुए थे। बाबा ने दूर से ही मुझे 'व्रजवासी' नाम से सम्बोधन किया। मेरा हृदय आनन्द से विभोर हो गया। श्रीमहाराजजी की यह महती कृपा थी। इसने मेरे

हृदय में एक गुदगुदी पैदा कर दी। मैं अपने को संभाल न सका और दौड़ कर उनके चरणों में गिर गया।

इस प्रकार आपकी सन्निधि में बड़े आनन्द से समय व्यतीत होने लगा, मैंने अपने को कृतकृत्य समझा। मेरे हृदय में आनन्द की एक सरिता–सी बहने लगी। अकस्मात् एक दिन प्रातः काल सोकर उठा तो पता चला कि श्रीमहाराजजी कहीं चले गये हैं। मैंन पूछा कि कहाँ गये हैं, तो उत्तर मिला कि वे यह कहकर थोड़ा ही जाते हैं। अब उन्हें ढूढ़ना व्यर्थ है। जब उनकी इच्छा होती है तभी दर्शन होते हैं। चित्तको बहुत दुःख हुआ और निराश होकर ब्रज को लौट आया।

कृपा का विकास

कुछ काल व्यतीत होने पर पता चला कि श्रीमहाराजजी मोहनपुर में हैं। मैं वहाँ पहुँचा और चरण स्पर्श किये। इससे मेरे शरीर में एक बिजली–सी दौड़ गयी। इस समय शीतकाल था। सायंकाल में श्रीमहाराजजी एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर बैठ जाते थे। उनके आस–पास साधक लोग भी ध्यानाभ्यासमें निमग्न हो जाते थे। उस समय चित्तकी वृत्ति बड़ी एकाग्र होती थी। उठने की इच्छा ही नहीं होती थी। फिर सब लोग आपके साथ ही कुटिया पर आ जाते थे। वहाँ गाँव के लोग भी एकत्रित हो जाते थे और खूब कीर्तन एवं सत्संग होता था। फिर प्रसाद ग्रहण करके सब शयन करते थे। सब लोग विभिन्न स्थानो पर जाकर सोते थे, कुटिया पर केवल श्रीमहाराजजी ही रहते थे, और कोई नहीं रह सकता था।

यहाँ रहते हुए मेरी गेरुआ वस्त्र धारण करने की इच्छा प्रबल होने लगी। मैं चाहता था कि मुझे श्रीमहाराजजी के द्वारा

गेरुआ वस्त्र प्राप्त हों। परन्तु इस विषय में उनसे कुछ कहने का साहस नहीं होता था। एकदिन कीर्तन के पश्चात् प्रसाद लेकर जब सब लोग शयन करने के लिये जहाँ–तहाँ जाने लगे मैंने सबके पश्चात् आपके चरण स्पर्श किये। पहले से ही मेरा यह प्रयत्न रहता था कि मैं सबसे पीछे प्रसाद ग्रहण करूँ। आज भी ऐसा ही हुआ। अतः जब मैं जाने लगा तो श्रीमहाराजजी ने मेरे कन्धे पर अपना कटिवस्त्र रख कर कहा, " जा।"

बस, मेरी कामना पूर्ण हुई। बिना प्रार्थना किये ही यह कृपा स्रोत झर रहा था। मेरा हृदय आनन्द से गद्गद हो गया। मुझे निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजी हृदय के भावों को जान लेते हैं। उस समय तरह–२ के भाव मेरे हृदय को आन्दोलित कर रहे थे। मैं उनमें तल्लीन हुआ निद्रादेवी की गोदी में चला गया। प्रातः काल उठने पर कुटिया पर गया तो उसके किवाड़ बन्द थे। किवाड़ों को धक्का देकर खोला तो कुटिया खाली मिली: जान पड़ा कि इसलिये कल आपने मुझे प्रसादी वस्त्र प्रदान किया था। चित्त में बड़ा खेद हुआ और मैं खिन्न मन से व्रज को लौट आया। तब से मैं गेरुआ वस्त्र धारण करने लगा और कुछ कीर्तन भी कराने लगा। उससे मेरे आनन्द और अनुभव की उत्तरोतर वृद्धि होने लगी।

भिक्षा का आदेश

कुछ समय पश्चात् मैंने सुना कि महाराजजी रामघाट में हैं। मैं तुरन्त श्रीचरणों में उपस्थित हुआ। इन दिनों दण्डिस्वामी सियाराम, बाबा रामदास श्रीरमाकान्तजी, बाबूजी और सुखरामजी भी यहीं थे। इन सबसे मेरा परिचय हो गया। रामघाट के भक्त एक

दिन बाबा को बस्ती में लिवा ले गये। वहाँ सम्भवतः श्रीसत्यनारायणकी कथा का आयोजन था। इन दिनों आप माधूकरी वृत्ति से रहते थे। मुझसे बोले, "क्या तू भिक्षा नहीं करता ?" मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया और दो घरों से माधूकरी करके कुटिया पर ले आया। भिक्षा श्रीमहाराजजी के आगे रख दी। आप देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दो रोटी अपने पास से डाल दीं। मैं यों तो नित्य ही आपका प्रसाद पाता था, परन्तु आजकी भिक्षा का स्वाद और महत्व तो अनिर्वचनीय था। मुझे ऐसा लगा कि संसार का वास्तविक त्याग तो आज ही हुआ है। वस्तुतः जबतक मान–प्रतिष्ठा का त्याग न हो तब तक संसार का त्याग कहाँ ? अब जब कभी माधूकरी करके भिक्षा करता हूँ तब एक विचित्र आनन्द का अनुभव होता है, चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है।

साधनात्मक प्रेरणायें

(१)

एक बार मैं भृगु क्षेत्र में श्रीमहाराजजी के साथ था। वहाँ एक पण्डितजी भी थे, जिन्हें आप तान्त्रिक कहा करते थे। रात्रि को पीने के लिये जो दूध मिला उसमें जलने की गन्ध आती थी। इस पर दूध बाँटने वाले के साथ तान्त्रिकजी की जोर–जोर से बातें होने लगीं। आपने पूछा, "क्या मामला है ?" लोगों ने कहा कि तान्त्रिकजी की बातचीत हो रही है। आपका उपदेश था कि साधक का सबसे बड़ा धर्म सहनशीलता है। उसे जैसा प्रसाद मिले प्रसन्नता से पा लेना चाहिये, कुछ कहना नहीं चाहिये। इससे बड़ा सुख प्राप्त होता है। मैं तबसे इसका बहुत ख्याल रखता हूँ। जब कभी इसमें भूल होती है चित्त को बहुत दुःख मिलता है।

(२)

एक बार बाँध के उत्सव में मैं गया हुआ था। वहाँ बड़ी भीड़ थी। श्रीमहाराजजी उस भीड़ का नियन्त्रण और देखभाल करते थे। मेरे चित्त में शंका हुई कि महात्मा को तो भीड़–भाड़ और संसार से दूर रहना चाहिए। इनके साथ तो हर समय भीड़ लगी रहती है।

उत्सव समाप्त होने पर मैं आपके साथ भृगुक्षेत्र चला आया। यहाँ एक दिन अचानक आपने सत्संग में कहा–

''साधु ऐसा चाहिये, दुखे दुखावे नाहिं।
फूल-पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं।।''

बस, मेरा समाधान हो गया। आज भी जब कभी संगसाथ में विक्षेप होता है, यह दोहा बड़ी शान्ति प्रदान करता है।

उनकी गुणगरिमा

पूज्य श्रीमहाराजजी सिद्धपुरुष थे। उन्हें बाहर–भीतर की सब बातों का पता लग जाता था। उनसे कुछ भी छिपा नहीं रहता था। जैसे वे आध्यात्मिक विषय में पारंगत थे वैसे ही लौकिक व्यवहार में भी पूर्णतया कुशल थे। परन्तु सांसारिक समस्याओं पर वे कभी दृष्टिपात नहीं करते थे। सर्वदा उनकी उपेक्षा करते रहते थे। उनका कथन था कि मन को सर्वदा अपने लक्ष्यपर ही लगाये रहना चाहिए।

मैं आगरा अस्पताल में पड़ा हुआ था। वहीं मैंने आपकी निर्मम हत्या का दारुण संवाद सुना। चित्त को बड़ा कष्ट हुआ। पागल की तरह अस्पताल से दौड़कर गया और किसी पत्र में यह

समाचार पढ़ा। उस समय मेरी अवस्था अर्ध विक्षिप्त की–सी हो गयी। परन्तु उनके दिये हुए उपदेशों का स्मरण करके चित्त को शान्त किया। तबसे बराबर उनका ध्यान करता रहता हूँ। जब कभी किसी प्रकार की समस्या सामने आती है तो आप ध्यान या स्वप्न में प्रकट होकर उसका समाधान कर देते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं उसी प्रकार उनके भक्त भी नित्य हैं।

उनके उपदेश

अन्त में उनके कुछ उपदेश वाक्य लिखकर यह लेख समाप्त करता हूँ–

१. पिछली बातें भूल जाओ।
२. आगेकी चिन्ता मत करो।
३. वर्तमानमें आनन्दमग्न रहो।
४. सहन करनेसे मनुष्य उठता है।
५. प्राणिमात्र हमारा है और हम प्राणिमात्रके हैं।
६. भगवान् कहीं दूर नहीं हैं।
७. जगत्‌का आधार सत्य है।
८. दया प्राणीका भूषण है।
९. पारस्परिक प्रेमसे प्रतिभा निखरती है।



स्वामी श्रीआत्मानन्दजी, जोधपुर

पूज्य श्रीमहाराजजी के परम पुनीत संस्मरण यदि जीवन भर लिखता रहूँ तो भी उनका अन्त नहीं हो सकता। अतः यहाँ दिग्दर्शन मात्र केवल दो–चार घटनाओं का उल्लेख करता हूँ।

(१)

उन दिनों हमारा परिवार खुरजा में रहता था। मैं छोटा बालक ही था और रामलीला देखने के लिये ज़ाया करता था। रास्ते में जाते हुए मैंने सुना कि सेठ सूरजमल के बाग में श्रीउड़ियाबाबाजी पधारे हैं, उनके पास दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी। मुझे भी उनके दर्शनों की लालसा हुई और उनके पास जा पहुँचा। बाबा का दरबार लगा हुआ था। मैं और मेरे सब साथी प्रणाम करके बैठ गये। बैठते ही प्रसाद में एक मक्खन–बड़ा मिला और फिर थोड़ी ही देर में कुछ लौकाट भी। प्रसाद तो वहाँ बँटता ही रहता था। मैं वहाँ केवल पाँच ही मिनट बैठा था, किन्तु इतने ही में मेरे हृदय में सर्वदा के लिये पूज्य बाबाजी की दिव्य मूर्ति ने घर कर लिया।

दूसरे दिन मैं अकेला ही दर्शन करने के लिये गया। उन दिनों यद्यपि मेरी आयु प्रायः ग्यारह साल की ही थी, तथापि वे मुझे इतने अच्छे लगते थे कि उनके पास से जाने के लिये मन ही नहीं होता था। तीसरे दिन सुना कि बाबा चुपचाप किसी से कुछ भी बिना कहे चले गये।

(२)

इसके बहुत दिनों बाद, जब मैं अपनी ननिहाल मडराक में था, मैंने सुना कि बाबा सड़कपर जा रहे हैं। बस, उनकी पुरानी स्मृति मेरे हृदय में जागृत हो आयी और मैं किसी के द्वारा बलात्कार से आकर्षित–सा होकर उनके पास दौड़ चला। सौभाग्यवश बाबा उस समय पास ही एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। उनके प्रति मेरा स्वाभाविक स्नेह था। उसका कारण खोजने की बात हृदय में उठती ही नहीं कल्याण में उनके उपदेश पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुआ करती थी। धीरे–धीरे मेरा चित्त घर की ओर से उपराम रहने लगा। पिताजी तो सत्संग के लिये कहीं जाने नहीं देते थे और न घर पर ही वे बैठकर भजन करने देते थे। उन्हें तो घर का काम करना ही पसंद था। वे कहा करते थे, "तेरी तरह काम छोड़कर थोड़े ही भजन किया जाता है, मेरे मन में हर समय 'राम राम' होता रहता था। तू भी इसी प्रकार भजन किया कर।' किन्तु मुझसे इस प्रकार भजन होता नहीं था। अतः मन में बड़ी अशान्ति रहती थी। मन भजन–सत्संग के लिये उत्सुक था, परन्तु कर नहीं सकता था। इसलिये निश्चय किया कि मुझे घर छोड़ देना है। एक सूरदासजी मेरे मित्र थे। उन्होंने मुझे समझा–बुझाकर रोकना चाहा। परन्तु मैं रुक न सका।

एक दिन रात्रि के समय मैं घर से चल पड़ा। उस समय ऐसा कोई विचार नहीं था कि मुझे बाबा के पास रहना है। सोचता था कि कहीं एकान्त में वृक्ष के तले रहूँगा और एक समय भिक्षा करके रात–दिन भगवन्नाम जपा करूँगा। परन्तु ऐसी शान्तस्थिति में रहना सहज बात तो नहीं थी। मैंने तो केवल कुछ पुस्तकें ही पढ़ी थीं, बाहर निकलकर देखा तो कुछ भी नहीं था। मैं कानपुर,

लखनऊ, अयोध्या, काशी, प्रयाग, और चित्रकूट आदि स्थानों में घूमता रहा। कई महात्माओं के पास गया। उनसे मन की शान्ति और भजन में प्रवृत्ति होने का उपाय पूछा; परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला। कहीं कोई नियमित सत्संग भी प्राप्त नहीं हुआ। जहाँ जाता असंतोष ही रहता कुछ न कुछ कहकर वे मुझे टाल देते। मेरा मन भजन में न लगकर भोजन की चिन्ता में ही अधिक रहने लगा। आखिर, मैं निराश हो गया और तंग आकर रोने लगा। बहुत देर रोते रहने पर मुझे स्मरण हुआ कि श्रीउड़िया बाबाजी के यहाँ तो नित्य सत्संग होता है, अतः वहीं चलूँ।

बस मैं, तुरन्त चल पड़ा और कुछ दिनों में वृन्दावन में उनके आश्रम में पहुँचा। वहाँ उन दिनों में रामलीला हो रही थी। मैं प्रायः आश्रम के छोटे दरवाजे पर बैठा रहता था। वहीं आते–जाते समय मुझे पूज्य बाबा के दर्शन हो जाते थे। मैं उन्हें केवल प्रणाम कर लेता था, और कुछ कहने या पूछने का मुझे साहस नहीं होता था। एक दिन बाबा ने मुझसे कहा, "उत्सव समाप्त हो गया, अब यहाँ से भाग जा।" यह उनकी पहली कृपा थी। मेरे रोम–रोम में आनंद की लहर दौड़ गयी। उनसे कुछ कहने की न तो मेरी हिम्मत थी और न स्थिति ही। कुछ दिन बाद वे बोले, "आश्रम में कुत्ते घुस जाते हैं, उन्हें रोक दिया कर।" इससे मुझे उनके श्री चरणों में रहने का आश्वासन मिल गया। उन्हीं दिनों एक बार मैं कीर्तन करते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जब चेत हुआ तो देखा कि मेरे बिल्कुल समीप श्रीमहाराजजी खड़े हुए हैं। अपने को इस स्थिति में देखकर मुझे बड़ा संकोच हुआ और उठकर दूर खड़ा हो गया। यह उनकी कृपा थी या मेरी दुर्बलता–इसका निर्णय मैं नहीं कर सका।

(३)

इस प्रकार पहली बार मुझे श्रीमहाराजजी के चरणों में रहने का अवसर मिला। परन्तु मेरी बाल्यावस्था थी और नया–नया विरक्त हुआ था। इसलिये चित्त घबड़ाने लगा और मैं अपने घर चला गया। तथापि वहाँ अधिक न ठहर सका। बाबा का चातुर्मास्य कर्णवास में होने वाला था। अतः मैं भी वहीं चला गया और बाग में रहने लगा। मुझे बाग में देखते ही श्रीमहाराजजी अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहने लगे, "इस लड़के को यहाँ से भगा दो, या पुलिस को बुलाकर पकड़वा दो। हमें इससे कोई सेवा नहीं करानी है। छोटे–छोटे लड़के घर छोड़कर भागने लगते हैं, और महात्माओं को तंग करते हैं। ये व्यर्थ अपना जीवन बिगाड़ते हैं।" ऐसा कहते हुए वे दूसरी ओर चले गये। इसके पश्चात् जब कभी वे मुझे कोई काम करते देखते तो तुरन्त हटवा देते। बुद्धिसागर जी सर्वदा श्रीमहाराजजी के साथ ही रहते थे। उन्होंने एक दिन उनसे कहा, "यह तो कमाकर खाता है।"✻ यह सुनकर श्रीमहाराजजी बोले, "तो कोई बात नही, भले ही सेवा करे।"

कुछ दिनों पश्चात् महाराजजी मुझ पर प्रसन्न हुए और मुझे मातृमण्डल में सेवा करने की आज्ञा हुई। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि यहाँ मुझे श्रीमहाराजजी की निजी सेवा करने का सुअवसर मिल जाता था। मैं चार महीने तक यह सेवा करता रहा। इससे मेरा चित्त ऐसा निर्मल रहता था जैसा इससे पूर्व

✻ उन दिनों आठ घण्टे काम करने पर मजदूर को दो आना मिलते थे। मैं केवल दो घण्टे काम करता था। इससे मुझे चार पैसे मिल जाते थे। किशोरीलालजी के क्षेत्र में उनका काम समाप्त हो जाने पर मैं नमक डालकर रोटी सेक लेता था। उन्हें कभी तो यों ही खा लेता और कभी क्षेत्र से, बच जाने पर, थोड़ी दाल मिल जाती थी अथवा आम मिल जाता तो उसके साथ खा लेता था।

कभी नहीं रहा। फिर मेरे मन में विचरने की तरंग उठी और मैं आग्रहपूर्वक बाबा से आज्ञा लेकर श्रीगंगाजी की धारा के सहारे अनेकों कष्ट सहता ऋषिकेश तक गया। वहाँ कुछ दिन ठहरा, परन्तु श्रीमहाराजजी को छोड़कर अधिक दिन नहीं ठहर सका। अतः लौटकर श्रीहरिबाबा के बाँध पर, जहाँ से कि मैं गया था, लौट आया। किन्तु बाबा के सामने जाने में संकोच होता था, अतः रात्रि के समय एकान्त पाकर उनके पास जाकर श्री चरणों में प्रणाम किया। परन्तु बाबा कुछ अप्रसन्नता की मुद्रा में ही रहे। मैं भी उनके पीछे–पीछे घूमता रहा। डेढ़ दिन बाद वे एकान्त में स्वयं ही बोले "बेटा! मैं विरक्तों से बहुत प्रसन्न रहता हूँ। परन्तु उन ब्रह्मचारी की तरह ✱विरक्त होने से क्या लाभ? विरक्त हो तो सच्चा ही होना चाहिये।"

फिर स्वयं धीरे–धीरे आपने मुझे कोठारी बना दिया। मुझे दूसरे का किया काम पसंद नहीं था, अतः कोठारका छोटे से छोटा काम मैं स्वयं ही करता था। मैंने मन में निश्चय कर लिया था कि इसी तरह सेवा करते हुए जीवन व्यतीत करूँगा। सेवा करने में मुझे बड़ा आनन्द आता था। इन दिनों बाबा मुझसे प्रसन्न थे। परन्तु वे मेरे भजन–साधन का विशेष ध्यान रखते थे, मुझसे सेवा कराना उन्हें अभीष्ट नहीं था। वे तो मुझे स्वावलम्बी और संयमी बनाना चाहते थे। अतः बीच–बीच में इस प्रकार डाँटते रहते थे। कि पहले तो तू भजन–पाठ आदि किया करता था, पर अब नहीं करता, रात–दिन काम

✱ यह बात बाबा ने एक ब्रह्मचारी की ओर संकेत करके कही थी, जो उनके पास ही रहते थे। उन्होंने चातुर्मास्य के लिये एक घड़ा आटा रख लिया था, जिससे यदि विशेष वर्षा हो तो भिक्षा के लिये न जाकर स्वयं रोटी बनालें।

में ही लगा रहता है। परन्तु मैं तो काम को ही भजन मानता था। मेरे शरीर में आँख कनपटी, पैर और कमर आदि पर श्वेत कुष्ठ के दाग हो गये थे। उनके लिये बाबा ने मुझसे कहा कि शिव मन्दिर पर जाकर झाड़ू लगा आया कर, तेरे दाग ठीक हो जायँगे। मैं पहले तो पाँच–सात दिन झाड़ू लगाने के लिये शिव–मन्दिर पर गया। फिर विचार किया कि बाबा का आश्रम भी तो शिवमन्दिर ही है। तब मैं वहीं झाड़ू लगाने लगा। अब मेरे सब दाग मिट गये हैं। कोई पहचान भी नहीं सकता कि मेरे शरीर पर श्वेतकुष्ठके दाग थे। बस, मैं भगवत्सेवा समझकर सब काम करता रहा।

(४)

एक बार श्रीमहाराजजी ने मुझे बुलाकर कहा कि तू घर चला जा। मैं बहुत घबड़ाया और चकित भी हुआ। फिर साहस करके पूछा, "मुझसे क्या अपराध हुआ ?" तब बोले, "तू मोटा बहुत हो गया है, रात–दिन खाता रहता है।" मैंने कहा, 'आपकी जैसी आज्ञा होगी वहीं करूँगा, आप घर न भेजें।" बोले, हम जो कुछ दें वही खाना, दूसरी चीज नहीं।" इससे पहले की बात है नवरात्रि में मालपूआ और चनों का प्रसाद बँटा था। एक दिन सबको डेढ़–डेढ़ मालपूआ दिया गया। मैं था कोठारी। मैंने अपनी परिस्थिति का दुरुपयोग करके पाँच मालपूआ खा लिये। दूसरे दिन मुझे ज्वर हो गया। तब आपने बुलाकर पूछा, "कल क्या खाया था ?" मैंने जब सच्ची बात बतायी तो बड़े नाराज हुए और बोले, "जब हमने सबको डेढ़–डेढ़ मालपूआ दिया तो तूने पाँच क्यों खाये ? इसी से तू बीमार हुआ है।"

इसी प्रकार एकबार और मुझे ज्वर हुआ था। तब भी पूछा कि तूने कल कोई नया काम किया था ? मैंने बताया कि तेल लगाकर स्नान किया था। इस पर बोले कि तूने तेल क्यों लगाया ? तू तो कभी

लगाता नहीं था। जिसे साधु होना है उसे तो तेल लगाना ही नहीं चाहिये उन दिनों सर्दी के कारण शरीर बहुत रूखा–सा रहता था। दूसरों के शरीरों को चिकना–चुपड़ा देख कर ही मैंने तेल लगा लिया था।

(५)

एक बार श्रीमहाराजजी बाबा रामदासजी के यहाँ उत्सवपर करह (ग्वालियर) पधारे थे। मैं पीछे से कोठार का काम निपटाकर रास्ते में महाराजजी से जाकर मिला। वे तो पैदल चलते थे। और मैं रेलद्वारा चलकर वहाँ पहुँचता था। जब उत्सव समाप्त हो गया तो उन्होंने मुझे डांटा और कहा कि तू बहुत बहिर्मुख हो गया है, इसलिये हमारे यहाँ से सदा के लिये चला जा, फिर मुँह मत दिखाना। आपके साथ किशोरीलालजी आदि कुछ अन्य भक्तगण भी थे। उन्होंने, कहा, "महाराजजी ! जो आपके पास एकबार आ गया उसके लिये यह कैसे सम्भव है कि फिर न आवे ?" मेरे विषय में तो यह बात सच ही थी। इस समय उनका आदेश सुनकर मैं तो घबड़ा ही गया था। तब आपने कृपापूर्वक कहा, "अच्छा ! जैसे दूसरे लोग समय–समय पर आते रहते हैं वैसे ही यह भी हो जाया करेगा।"

श्रीमहाराजजी की यह डाँट फटकार मेरे प्रति उनकी महती कृपा थी। वे मुझे स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। हुआ भी वही जैसा उनका संकल्प था। मुझे किन्हीं की भी डाँट फटकार सहन करने का स्वभाव नहीं था। ऐसा अवसर भी प्रायः नहीं पड़ा था। अतः मैंने निश्चय किया कि अब संन्यास लेकर भिक्षावृत्ति से रहूँगा और जहाँ श्रीमहाराजजी रहेंगे उनकी सेवा भी करूँगा। परन्तु जब मैं संन्यास लेकर आया तो उन्होंने मेरे लिये सेवा का द्वार ही बन्द कर दिया। बोले कि साधु को जानपहचान की जगह से सौ कोस दूर रहना चाहिये। तभी उसका सुधार हो

सकता है। हमारे यहाँ रहने से तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। परन्तु मेरे लिये बाबा को छोड़ना असम्भव था। मुझे ऐसा सत्संग और कहीं दिखायी नही देता था। अब मैं गाँव में भिक्षा कर लेता और पूरा समय सत्संग में ही लगाता था। पहले तो सेवाकार्य में ही लगा रहता था, सत्संग की कोई आवश्यकता ही नहीं समझता था। उन्हीं की कृपा से मैं सत्संग में लगा। और कुम्हार जैसे ठोक–पीटकर घड़े को सुन्दर बना देता है उसी प्रकार उन्होंने मुझे इस योग्य बना दिया कि मैं किसी भी तरह कहीं भी रहूँ, मेरे हृदय की शान्ति अखण्ड बनी रहती है। इसे मैं अपना कोई पुरुषार्थ नहीं मानता, उन्हीं का कृपाप्रसाद समझता हूँ। यद्यपि मेरे संन्यास लेने पर वे दो वर्ष तक मुझसे कभी सीधे नहीं बोले, परन्तु मेरी सब बातों का ख्याल रखते थे।

(६)

एक बार बाँध पर पीलीकोठी के कुएँ पर मैं अपने कपड़ों में साबुन लगा रहा था। उसी समय बाबा उधर आ गये। मैं उन्हें दूर से ही देखकर वहाँ से हट गया। वे कुएँ पर आकर खड़े हो गये और पूछने लगे कि कौन कपड़े में साबुन लगा रहा है? फिर तो मुझे बताना ही पड़ा। सुनकर बड़ा खेद–सा प्रकट करते हुए बोले, 'साधु को साबुन लगाने की क्या आवश्यकता है ?' मैंने सफाई देते हुए कहा, "मेरे पास बहुत दिनों से साबुन पड़ा था। किसी ने बिना ही माँगे दे दिया था" इस पर वे और भी बिगड़े और बोले कि "आसाम में चला जाय तो वहाँ साधुओं को लोग लड़कियाँ भी दे देते हैं। तब क्या तू विवाह भी कर लेगा ? भैया !

ही नहीं पड़ता साधु तेल लगाता नहीं और मैली जगह बैठता नहीं। फिर उसका वस्त्र मैला क्यों होगा ? अब तो साधु शौकीन हो जाते हैं और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये गृहस्थों की गुलामी करते रहते हैं।"

इस प्रकार वे मुझे ही नहीं सभी को सँभालते रहते थे। आश्रम के लोग प्रायः काम कम करते थे। वे बाबा के सामने तो खूब दौड़–धूप करते थे किन्तु उनके हटते ही इधर–उधर हो जाते थे। बाबा उनके इस व्यवहार से बहुत असंतोष प्रकट कर रहे थे। उसी समय किसी ने कहा, "इन सबको निकाल क्यों नहीं देते ?" तब बोले, "ईश्वर तो इन्हें अपनी सृष्टि से निकालता नहीं, मैं कैसे निकाल दूँ?"

ऐसी थी उनकी अद्‌भुत अनुकम्पा।



स्वामी श्रीब्रह्मर्षिदासजी उदासीन

प्रथम दर्शन

मुझे बाल्यकाल से ही महापुरुषों के सान्निध्य, सेवा और सत्संगादिकी लगन नहीं है। पूर्वाश्रम का परित्यांग करने के पश्चात् सिद्ध महापुरुषों के दिव्य दर्शनों की लालसा से ही मैं राजगृह, तपोवन (गया), काशी, प्रयाग, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों एवं लखनऊ, कानपुर आदि नगरों में विचरता हुआ गंगातटपर सोरों तीर्थ में पहुँचा। वहाँ मैं श्रीदातास्वामीजी के पास ठहरा। ये उस स्थान के एक प्रसिद्ध संत हैं। उन्हीं के यहाँ पहलीबार मैंने स्वनाम धन्य पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्री उड़ियाबाबाजी का नाम सुना।

इसके पश्चात् सं० १६६१ की बात है, मैं सोरों से पैदल विचरता हुआ पूज्य श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट पहुँचा। वहाँ मालूम हुआ कि इस समय श्रीमहाराजजी पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराज के बाँध पर हैं। अतः वहाँ से मैं नरवर, कर्णवास, भेरिया, अनूपशहर आदि होता हुआ पैदल बाँध पर पहुँचा। यह मध्याह्न के प्रायः १२ बजे का समय था। जिस समय वहाँ पहुँचकर मैंने अपने चिरभिलषित सन्तसम्राट् श्रीमहाराजजी का पुण्य दर्शन किया उस समय मेरे मन की जो अवस्था थी उसका वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मैं रास्ते भर श्रीमहाराजजी की अनुपम गुणगरिमा की महिमा श्रवण

करता आया था। आज उसी की अपरोक्षानुभूतिका सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने रास्ते में ही कुछ वन्य पुष्पों की एक माला गूँथ ली थी। वह भावविभोर होकर मैंने उनके गले में पहना दी। यह भी संकोच नहीं किया कि इस अकिंचन भिक्षु की इस नगण्य भेंट से वे कैसे रीझेंगे। किन्तु महाराजजी तो वात्सल्य की मूर्ति थे, बड़े ही ममतापूर्ण स्वर से बोले, "जाओ सबसे पहले भिक्षा कर लो। फिर दर्शन सत्संगादि करना।" ऐसा कहकर एक व्यक्ति को आज्ञा दी, 'जाओ, इन्हें भिक्षा दिला देना।'

अस्तु, मैं भिक्षा करके जल्दी ही लौट आया। मुझे तो उनके दिव्य दर्शनों से तृप्ति ही नहीं होती थी। मैंने आकर देखा कि श्रीमहाराजजी कुछ प्रवचन कर रहे हैं। मुझे ऐसा मालूम होता था मानों मुझे ही लक्ष्य करके उनका वह उपदेश हो रहा था। सम्भवतः गीता के इन श्लोकों की व्याख्या हो रही थी–

'परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मनुयः सर्वे परां सिद्धिमतो गताः।।"
"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथिन्ति च।।"

(१४। १। २)

श्रीमहाराजजी बार–बार इसी बात पर जोर दे रहे थे कि 'परम सिद्धि' क्या है। उनके शब्दों से यही ध्वनित होता था कि श्रीभगवान् की प्राप्ति वास्तव में परम सिद्धि है; मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि सिद्धियों को परमसिद्धि कभी नहीं कह सकते। उनकी प्राप्ति के ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि अनेकों मार्ग हैं। इसके पश्चात् उस परम सिद्धि की प्राप्ति में विघ्नरूप होने के कारण आपने धूम्रपान आदि सामाजिक कुरीतियों के त्याग पर जोर दिया।

इस प्रकार मैं श्रीचरणों में सम्भवतः तीन दिन ठहरा। उसके पश्चात् वहाँ से अहार आदि पुण्य क्षेत्रों के दर्शन करता हुआ हरिद्वार की ओर चला गया। उस समय तो मैं श्रीमहाराजजी से वियुक्त हो ही गया परन्तु उनका अलौकिक स्नेह सदा के लिये अमिट–सा होकर मेरे हृदयपटलपर अङ्कित हो गया।

गढ़मुक्तेश्वर में अपूर्व सन्तसमागम

एकबार मैंने श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ हरिद्वार से वृन्दाबन की यात्रा की। मार्ग में मुझे और भी कई महात्माओं के दर्शन हुए। उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं, दण्डिस्वामी श्रीसोमतीर्थजी महाराज, जिनकी सन्निधि में मैं पूरा चातुर्मास्य ठहरा था। उसी चातुर्मास्य में एक दिन रात्रि में उनके साथ पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का प्रसंग छिड़ गया। मैं बाँध पर उनके दर्शन करके परम प्रभावित हो ही चुका था।, आज मानों उसकी और भी पुष्टि हो गयी। पूज्य श्रीदण्डिस्वामीजी ने आपके विषय में जो बातें कहीं उनसे श्रीमहाराजजी के प्रति मेरे हृदय में अपार श्रद्धा बढ़ गयी। जिस समय रात्रि में यह चर्चा हो रही थी मेरे मन में ऐसा भाव हुआ कि यदि कहीं इन दिनों श्रीमहाराजजी यहाँ (गढ़मुक्तेश्वर में) आ जाते तो कितना आनन्द होता?

प्रातः काल होने पर जब श्रीदण्डिस्वामी जी गंगातट पर गये तो मैं भी उनके साथ ही चला गया। वहाँ मैंने देखा कि एक फूँस की झोपड़ी के आगे एक बड़ा सा तख्त पड़ा हुआ है। उस पर श्रीमहाराजजी विराजमान हैं और पूर्वाभिमुख होकर ध्यानस्थ बैठे हैं। उनका सारा अंग चादर से ढका हुआ था मैं मानो उन्हीं की अद्भुत आकर्षण शक्ति से खिंचकर उधर चला

गया। यह देखकर मैं तो अवाक् रह गया। उस झोंपड़ी के एक ओर आपका काष्ठमय कमण्डलु भी टँगा हुआ था। उसे देखकर मेरे अनुमान की और भी पुष्टि हो गयी। यह देखकर मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा और मैंने दबे पाँव से झट श्रीदण्डिस्वामीजी के पास जाकर कहा, "पूज्य श्री उड़ियास्वामीजी यहाँ गंगातटपर पधारे हुए हैं।" किन्तु उन्होंने मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें सम्भवतः मेरे कथन में विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि पहले से तो बाबा के वहाँ पधारने की कोई सूचना थी नहीं।

किन्तु श्रीस्वामीजी की इस उपेक्षा का मेरे चित्त पर कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा और मैने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं श्रीमहाराजजी का पूरा पता लगाऊँगा। बस, श्रीस्वामीजी के भिक्षा कर लेने पर मैं दोपहर को ११–१२ बजे के लगभग चुपके से निकल पड़ा और श्रीगंगातट पर आकर मैंने एक–एक झोंपड़ी को छान डाला। किन्तु जब कहीं भी बाबा के दर्शन न हुए तो मुझे बहुत दुःख हुआ। अन्ततोगत्वा मुझे एक झोंपड़ी दिखाई दी। मैंने सोचा, "जब सभी को देखा है तो इसे ही क्यों छोड़ूँ।' अतः आशा–निराशा के बीच में लड़खड़ाते हुए जैसे ही मैंने उस झोंपड़ी में झाँका कि मुझे हमारे जीवनसर्वस्व सामने विराजमान दिखायी दिये। मुझे देखकर आप खिलखिलाकर हँसने लगे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानों आप हमारे साथ भूलभुलैया का खेल खेल रहे हैं, दर्शन करते ही मैं दौड़कर चरणों में पड़ गया और रोने लगा। बहुत पुकारने पर भी जब माँ आने में देर कर देती है तो बालक को उस पर जैसी खीझ होती है, उस समय वैसी ही अवस्था मेरे चित्त की थी। मैं रो रहा था और श्रीमहाराजजी ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, 'कहाँ ठहरे हो ?"

मैं——स्वामी श्रीसोमतीर्थजी के पास।

बाबा—अच्छा, देखो, बेटा! किसी से हमारे आने की चर्चा मत करना। इस समय मैं बहुत अशान्त वातावरण से यहाँ आया हूँ और मुझे यहाँ कुछ दिनों एकान्त में ठहरना है।

मैं मौन होकर आपके वचनामृत का पान करता रहा। फिर जब मैंने कुछ निवेदन करने की भावना प्रकट की तो आप बड़ी उदारता से बोले, "हाँ, क्या पूछना है, पूछो।"

मैं—भगवन्! मन की चंचलता के विषय में वीरवर अर्जुन ने जो प्रश्न किया है वह तो सभी साधकों का प्रतिनिधित्व किया है। कोई भी साधक इस विषय में अपना अनुभव उन्हीं शब्दों में व्यक्त करेगा। तथा श्रीभगवान् ने भी उसका उचित ही उत्तर दिया है। किन्तु उसके सिवा यदि उसका कोई और सरल सा मार्ग या समाधान हो तो बताने की कृपा करें।

श्रीमहाराजजी हँसते हुए बोले—बेटा! जैसे जहाज के काग को बैठने के लिये कोई दूसरी जगह न मिलने पर वह अन्त में जहाजही पर बैठता है, उसी प्रकार जब मन को भी कोई और अवलम्ब न मिले तो वह स्वयं शान्त हो जायगा। देखो, मन के सामने दो ही मार्ग हैं—एक विषयचिन्तन का और दूसरा ब्रह्मचिन्तन का। यदि वह ब्रह्मचिन्तन में लगा रहे तब तो ठीक है, नहीं तो विषयचिन्तन ही करेगा। अतः उसे पुनः—पुनः विषयचिन्तन से हटाकर ब्रह्मचिन्तन में लगाते रहना चाहिये। जब श्रुति कहती है— 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किंचन' तो बार—बार इसी का विचार करना चाहिये। इसकी दृढ़ता हो जाने पर फिर भला विषय—चिन्तन कैसे हो सकता है?

इसी प्रकार कुछ देर तक आपका प्रवचन होता रहा।

इसी प्रकार कुछ देर तक आपका प्रवचन होता रहा। उसका उपसंहार ब्रह्माभ्यास में ही हुआ–

'तच्चितनं तत्कथनमन्योन्यत्तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः।।'

यह उपदेश चल ही रहा था कि वहाँ कुछ महिलाओं का झुण्ड पूजा–आरती आदि का समान लिये आ पहुँचा। सभी आनन्द में विभोर र्थी और सभी ने बारी–बारी चरणावन्दना करके आपकी पूजा और आरती की। मैं यह सब दृश्य देख रहा था और मन में कहता था कि यह ऐसी ही बात है कि सूर्य का उदय हो और लोगों को यह आदेश दिया जाय कि खबरदार, किसी से कहना मत कि सूर्योदय हुआ है।

अस्तु। कुछ देर पश्चात् मैंने जाने के लिये आज्ञा माँगी, क्योंकि मैं श्रीदण्डिस्वामी जी से कहे बिना ही चला आया था और उनके विश्राम की समाप्ति का समय सन्निकट था। श्रीमहाराजजी ने मुझे पेड़ों का प्रसाद दिया और चलते समय फिर आज्ञा की कि 'देखो, किसी से कहना नहीं। अच्छा, भूल मत जाना।' चलते समय मेरे हृदय में मर्मान्तक पीड़ा–सी होने लगी, किन्तु बस ही क्या था। मैंने रोते–रोते साष्टांग प्रणाम किया। तब श्रीमहाराजजी बोले, "बेटा ! तुम इस तरह गिरकर प्रणाम क्यों करते हो ?" मैंने विनम्र स्वर में हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवन् ! आप जैसे गुरुजनों के अकुतोभय श्रीचरणों में गिरकर ही यह सिर संसार के सामने उठ सकेगा, अन्यथा इसे कुचल देने के लिये सारा संसार कटिवद्ध–सा है। आजतक ऐसा कौन व्यक्ति उत्पन्न हुआ है जिसका सिर संसारवालों ने कुचलना नहीं चाहा। संसार के सामने तो वही सिर उठ सकता है जिस पर आप जैसे गुरुजनों का वरद हस्त अभय–मुद्रा के सहित सुशोभित है।"

बस, मैं अपने निवासस्थान पर चला आया। श्रीदण्डिस्वामीजी से मैंने तो श्रीमहाराजजी के पधारने की बात नहीं कही, किन्तु पं० तृषारामजी और एक ब्रह्मचारीजी ने उन्हें इसकी सूचना दे ही दी। तब उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'तुम ठीक ही कहते थे, मैंने तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं किया, बड़ी गलती की। तुम उनके पास जाओ और मेरी ओर से करबद्ध होकर प्रार्थना करो कि गंगातट पर मच्छर अधिक हैं, इसलिये रात्रि में यहाँ असौड़ावालों की धर्मशाला में ही विश्राम करें।' मैंने उक्त दोनों ब्रह्मचारियों के सहित श्रीमहाराजजी के पास जाकर श्रीस्वामीजी के कथनानुसार निवेदन किया। तब आप बोले, "भैया! उनसे कह देना कि गंगातट को छोड़कर वहाँ जाना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। कल जब मैं गाँव में भिक्षा करने के लिये जाऊँगा तब उनका दर्शन वहीं करूँगा।' मैंने श्रीदण्डिस्वामीजी को यह बात कही तो वे बोले, "अच्छी बात है, जैसी उनकी इच्छा। संत तो सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होते हैं।"

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं फिर स्वामीजी के साथ गंगास्नान के लिये गया और फिर उन्हें साथ लेकर श्रीमहाराजजी के पास उसी कुटी में पहुँचा जिसमें पहले दिन उनके पुण्य दर्शन किये थे। श्रीमहाराजजी उस समय अकेले बैठे हुए थे। दोनों महापुरुष बड़े प्रेम से मिले। उनका अलौकिक प्रेम देखकर मैं मन्त्रमुग्ध–सा रह गया। कुशल–प्रश्न के पश्चात् श्रीमहाराजजी ने कहा कि भिक्षा करके मैं थोड़ी देर के लिये आपकी कुटिया पर ही आऊँगा। आप अधिक कष्ट न करें। श्रीस्वामीजी ने कहा, "आपकी जैसी आज्ञा।" फिर प्रायः एक घण्टा बातचीत करके श्रीस्वामीजी के सहित हम सब लोग लौट आये।

मध्याह्न में भिक्षा करके श्रीमहाराजजी धर्मशाला में पधारे। उनके साथ भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा, श्रीपन्नालालजी दिल्ली

तथा और भी अनेकों भक्त थे। उस समय सारी धर्मशाला भक्तों और दर्शकों से भर गयी थी। श्रीमहाराजजी तो ऊपर की कुटी में श्रीस्वामीजी के पास चले गये और सब लोग नीचे बैठे रहे। श्रीमहाराजजी के पास उनके कुछ विशेष कृपापात्र ही रहे। इस प्रकार प्रायः एक सप्ताह श्रीमहाराजजी गढ़मुक्तेश्वर में रहे। उन दिनों वहाँ बड़ी चहल–पहल रही। बाहर से भी अनेकों भक्त आकर एकत्रित हो गये। जब तक गढ़मुक्तेश्वर में ठहरे महाराजजी नित्यही भिक्षा के पश्चात् धर्मशाला में आते रहे। उस समय मेरी ड्यूटी उनको पंखा झलने की थी। स्वामीजी श्रीमहाराजजी के लिये कोई चीज भेजते तो उसे भी मैं ही पहुँचाता था। इससे मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता था।

जब श्रीमहाराजजी ने वहाँ से प्रस्थान करने का विचार किया उन दिनों मुझे मलेरिया ने दबा लिया था। मैं ज्वराक्रान्त अवस्था में था। जाते समय श्रीमहाराजजी कृपा करके मेरे पास आये। उस समय उनके चरणों का दर्शन करके मुझे जो सुख हुआ उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, मेरा हृदय ही जानता है–

'सो सुख जानहि मन अरु काना। रसना पै नहिं जात बखाना।।'

चलते समय आपने मुझे आदेश दिया कि बेटा अत्यधिक आग्रहपूर्वक कोई काम नहीं करना चाहिये। इस आदेश का कारण यह था उस–समय मैं कुछ हठी–सा हो गया था। भिक्षादि करने में बहुत संकोच होता था। दूसरे समय तो करता ही नहीं था, एक समय भी पूरा भोजन नहीं करता था। कभी–कभी तो उपवास भी हो जाता था। श्रीमहाराजजी ने चलते समय मुझे यह बालहठ त्यागने का आदेश दिया और यह भी कहा कि अभी तुम्हारी नस–नाड़ी कमजोर हैं इसलिये सायंकाल में भी कुछ खा लिया करो। इस प्रकार युक्ताहार–विहार रखकर ही निरन्तर भजन में संलग्न रहो।

मैंने श्रीमहाराजजी की यह आज्ञा शिरोधार्य करली, क्योंकि–

'सिर धरि आयुस करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।

सहता और आगरा में

मैं अपने जीवन में महापुरुषों के दर्शनामृत के लिये सदैव पिपासू रहा हूँ। मैंने कई महापुरुषों के नाम सुन रखे थे। उनमें एक थे आगरे के सुप्रसिद्ध संत श्री १०८ श्रीमत्परमहंस स्वामी श्रीयोगानन्दजी (श्रीआलूवाले बाबाजी) महाराज। उनके दर्शनों के लिये मैं हरिद्वार से पैदल ही आगरा गया। किन्तु मेरा दुर्भाग्य। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि उनका देहावसान हुए प्रायः छः मास हो चुके। मैं निराश होकर लौटना ही चाहता था कि वहाँ के एक प्रमुख व्यक्ति ब्रह्मचारी विष्णुजी ने, जो वहाँ से प्रकाशित होने वाले मासिक 'वेदान्त केसरी' के सम्पादक थे, मुझे रोक लिया। उन्होंने मुझसे कहा कि श्रीमहाराजजी (श्रीआलूवाले बाबाजी) द्वारा रचित बहुत–से ग्रन्थ हैं, उनका आप यहाँ रहकर अध्ययन करें। यह बात मुझे जँच गयी और मैं वहीं एक गुफा में रहकर उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगा।

इसी समय मैंने सुना कि आगरे से थोड़ी दूर सहता नामक ग्राम में भक्तवर भगवद्दास के बाग में श्री उड़िया बाबाजी पधारे हुए हैं। बस, मेरे हृदय में उनके दर्शनों की लालसा जाग्रत् हुई और मैं वहाँ से चल दिया। इन दिनों सम्भवतः चैत्र के नवरात्र थे, क्योंकि जब मैं सहता पहुँचा तो देखा कि श्रीमहाराजजी की सन्निधि में श्रीरामचरितमानस का नवाह्न पारायण हो रहा है। इस पारायण के अग्रणी थे श्रीरघुनाथजी महाराज। इस समय इस स्थान पर श्रीमहाराजजी के अनेकों प्रमुख भक्त एकत्रित थे। इसी समय मुझे प्रथम बार श्रीस्वामी रामदासजी उदासीन और दण्डि स्वामी श्रीसियारामजी के भी दर्शन हुए। सहता में सत्संग और कीर्तनादिकी खूब

श्रीसियारामजी के भी दर्शन हुए। सहता में सत्संग और कीर्तनादिकी खूब धूम थी। श्रीमहाराजजी स्वयं श्रीमुख से गीता शंकरानन्दी की कथा कहते थे। पहले स्वामी सियारामजी अग्रणी होकर गीताजी के एक अध्याय का मूल पाठ करते थे और फिर श्रीमहाराजजी श्रीमुख से एक–दो श्लोकों की विशद व्याख्या करते थे। जिस समय मैं पहुँचा, गीता अध्याय १३ के नवें श्लोक की व्याख्या हो रही थी।

मुझे श्रीमहाराजजी ने स्वामी रामदासजी के पास ठहरने की आज्ञा प्रदान की। उसी समय से उनके साथ मेरी जो घनिष्टता बढ़ी। उसका वे आजतक निर्वाह करते आ रहे हैं। ये पुण्य संस्मरण भी उन्हीं के आग्रह का परिणाम हैं। इसके लिये मैं उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

इस प्रकार रामनवमी तक सहता में खूब आनन्द रहा। यहाँ से श्रीमहाराजजी आगरा पधारे। पूज्य श्रीआलूवाले बाबाजी से आपकी बड़ी घनिष्टता थी। अतः आगरा पहुँचने पर सबसे पहले आप उन्हीं के आश्रम पर गये। आपके साथ बाबा श्रीरामदासजी रामायणी करह (ग्वालियर) वाले और ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी आदि और भी कई महानुभाव और भक्तवृन्द थे। इन सबके स्वागत की व्यवस्था वेदान्तकेसरी–सम्पादक ब्रह्मचारी श्रीविष्णुजी महाराज ने की थी।

जिस समय श्रीमहाराजजी योगानन्दाश्रम लालघाट पधारे उस समय वहाँ हजारों नर नारियों की भीड़ हो गयी। प्रातः काल का समय था, अतः दर्शनार्थियों के साथ स्नानार्थियों का भी ताँता लगा हुआ था। मुझे तो श्रीमहाराजजी के सम्मुख होने में भी इतना संकोच होता था कि उनके सामने न बैठकर प्रायः श्रीरामदासजी महाराज उदासीन के पास

के द्वारा करता था। किन्तु आज मैं अपने भाग्य की सराहना किन शब्दों में करूँ? श्रीमहाराजजी जोन्स मिल के पीछे अचलेश्वर महादेव की ओर नित्यक्रिया से निवृत्त होने के लिये जा रहे थे। मैं भी साथ हो लिया। यह देख कर और भी कई आदमियों ने हमारा अनुकरण किया। परन्तु श्रीमहाराजजी ने सभी को निषेध कर दिया और मेरे हाथ में अपना कमण्डल देते हुए कहा, "कोई और न आवे, केवल यही आयेगा।" बस, मेरा हृदय आनन्दातिरेक से गद्‌गद् हो गया। कुछ आगे चलकर आपने प्रश्न किया, 'क्यों बेटा! तू कुछ प्रश्न नहीं करता?" मैंने बड़े ही संकोच से निवेदन किया, "श्रीचरणों की असीम कृपा है कि मुझे प्रश्न करने का अवसर दिया गया। मैं तो आपके सम्मुख प्रश्न करने में बहुत संकोच का अनुभव करता हूँ तथा बिना पूछे भी मेरे कई प्रश्न आपकी कृपा से अनायास ही हल हो जाते हैं। इसी से मैं प्रश्न नहीं करता। कृपया क्षमा करें। इसके सिवा मैं देखता हूँ आपके पास आने वालों में कोई बी. ए. हैं, कोई एम. ए. तथा कोई शास्त्री हैं, कोई आचार्य। मुझमें तो ऐसी कोई योग्यता नहीं है। ऐसी स्थिति में कैसे प्रश्न करूँ?" इतना कहते–कहते मैं गद्‌गद् हो गया। तब श्रीमहाराजजी ने कहा, "नहीं, बेटा! जो इच्छा हो प्रश्न कर सकते हो, इसमें बी. ए. एम. ए. की क्या बात है?"

अब मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रश्न किया, 'श्रीमहाराजजी! समय भी थोड़ा ही है। अतः एक–दो प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें। हम लोग घर–बार छोड़कर जो चले आये हैं क्या यही वैराग्य का स्वरूप है? अथवा कुछ और भी है?

श्रीमहाराजजी बोले–"**जन्ममृत्यु जराव्याधिदुःख दोषानुदर्शनम्**' (गीता १३। ८) इस अर्धाली की अपरोक्ष अनुभूति जब भगवान् बुद्ध की तरह पद–पदपर होने लगे तब समझना चाहिए कि सच्चा

यह सुनकर मेरी आँखें खुल गयीं। हम लोग तो केवल घर छोड़ देने को ही बहुत बड़ी बात मान लेते हैं। और वैराग्य का केवल शिष्टाचार पालन करते रहते हैं। फिर मैंने दूसरा प्रश्न किया "महाराजजी ! हम लोग जो रात–दिन कथा–कीर्तन को ही महत्व देकर उसी में लगे रहते हैं क्या यही भक्ति का शुद्ध स्वरूप है।

इस पर श्रीमहाराजजी बोले–"नहीं, नहीं यह तो बहुत सामान्यकोटिकी बात है। इसे तो वैधी भक्ति कहते हैं। भक्ति का शुद्ध स्वरूप तो भगवान् शंकराचार्य ने यह बताया है– **स्वस्वपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते। स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः ?'** ❁

(विवेक चूड़ामणि ३२)

श्रीरामायणजी में भी कहा है–

"मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।"

फिर मैंने निवेदन किया, "महाराजजी ! क्या ज्ञान की केवलमात्र बड़ी–बड़ी बातें बनाना ही ज्ञान की परिभाषा है, अथवा किसी स्थितिविशेष या अनुभूति की अपेक्षा है ?"

महाराजजी बाले–'न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया। ब्रह्मात्मैक्यबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा।" भइया ! मोक्ष तो ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता का अपरोक्ष ज्ञान होने पर ही हो सकता है। योग, सांख्य, कर्म अथवा किसी भी अन्य ज्ञान से मुक्ति नहीं हो सकती। देखो, मनुष्य में जो भी कला–कौशल वाणी की प्रखरता अथवा विद्वत्ता आदि चमत्कारी गुण होते हैं, वे सब तो उसके भोग के ही साधन हो सकते हैं, मोक्ष के कदापि नहीं हो सकतें–

❁ अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति कहलाती है तथा कोई लोग आत्मतत्त्व के अनुसंधान को भक्ति कहते हैं, श्रीमहाराजजी अधिकारी के अनुरूप उपदेश दिया करते थे। ब्रह्मर्षिदासजी विरक्त संत हैं इसलिये उन्हें उनके अनुरूप ही भक्ति का लक्षण बताया है।

'वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवाद्नसौष्ठवम्।
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते।।
'बग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये।।''

ज्ञान का वास्तविक स्वरूप तो है स्वस्वरूपावस्थिति— 'स्वस्वरूपावस्थानं ज्ञानमित्यभिधीयते।'' ब्रह्मादि नित्यसिद्ध भी बिना स्वरूपावस्थान के आधे फल भी नहीं रहते—

'निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः शुकाद्याः सनकादयः।

अतः सदैव स्वरूपस्थितिपर ध्यान रखना चाहिये।

मैं एकाग्रचित्त से श्रीमहाराजजी के वचनामृत का पान करता रहा। यह उनके साथ मेरा प्रथम एकान्त वार्तालाप था और इसके पीछे भी मुझे ऐसा सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसके पश्चात् श्रीमहाराजजी नित्यकृत्यसे निवृत्त होने के लिये एकान्त में चले गये और मैं वहीं खड़ा रहा। फिर यमुना स्नान करके आश्रम पर पधारे। वहाँ ब्रह्मचारी विष्णुजी ने विधिवत् पूजन कर सभी समागत महानुभावों को जलपान कराया तथा सभा को वेदान्तकेसरी का अंक भेंट किया। जब श्रीरामदास जी महाराज 'रामायणी' को अंक भेट किया गया तो उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा, " मैं अभी अपने को इसका अधिकारी नहीं मानता।'' उनकी यह विनम्र मुद्रा देखते ही बनती थी। श्रीमहाराजजी कुछ देर आश्रम पर ठहरकर ब्रह्मलीन श्रीआलूवाले बाबाजी की चर्चा करते रहे।

इसके पश्चात् सब भक्तों के सहित आप अपने निवास स्थान श्रीरामचन्द्र के बगीचे पर आये और वहाँ तीन—चार दिन ठहर कर श्रीवृन्दावन की ओर चले गये।

अनूपशहर में

मैं कैलाश दर्शन के लिये जा रहा था। जब बुलन्दशहर पहुँचा तो मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी इस समय अनूपशहर में विराजमान हैं। बस, मैंने निश्चय किया कि श्रीचरणों के दर्शन किये बिना आगे नहीं बढ़ूँगा। इतने ही में मुझे एक वयोवृद्ध दण्डिस्वामी के दर्शन हुए। मैंने अत्यन्त हर्षित हो शिष्टाचार पूर्वक उनका अभिवादन किया और पूछा, 'आप कहाँ पधार रहे हैं?' वे बोले, "मैं श्री उड़ियाबाबाजी के पास अनूपशहर जा रहा हूँ।" अब हम दोनों का साथ हो गया। मार्ग में बराबर श्रीमहाराजजी की ही चर्चा होती रही। वे मेरे आन्तरिक भाव की परीक्षा के लिये बीच–बीच में श्रीमहाराजजी की समालोचना कर देते थे। तब मैं बड़ी नम्रता से ऐसा न करने के लिये उनसे प्रार्थना करता था। अंत में उन्होंने कहा, "आपकी श्रद्धा देखकर मुझे अपार हर्ष हुआ, आप वास्तव में श्रीमहाराजजी के प्रति सच्ची श्रद्धा रखते हैं। पीछे मालूम हुआ कि आप श्रीमहाराजजी के ही एक अनन्य भक्त फर्रुखाबादी दण्डिस्वामी श्रीआत्मबोध तीर्थ हैं।

अनूपशहर पहुँचने पर मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी कई दिनों से अत्यन्त एकान्त में श्रीगंगाजी की रेती में रहते हैं। मैं ढूँढ़ता हुआ वहीं पहुँचा। वह स्थान अनूपशहर से प्रायः दो मील की दूरी पर था। वहाँ भक्तों के सहित श्रीमहाराजजी के दर्शन करके मैने अपने को कृत्कृत्य और धन्य माना। मेरे साथ उक्त दण्डिस्वामीजी भी थे। उन्होंने अभिवादनादि कर श्रीमहाराजजी से मेरे विषय में कुछ प्रशंसासूचक शब्द कहे। मैं तो उन्हें सुनकर संकोचवश गड़ा जाता था। कुछ देर विश्राम करके मैं नित्यकृत्य से निवृत्त होने को चला गया और मध्याह्नोत्तर प्रायः चार बजे लौटा। लोगों ने कहा कि भोजन के समय श्रीमहाराजजी आपको पूछ रहे थे। उन्होंने अब भी मेरे लिये प्रसाद रख छोड़ा था। उनका ऐसा वात्सल्य देखकर मैं गद्गद हो गया।

दूसरे दिन की बात है। प्रातः ८–९ बजे तक तो सत्संग होता रहा। आज सभी साधुओं को स्वयं भिक्षा माँगने के लिये अनूप शहर जाने की बात थी। प्रायः १० बज चुके थे। ज्येष्ठ का महीना था, धूप बहुत कड़ी पड़ रही थी। दो मील जाना और फिर दो मील लौटकर आना। श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार जाना मैं भी चाहता था। परन्तु धूपकी तीक्ष्णता के कारण हृदय इस ऊहापोह में था कि जाऊँ या न जाऊँ। यहाँ लगभग २०–२५ गृहस्थ रहेंगे। यदि ये ठहर सकते हैं तो क्या मैं नहीं रह सकता। जो इनकी व्यवस्था होगी वही मेरी हो जायगी। अतः वहीं तटस्थ –सा बना रहा। परन्तु मन में यह भय अवश्य था कि यदि श्रीमहाराजजी ने पूछा कि तू क्यों नहीं गया तो क्या जवाब दूँगा। अतः मैं चलने को तैयार हो गया। किन्तु इतने ही में एक अद्भुत घटना घटी। मैं जैसे ही चलना चाहता था। कि मैंने देखा उस जलती हुई रेती और चमचमाती हुई धूप में दो आदमी बहँगियों में चार टोकरेपकवान्न भरे लिये आ रहे हैं। मैंने आगे बढ़कर उनसे पूछा "क्यों भाई, यह सब सामान तुम कहाँ ले जा रहे हो?" वे बोले, "उड़िया महाराजजी के यहाँ।" फिर श्रीमहाराजजी के पास जाकर उन्होंने बताया कि अमुक व्यक्ति ने यह समान भेजा है। यह सब देखकर मेरे आश्चर्य का परावार न रहा। बिना पूर्वसूचना के इतनी दूर इस चिलचिलाती धूप में इतना सामान स्वतः आ जाना श्रीमहाराजजी का अद्भुत चमत्कार नहीं तो क्या है? बस, मैं तो अब वहीं रुक गया।

थोड़ी देर पश्चात् जो संत भिक्षा के लिये चले गये थे वे भी लौट आये। आज उनमें से प्रायः किसी को पूरी भिक्षा नहीं मिली थीं। उनकी पूर्ति भी उसी अन्न से की गयी। सबने वहीं भोजन किया और सायंकाल में भी श्रीमहाराजजी ने उसी अन्न में से सबको प्रसाद दिया। सायंकाल मैं विदा होकर सागर मलजी के गाँव गया। दूसरे दिन प्रातः काल अनूपशहर आया और फिर डिवाई से गाड़ी में बैठकर मुरादाबाद होते हुए अपने लक्ष्यकी ओर चला गया।

अन्तिम दर्शन

श्रीकृष्णाश्रम की स्थापना हो जाने के पश्चात् महाराजजी अधिकतर श्रीवृन्दावन में ही रहने लगे थे। मैं भी इसके कुछ वर्ष पूर्व से अपना चातुर्मास्य श्रीवृन्दावन में ही करता था। पहले मेरा आसन श्रीब्रह्मनिवास आश्रम में रहता था, किन्तु फिर मैं भी श्रीमहाराजजी की सन्निधि में ही रहने लगा। एक दिन श्रीमहाराज जी ने सायंकाल में अपने कुछ प्रमुख भक्तों से पूछा, " जब शरीरान्त का समय सन्निकट हो तब ज्ञानी का क्या कर्त्तव्य है? गृहस्थों को तो गोदान आदि करना चाहिये, किन्तु ऐसे समय विरक्तों का कर्त्तव्य क्या है? श्रीमहाराजजी के मुख से अकस्मात् ऐसा प्रश्न सुन कर मेरे हृदय को ऐसा अभास हुआ मानो ये अपने विषय में ही यह प्रश्न कर रहे हैं। मैंने अपना यह भाव बाबा रामदासजी उदासीन से कह भी दिया था। श्रीमहाराजजी यह प्रश्न करके नित्य कृत्य से निवृत्त होने को चले गये। रात्रि में इस पर विचार करने की आज्ञा हुई। मैं उस समय उपस्थिति नहीं था। दूसरे दिन मैंने श्रीरामदासजी से पूछा कि इस प्रश्न का सब महानुभावों ने क्या उत्तर दिया तो वे बोले, "किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया अन्त में श्रीमहाराजजी ने यही निर्णय किया कि उसका कोई कर्त्तव्य नहीं है, जैसा कि श्रीगीताजी में भी कहा है—

" यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।" (३।१७)

कहना न होगा कि उसी वर्ष यह दारुण घटना हुई जिसकी स्मृतिमात्र से हृदय आन्दोलित हो उठता है। उन दिनों मैं ओंकारेश्वर और अमरकण्टककी ओर विचर रहा था। जिस समय प्रयाग पहुँचा उस समय यह कर्णकटु प्रसंग सुनने को मिला। वाह रे! आज के संसार! तू

महात्माओं को भी नहीं छोड़ता। अपने राग–द्वेषमय विषाक्त वातावरण को संतों के सम्मुख रखने में भी तुझे लज्जा नहीं आती। मैं तो श्रीमहाराजजी के देहावसान के कई मास पश्चात् वृन्दावन गया था। उस समय भी वहाँ का वातावरण मुझे क्षुब्ध–सा जान पड़ता था। मैं श्रीमहाराजजी के तैलचित्र के समीप खड़ा–खड़ा रोता रहा। किन्तु अब उसे सुनने वाला वहाँ कौन था। आज तो उनकी स्मृतिमात्र रह गयी है। जो आनन्द श्रीमहाराजजी की सन्निधि में अनुभव किया वह अब कहाँ है? उसकी यत्किंचित् क्षतिपूर्ति आज हम अपने बीच में पूज्य श्रीहरिबाबाजी और स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी को पाकर ही कर पाते हैं। अन्यथा अब तो चित्त आलम कवि के शब्दों में यही कहने को आतुर–सा हो रहा है कि–

"जा थर कीने बिहार अनेकन ता थर काँकरि बैठे चुन्यौं करैं,
जा रसनासों करीं बहु बातन ता रसनासों चरित्र गुन्यौं करैं।
आलम जौन से कुंजन में करीं केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं,
नैननि में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं।।"

अन्त में संस्मरणरूप श्रद्धाञ्जलि साश्रु श्रीचरणकमलों में समर्पित करता हुआ मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ।



श्रीशान्तिप्रकाशजी संन्यासी, साधुआश्रम, एटा

श्री १००८ श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज के साथ मेरा संबन्ध सन् १९२४ ई० से है। मैंने समय समय पर एटा, बमनोई, कर्णवास, रामघाट आदि विभिन्न स्थानों पर श्रीस्वामीजी के दर्शन किये थे। उनके दर्शनों से मुझे जो लाभ हुआ उसका मैं तीन प्रसंगों का उल्लेख करके वर्णन करता हूँ।

प्रथम प्रसंग

प्रायः देखा जाता है कि महात्मा लोग सभी प्रकार की बातें सब लोगों के सामने किया करते हैं। किन्तु श्रीस्वामी जी कहा करते थे कि जो व्यक्ति जिस योग्य हो उसके साथ वैसी ही बातें करनी चाहिये। वे सार्वजनिक रूप से आध्यात्मिक विषय की चर्चा करने को कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे। एक बार मैंने उनसे एक आध्यात्मिक प्रश्न किया था। तब उन्होंने यही कहा था कि व्यक्तिगत प्रश्न सामूहिक रूप से नहीं करना चाहिये। तुम एकान्त में मुझसे यह प्रश्न करना। तब मैं उसका उत्तर दूँगा। इस प्रकार के प्रश्नोत्तर सामूहिक रूप से करने पर किसी को कोई लाभ नहीं होता।

मेरे जीवन पर इसका कोई ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैंने भी भविष्य में एकान्त में ही आध्यात्मिक विषय की चर्चा करने का निश्चय कर लिया। तबसे मैं इस बात का ध्यान रखता हूँ कि जो लोग इस प्रकार की बातें नहीं समझते उनके सामने ऐसी बातें भी नहीं करता।

द्वितीय प्रसंग

एक बार जब मैं कर्णवास में उनसे मिला तो मैंने उनसे एकान्त में यह प्रश्न किया–"मेरा मन संकल्प–विकल्प से शून्य हो गया है और उसमें एक प्रकार की घबड़ाहट तथा अशान्ति सी उठती रहती है। उसके कारण ऐसा लगता है कि मुझे पुनः पूर्वाश्रम (गृहस्थाश्रम) में लौट जाना चाहिये, क्योंकि पहले मेरे चित्त में जो प्रसन्नता और भाव रहते थे अब लुप्त–से हो गये हैं।" इस पर श्रीस्वामीजी ने मुझसे कहा, "तुम्हारा चित्त अब अपने कारण प्रकृति में लीन हो रहा है। यदि तुम इन कठिनाइयों को सहते रहोगे तो तुम्हें समाधि प्राप्त हो जायगी। यह अवस्था गुरु का आश्रय न लेने और मनोवृत्ति को भगवान् में समर्पित न करने के कारण ही आती है। इस अवस्था में ऐसी कठिनाई आना स्वाभाविक है। यदि तुम इसे सहन करते रहोगे तो आगे का मार्ग स्वयं सुगम हो जायगा। इसके सिवा यदि प्रणव जप किया जाय तो उससे भी यह कठिनाई दूर हो सकती है। ऋषियों ने इसी स्थिति को 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' कहा है।"

स्वामीजी के इस उपदेश से मुझे बहुत दृढ़ता मिली और मैं उस परिस्थिति का सामना करता रहा। अब मुझे ऐसा लगता है कि मैं उस कठिनाई को पार कर चुका हूँ और मेरा मार्ग सुगम हो गया है। इस उपदेश के लिये मैं श्री महाराजजी का सदा ही ऋणी रहूँगा।

तृतीय प्रसंग

एक बार श्रीस्वामीजी महाराज एटा पधारे थे और श्री मक्खनलाल केला डिप्टी कलक्टर के यहाँ ठहरे थे। उस समय मैं और स्वामी ब्रह्मानन्दजी दर्शनाचार्य उनसे मिलने गये थे। स्वामी

ब्रह्मानन्दजी ने उनसे कुछ वेदान्त–विषयक प्रश्न किये थे। तथा हम दोनों ही ने प्रार्थना की थी कि आप हमारे आश्रमवासियों को भी कुछ उपदेश करने की कृपा करें। तब उन्होंने कहा कि मैं आश्रम पर आऊँगा अवश्य। हमने तीन दिन तक उनकी प्रतीक्षा की। हमें संदेह होने लगा कि श्रीस्वामीजी अपने वचनों का पालन करेंगे या नहीं। परन्तु चौथे दिन सायंकाल ५ बजे वे अपने भक्तवृन्द के साथ पधारे और प्रवचन देकर सभी आश्रमवासियों को कृतार्थ किया। फिर वे पूर्व की ओर चले गये। उनके आगमन को आश्रमवासियों ने बड़ा सौभाग्य माना। वे अवकाश न मिलने पर भी अपने वचनों का पालन करते थे।



बाबा श्रीराममोहनशरणजी

प्रथम दर्शन

पं० श्रीशोभारामजी मेरे शिक्षक और मित्र थे। उन्होंने मेरे हृदय में यह लालसा उत्पन्न कर दी थी कि बालक ध्रुव के समान मैं भी एकान्त जंगल में जाकर भगवद्भजन करते हुए प्रभु के साक्षात् दर्शन प्राप्त करूँ। वे स्वयं भी उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिये जा रहे थे। उनके साथ जाकर भजन करने की मेरी उत्कट इच्छा थी। किन्तु पिताजी से मुझे जाने की आज्ञा न मिली। क्या करता। मन मसोसकर रह गया।

किन्तु मेरे हृदय में जो आग लगी थी वह शान्त न हुई। मैंने सोचा, मैं पैदल ही जंगल का रास्ता क्यों न लूँ। बस, घर से एक लोटा, धोती, सुखसागरकी पुस्तक और भगवान् श्रीकृष्णका चित्र लेकर निकल पड़ा। जयपुर से चलकर मैं अलवर राज्य के घोर कानन में श्रीनारायणीदेवी के झरने पर पहुँच गया। वहाँ का सुन्दर दृश्य देखकर मैंने वहीं रहकर भजन करने का निश्चय कर लिया। मैंने संकल्प किया कि जब तक भगवान् दर्शन न देंगे मैं यहाँ से नहीं उठूँगा। रातभर जागकर मैं भगवान् की प्रतीक्षा करता रहा। बीच–बीच में नींद के झोंके मुझे इस लोक से उठाकर स्वप्नलोक में ले जाते थे। प्रातः काल मैं विचार ही रहा था कि अब तो जब तक भगवान् न आवें मैं

यहाँ से टलूँगा नही कि इतने ही में चार–पाँच आदमियों के साथ बड़े भैया मोटर लेकर आ गये और मुझे पकड़कर घर ले आये।

परन्तु पिताजी मुझसे नाराज न हुए। उल्टे प्रसन्न होकर बोले, "पं० शोभाराम के परम श्रद्धेय श्री उड़िया बाबाजी आजकल सहता में हैं, तुम जाकर उनका दर्शन कर सकते हो।" बस, मैं रेल द्वारा सहता के लिये चल दिया। रायभा स्टेशनपर उतरकर अपना थोड़ा–सा सामान लिये सहता की ओर चला। गाँव के बाहर एक अत्यन्त सुसज्जित बगीचा दिखायी दिया। उसमें कुछ काषाय वस्त्राधारी महात्माओं के दर्शन हुए। मैं समझ गया कि इसी में महाराजजी ठहरे हुए हैं। मैं बिना किसी से पूछे बगीचे के सिंह द्वारा से भीतर चला गया और एक पेड़ के नीचे अपना सामान रख कर आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने पर मैंने जो दृश्य देखा वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी घटना थी। जीवन की कितनी ही घटनायें सहसा प्रज्वलित हुई, अग्नि के समान आयीं और कुछ समय पश्चात् राखकी ढेरी के समान अपनी क्षीण स्मृति छोड़कर चली गयीं। परन्तु यह एक ऐसी अग्नि थी जिसकी ज्वाला समय के साथ बढ़ती ही गयी। मैंने देखा, एक दिव्यमूर्ति काष्ठासन (चौकी) पर विराजमान है। लोग उनकी आरती कर रहे हैं। उनके दिव्य विग्रह से जो प्रच्छन्न रश्मियाँ निकलती थीं। वे वहाँ के सम्पूर्ण वातावरण को व्याप्त करके मानव हृदय को बेसुध कर उसमें अभूतपूर्व चेतना का संचार कर रही थीं। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि इनसे मेरा चिरकालिक सम्बन्ध है, ये मेरे अत्यन्त समीपी स्वजन हैं। मेरा हृदय द्रवीभूत होकर मानो उन्हीं में मिला जा रहा था। मैं श्वास–श्वास में उन्हीं का अनुभव कर रहा था। मुझे मानों पक्षाघात हो गया हो, चरणस्पर्श या प्रणाम करने की भी मुझे सुधि न रही। मैं कब तक वहाँ खड़ा रहा और कब वहाँ से गया– इसकी याद नहीं थी।

प्रायः तीन बजे कथाकी घंटी बजी। बगीचे में सब लोग वृक्षों की छाया तले, बैठे थे, श्रीमहाराजजी चौकीपर विराजमान थे। मधुर–मधुर ध्वनि से स्वर ताल के साथ श्रीरामचरितमानस का गान हो रहा था। वायुमण्डल एक अद्‌भुत प्रभाव से व्याप्त था। सबका अपना–अपना व्यक्तित्व मानो गाढ़ निद्रा में पड़ गया था। सभी पर श्रीमहाराजजी के गौरवपूर्ण दिव्य व्यक्तित्व का आधिपत्य था। उनके मुखों से भी मानों वे बोल रहे थे। मानस के नायक का स्थान भी मानों उन्हीं ने ग्रहण कर लिया था। पाठ समाप्त हुआ। एक दम पवित्र नीरवता छा गयी। सबका हृदय गम्भीर शान्त आनन्द में गोते लगाने लगा।

सत्संग समाप्त हुआ। श्रीमहाराजजी उठे तथा उनके साथ और सब लोग भी खड़े हो गये। मैं भी उठा परन्तु यह क्या, उन्होंने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया। उस संस्पर्श की झनझनाहट से मैं बेसुध होता जा रहा था। वे मुझे उस उद्यान के एक पार्श्व में ले गये। पीछे आने वालों को उन्होंने रोक दिया। एक रौसपर बैठकर मुझसे बिना कोई परिचय पूछे इस प्रकार बातें करने लगे मानों मेरे चिरपरिचित हों। उनके पहले वाक्य में ही कितनी आत्मीयता और सहानुभूति थी ? वे बोले, "अरे तेरी आँखें लाल हो रही हैं ?" रेल यात्रा में धूलि पड़ने के कारण मेरी आँखें लाल हो गयी थीं। फिर पूछा, "तेरे जीवन का ध्येय क्या है ?" मैंने कहा, "भगवद्दर्शन।" आपने तत्काल मुझे साधन बताया, सान्त्वना दी और हृदय में विश्वास स्थापित कर दिया कि अवश्य दर्शन होगा। इसलिये नहीं कि मैं साधन करने में सफल होऊँगा, बल्कि इसलिये कि जिसने मेरा हाथ पकड़ा है वह सर्वसमर्थ है। मुझे प्रतीत हुआ कि उन्होंने मेरी झोली में अपने को भी डाल दिया है।

चिम्मन पर कृपा

यदि कोई पाप से श्रीमहाराजजी का निरीक्षण करता तो उसे आश्चर्य होता था कि इनमें किस प्रकार इतने विरोधी भावों का समावेश है। उनमें जो भाव भी दिखायी देता वह इतना पूर्ण और स्वाभाविक होता था कि मानो उसके उद्‌गमस्थान वे ही थे। प्रकृति उनके सामने आते ही मानों लज्जा से सिर नीचा कर लेती थी। जब प्रातः काल सत्संग के लिये उनका द्वार खुलता था तो उस समय की उनकी उन्मादित मुद्रा बड़ी ही अनूठी होती थी। उनके अर्धोन्मीलित नेत्र एक क्षण को खुलकर जब मानो दृश्य का भार सहन न कर सकने के कारण झँप जाते तो उनका वहाँ बैठनेवालों पर बड़ा संक्रामक प्रभाव पड़ता था। ऐसा कोई पुरुष देखने में नहीं आता था। जिसकी संकुचित वृत्तियाँ उनके समीप पहुँचने पर दब न गयी हों और उसमें दैवी गुणों का विकास न हुआ हो। उनके पास पहुँचने पर ऐसा अनुभव होता था कि मैं कितना पतित और सत्य के सुनहले रास्ते से कितना दूर हूँ। लोग पश्चात्तापपूर्वक कातर होकर रुदन करते और उनके पास से नवजीवन की आशा एवं ज्ञानका प्रकाश लेकर लाटते थे।

एक समय की बात है, श्रीमहाराजजी रामघाट के उस पार थे। श्रीगंगाजी की रजतकान्त रेणुका में सत्संग हो रहा था। श्रीमहाराजजी की सन्निधि के दिव्य प्रभाव से सभी के हृदय शान्ति और आनन्द में गोते लगा रहे थे। पीछे की ओर चिम्मन नाम का एक भंगी बैठा था। वह नियम से गंगास्नान करने के लिये आया करता था। समाज और वेद से बहिष्कृत चिम्मन को वहाँ बैठ कर एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति हुई। वह गाँव जाना भूल गया और उसे अपनी तनिक सुधि न रही। उसकी आँखें खुलीं तो देखा कि श्रीमहाराजजी खड़े

हुए उसे करुणापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं और कह रहे हैं—बेटा ! गंगास्नान करने के लिये आया है ? भोजन यहीं कर लेना।"

वह बेचारा प्रेम की उस अभूतपूर्व वर्षा को सहन न कर सका। संकोच–मिश्रित आनन्द से उसका रोम–रोम उत्तेजित हो उठा। बाह्य ज्ञान होने पर उसने भूमि पर लोटकर प्रणाम किया और सदा के लिये उनका शरणागत हो गया। अब उसकी आँखों में दूसरा ही नशा भरा था। वह गाँव, घर और परिवार सब भूल गया उसने सुना कि कल श्रीमहाराजजी रामघाट जायेंगे। रात्रिको नींद उसकी आँखों से गायब हो गयी। रातभर वह डेरे के चारों ओर परिक्रमा लगाता रहा। तीन बजे के लगभग उसने अपनी झाड़ू उठायी और वह मतवाला होकर रास्ता बुहारते हुए रामघाट को चल दिया। कभी गन्तव्य स्थान पर पहुँचने की धुन में जल्दी–जल्दी झाड़ू लगाता था और कभी उस करुणामयी मूर्ति का ध्यान आ जाने से स्तब्ध एवं निष्क्रिय हो जाता था। इस विह्वल अवस्था में ही वह कुटियापर पहुँच गया। वहाँ बाग के कोने को उसने झाड़ू लगाकर परिष्कृत किया।

भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तद्वारा परिष्कृत मार्ग से कुटिया की ओर चले। मार्ग में सराहना करते जाते थे कि देखो, कोई झाड़ू लगा गया है। श्रीमहाराजजी प्रायः इतने तेज चलते थे कि साथ के लोगों को दौड़ना पड़ता था। किन्तु इस समय भक्तों के साथ भगवच्चर्चा करते धीरे–धीरे चल रहे थे, मानों अपने भक्त की सेवा–का एक–एक कण आस्वादन कर रहे हों।

चिम्मन का श्रीमहाराजजी के प्रति बड़ा गूढ़ प्रेम था। श्रीमहाराजजी एकान्त में उसके पास चले जाते थे। और वह भूमिष्ठ होकर आपको साष्टाँग प्रणाम करता था और आप उसके सिर पर अपना चरण रख

देते थे, जिसकी छाया में उसे अद्‌भुत आनन्द का अनुभव होता था। आप कहते, बेटा 'घर नहीं जायगा ?'' वह बोलता, आपको छोड़कर मेरा कौन सा घर है ? आप कहते, ''बेटा ! वे भी तो मेरे ही हैं।'' चिम्मनने दो काम अपना लिये थे। अँधेरे में उठकर झाड़ू लगाना और दिन निकलने पर झाड़ियों में बैठकर भजन करना। यदि भोजन के समय वह न आता तो श्रीमहाराजजी कहते, ''देखो, चिम्मन कहीं गंगाजी में तो नहीं डूब गया ?'' तब लोग उसे ढूँढ़कर लाते और भोजन कराते थे। श्रीमहाराजजी सभी प्राणियों का इतना ध्यान रखते थे जैसे पक्षी अपने अण्डों का रखता है। एकबार आश्रम में कढ़ी बनी थी। चिम्मन को वह नहीं मिली और समाप्त हो गयी। श्रीमहाराजजी जब अन्य भक्तों के यहाँ भोग लगाने गये तो उनसे कहा, ''चिम्मन को आज कढ़ी नहीं मिली।'' दैवयोग से वहाँ भी कढ़ी बनी थी। अतः आपने बहिनजी के हाथ वहाँ से चिम्मन के लिये कढ़ी भिजवायी।'' चिम्मन प्रायः तीस–पैंतीस वर्ष श्रीमहाराजजी की सेवा में रहा। श्रीवृन्दावन के आश्रम में ही वह बीमार पड़ा और श्रीमहाराजजी का ध्यान करते हुए वृन्दावन में ही उसने अपना नश्वर देह त्यागकर अनन्त जीवन में प्रवेश किया।

एक डाकू का उद्धार

रामघाट की बात है, गर्मियों के दिन थे। श्रीमहाराजजी बागवाली कुटी के आगे चबूतरे पर बैठे थे। देखनेवालों को प्रतीत होता था कि उनके मुखमण्डल से जो किरणें निकल रही हैं वे करोड़ों चन्द्रमाओं से भी शीतल एवं अमृतवर्षिणी हैं। उनसे वह सम्पूर्ण वन्यप्रदेश व्याप्त था।

ऐसे सुहावने समय में उधर से एक घोर हिंसक दस्युराज (डाकुओं का सरदार) निकला। सरकारे ने इसे पकड़ने के लिये दस हजार रुपये पारितोषक की घोषणा की हुई थी। जब वह श्रीमहाराजजी

के पास पहुँचा तो झिझक के कारण एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। अपनी बन्दूक, जो उसकी प्राणसंगिनी थी, उसने पेड़ के सहारे रख दी और खाली हाथ श्रीमहाराजजी के पास जाकर बैठ गया वहाँ वह मन्त्रमुग्ध की भाँति बहुत देर बैठा रहा। श्रीमहाराजजी का हृदय उसकी इस दग्ध और जर्जर दशा को देखकर द्रवीभूत हो गया। वे समाधिशिखर से मानवता के धरातल पर उतरे और उस क्रूर हिंसक की ओर दयादृष्टि से देख कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या बात है ?" उसने दीनता से कहा, "यों ही दर्शन करने चला आया था।" थोड़ी देर बाद वह फिर बोला, "महाराज ! डाका डालने के लिये जा रहा हूँ।" श्रीमहाराजजी बोले, "सो, मैं क्या करूँ ?" फिर बोले एक बात मानेगा ? उसने कहा, "कहिये, महाराज !" श्रीमहाराजजी बोले, "देख, स्त्रियों को मत छूना।" उसने कहा, "महाराज ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ स्त्रियों को हाथ नहीं लगाऊँगा।" यह कहकर उसने दण्डवत् की और चला गया।

उसने एक जमींदार के यहाँ डाका डाला। उसे लूटा और सब माल–मता लेकर चल दिया। जब गाँव से प्रायः दो मील दूर निकल गया तो उसने पीछे मुड़कर देखा कि उसके साथी उस जमींदार की लड़की को उसके पलंगसहित उठाये ला रहे हैं। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह श्रीमहाराजजी के सम्मुख बैठा है और वे उससे कह रहे हैं, "देख, स्त्रियों की बेइज्जती मत करना।" उसने तुरन्त मानों नींद से जगकर कहा, "तुम लोंगों ने यह क्या किया, इसे क्यों ले आये ?" साथियों ने कहा, 'बात क्या है ? ले आये।" वह बोला इसे वापिस करना होगा।" साथी बोले, "अब वहाँ जाने से हम सब मारे जायेंगे। सारा गाँव इकट्ठा हो गया होगा।" अब वह स्वयं आगे बढ़ा और बोला, "मैं आगे चलता हूँ, तुम पीछे आ जाओ।" सब उसके पीछे हो लिये। वे गाँव में पहुँचकर लड़की को पलंग सहित छोड़कर सकुशल लौट आये।

अपने डेरे पर आने पर उस दस्युराज के मन में पश्चात्ताप का तूफान उठने लगा। उसने विचार किया, "यह कैसा घोर काम है, लोग तड़फते हैं और हम उनकी छाती पर चढ़कर उनका धन छीनते हैं। हमारे साथी स्त्रियों की बेइज्जती करते हैं। मुर्दों के बने महल क्या कभी दुर्गन्ध से मुक्त हो सकते हैं?' इस प्रकार के विचार उठकर उसके हृदय को छेदने लगे। वह बेचैनी से इधर–उधर घूमने लगा। दस्युजीवन के सारे दृश्य उसके नेत्रों के सामने नाचने लगे। उसी समय उसके मानस चक्षुओं के सामने एक परम अलौकिक शान्तिमय दृश्य आ गया। उसने देखा कि श्रीमहाराजजी अर्धोन्मीलित नेत्रों से शान्तमुद्रा में बैठे हैं, उनके रोम–रोम से आत्मीयता एवं प्रेम की किरणें निकल रही हैं और उसका सिर उनके चरणों पर झुका हुआ है। सिर से उसने उनके परम मंगलमय कोमल चरण–कमलों के दिव्य स्पर्श का अनुभव किया। अपने को उनकी छत्रछाया में देखकर वह निर्भय हो गया और उसी क्षण से सदा के लिये उसके जीवन का पथ परिवर्तित हो गया।

अद्भुत स्नेह

श्रीमहाराजजी स्नेह की मूर्ति थे नर–नारी, बाल–वृद्ध, पशु पक्षी सभी के लिये वे अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम–कलश उड़ेल देते थे। भोले बालकों में आप उनसे भी छोटे बन जाते थे। इससे उन्हें ऐसा विश्वास हो जाता था। कि हम इनसे जो चाहें वह करा सकते हैं। रामघाट में एक बालक ने आपका कटिवस्त्र पकड़ लिया और बोला, "बाबा! तुम बड़े झूठे हो। मेरे शंकरजी के लिये घड़ियाल मँगाने को कहा था, पर अभी तक नहीं मँगाया। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा।" आप उसको अनुनय–विनय करके मनाने लगे, "बेटा! जरूर मँगा दूँगा।' बालहठ ही जो ठहरा। वह मचल गया–"मैं नहीं छोड़ूँगा, तुम बहुत झूठे हो।" समय बीत रहा था,

पर आप बँधे खड़े हैं। कितने ही लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर आप एक नन्हें से कोमल हृदय को तोड़कर कैसे जा सकते थे? आपका हृदय तो उस बालक के हृदय के साथ एक हो रहा था।

इसी प्रकार आप गाय को देखते तो उसकी पीठ पर लोट जाते। वह भी चुपचाप खड़ी प्रेम में डूबकर समाधिस्थ हो जाती। लोग कहते, "महाराज! यह मार देगी।' तो आप कहते, "क्यों मारेगी, मैं इसे इतना प्यार करता हूँ।" सूअर को देखकर आप कहते, "अरे! तुझे कोई प्यार नहीं करता।" आपकी करुणा दृष्टि पड़ते ही वह भी खड़ा हो जाता, मानों अपने परम सुहृद के प्रेम का मूक शब्दों में उत्तर दे रहा है।

एकबार आपने बिहारी से एक कुत्ते को हटाने के लिये कहा। उसने उसके एक कंकड़ी मार दी। वह पें पें करके भागा। आपने बिहारी से कहा, "जा, इसके लिये रोटी ला।" तथा आपने भागकर उसके समीप जा उसे छाती से लगा लिया और कहा, "मैंने ही तुझे चोट पहुँचाई है, इसमें मेरा ही अपराध है।" उस दिन से वह कुत्ता बराबर श्रीमहाराजजी के पास आकर लोट जाता था।

अनूठी उदारता

श्री महाराजजी के पास जितने भी मनुष्य आते थे उनमें प्रत्येक को यह प्रतीत होता था कि वे सबसे अधिक कृपा मुझ पर ही करते हैं। बात भी ऐसी ही थी: क्योंकि उनका हृदय चोर, निन्दक और हिंसकों के लिये भी उतना ही खुला हुआ था जितना साधु, प्रशंसक और प्रेमियों के लिये। उनके दरबार में सभी प्रकार के लोग आते थे। कोई भगवत्प्रेमी होते थे तो कोई विषय–लम्पट। किन्तु वे सभी के लिये समान थे। उनकी उदारता देखकर कितने ही लोलुप प्राणी अपनी विकृत मनोवृत्ति के कारण चोरी करने लगे। कोई दुशाला, बढ़िया वस्त्र या प्रसाद आता तो वे आँख

बचाकर उठा ले जाते। कभी–कभी श्रीमहाराजजी यह सब देख भी लेते, तथापि उनसे कुछ न कहकर मुँह फेर लेते, मानों उन्हें कुछ पता ही नहीं है। कोई गेहूँ पिसवाने के लिये जाता तो उसमें से कुछ गेहूँ बेच कर दूध पी लेता, एक रुपये का सामान लाता तो चार रुपये का बता देता। यह सब देखकर भी आप एक अबोध बालक की भाँति अपने को ठगाते रहते थे। लोग शिकायत करते कि महाराज अमुक व्यक्ति बड़ा चोर और बदमाश आदमी है, उसे आश्रम से निकाल देना चाहिये। किन्तु आप यह सब सुनकर भी केवल हँस देते। अथवा कभी–कभी शिकायत करनेवाले को प्रसन्न करने के लिये कह देते, "तुम ठीक कहते हो, कल से इसे रोटी नहीं दूँगा। पर जब रोटी देने का समय आता तो उसे सबसे पहले बड़े प्रेम से रोटी देते। यदि कोई कहता कि महाराज ! आप इसे निकाल क्यों नहीं देते ? तो कहते कि यदि भगवान् इसे अपनी सृष्टि में से निकाल दें तो मैं भी निकाल दूँगा।

एक बार एक कौठारी एक मैंले कपड़े में प्रायः तीन पाव घी लपेटा हुआ लाया और बोला, "महाराजजी ! रसोईया बड़ा चोर है। देखिये, उसने यह घी नाली में छिपा रखा था।" श्रीमहाराज जी ने कहा, 'बेटा ! इसे वहीं रख आ, उसे मालूम होगा तो वह दुखी होगा।"

पक्षी जिस प्रकार अपने अण्डों को सेता रहता है उसी प्रकार श्रीमहाराजजी सबका मन रखते थे। इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता था। जब अपराधी श्रीमहाराजजी की ऐसी उदारता और अनुकम्पा देखते तो अपनी कृति पर दृष्टि पड़ने से उनका हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगता था। वह कातर होकर रोने लगता था और अपना अपराध स्वीकार कर लेता था।

एक बार दो आश्रमवासियों में आपस में झगड़ा हो रहा था। उनमें से एक ने दूसरे का लोटा ले लिया था। जिसका लोटा था वह कहता था कि इसे माँजकर दो और देनेवाला कहता था कि तुम स्वयं माँज लो, मैं नहीं माँजूँगा। दोनों में गाली–गलौज होने लगी और मार–पीट की नौबत आ गयी। श्रीमहाराजजी ने उन्हें झगड़ा करते देख लिया। आप बोले, "लाओ बेटा! लोटा मैं माँज दूँ।" यह सुनते ही वे लज्जित हुए, मानों उन पर हजारों घड़े पानी पड़ गया। दोनों ही की आँखों में आँसू आ गये और लज्जा से उनके सिर नीचे हो गये।

श्रीमहाराजजी के पास अनेकों नर–नारी आते रहते थे, उनमें से कोई–कोई आपका पूजन भी करते थे तथा आश्रम में भगवन्नाम–कीर्तन भी होता था। एक बार एक व्यक्ति इन सब बातों की निन्दा करने लगा। उसकी बातें कुछ भक्तगणों को बुरी लगीं। वे श्रीमहाराजजी से बोले, "हम इस दुष्ट को पीटेंगे।" तब आप बोले, "देखो बेटा! वह तो मैं ही हूँ। यदि तुम उससे कुछ कहोगे तो मुझे बहुत दुःख होगा।" दूसरे दिन चोखेलाल के हृदय में स्वयं ऐसी प्रेरणा हुई कि वह आपके पास आकर चरणों में पड़कर क्षमा याचना करने लगा।

ऐसी थी आपकी अद्भुत उदारता। आज कितने ही वर्ष बीत जाने पर भी हृदयपट के सामने वे घटनायें प्रत्यक्षवत् विद्यमान हैं और आशा है कि भविष्य में भी वे इस जीवनयात्रा में हमारा पथप्रदर्शन करती रहेंगी।



ब्रह्मचारी श्रीआनन्दजी, वृन्दावन

प्रथम परिचय

बहुत दिनों की बात है। मैं नरवर विद्यालय गया हुआ था। वहाँ विद्यालय के संस्थापक बालब्रह्मचारी पं० श्री जीवनदत्तजी के मुख से सबसे पहले मैंने पूज्य बाबा की प्रशंसा सुनी। उन्होंने कहा कि श्रीउड़िया बाबाजी योगी हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मैंने उन्हें स्वयं पाँच—छः घण्टेतक एक आसन से बैठे देखा है। उन दिनों बाबा नरवर में थे नहीं, कहीं अन्यत्र विचर रहे थे। अतः उनके दर्शन तो न कर सका परन्तु श्रीपण्डितजी के मुख से उनकी प्रशंसा सुनकर चित्त में उनके दर्शनों की लालसा अवश्य जाग्रत हो गयी।

उसके पश्चात् मैंने भेरिया में श्रीअच्युत मुनिजी के दर्शन किये। फिर श्रीहरिबाबाजी से समागम हुआ और उन्हीं के साथ व्रज में भ्रमण करता रहा। उन्हीं दिनों अकस्मात् मथुरा के श्रीद्वारकाधीशजी के मन्दिर में बाबा के दर्शन हो गये। वहाँ से हम तीनों ही श्री वृन्दावन चले आये। श्रावण का महीना था। श्रीवृन्दावन में इन दिनों हिंडोलों और रासदर्शन का अद्भुत आनन्द रहता है। हम तीनों भी टिकारीवाले मन्दिर में रासलीला देखने के लिये जाते थे। और एक मास्टर भक्त की व्यवस्था के अनुसार रात को स्कूल में शयन करते थे। उन दिनों बाबा या हरिबाबाजी की सेवा में कोई भक्त नहीं रहता था। पीछे हाथरस और बाँध से कुछ भक्त आ गये थे। बाबा उस समय विरक्त परमहंसों की चर्या से रहते थे। जहाँ कुछ मिला खा लिया और जहाँ रुचि हुई सो गये।

इष्ट निर्णय

एक बार बाबा बाँध पर श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी के उत्सव में पधारे। उस समय मैं देखता था कि प्रोग्राम से अतिरिक्त समय में भी बाबा के पास सत्संगियों की भीड़ लगी रहती थी। जिसका जैसा अधिकार होता उसका उसीके अनुसार समाधान कर देते थे। श्रीमद्भगवद्गीता में जो स्थितप्रज्ञ के लक्षण लिखे हैं वे सब बाबा में पाये जाते थे। उन दिनों मैं गीता का पाठ करता था और समझता था कि श्रीगीताजी की कृपा से ही मुझे बाबा के दर्शन हुए हैं।

बाँध से आप हाथरस पधारे। वहाँ गणेशीलालजी के यहाँ गायत्री यज्ञ था। चलते समय आपने मुझे भी वहाँ आने की आज्ञा दी। मैं हाथरस गया। एक दिन मैंने बाबा से प्रार्थना की कि मेरी सभी आचार्य और अवतारों में श्रद्धा है। ऐसी दशा में मैं किन्हें अपना इष्ट मानूँ? इसका उत्तर स्वाभाविक ही उनके मुख से यह निकला कि इसका निर्णय तुम्हें स्वप्न में हो जायगा। उसके एक दो दिन पश्चात् एकादशी की रात्रि में सोने के समय अचानक बाबा मेरे पास आये। उनके हाथ में धनिये के चार लड्डू थे। उस समय मुझे विशेष भूख भी नहीं थी, तथापि प्रसाद बुद्धि से मैंने श्रद्धापूर्वक उन्हें पा लिया। फिर जब मैं सोया तो ऐसा विलक्षण स्वप्न देखा कि उसमें इष्टका स्पष्ट निर्णय हो गया। उसका सारांश यही था कि श्रीवृन्दावन की महिमा काशी से भी बढ़कर है। अतः पूज्य बाबा की कृपा से नियमित रूप से वृन्दावन में उन्हींके आश्रम में रहने लगा और ऐसी आशा है कि अब शेष जीवन भी वहीं व्यतीत होगा।

बाबा में शंकरभावना

पूज्य बाबा में मेरी शंकर भावना थी। इस सम्बन्ध में मेरा एक विशेष अनुभव था। एक बार श्रीहरदेवसहाय बैरिस्टर के साथ मैं

गंगोत्तरी की यात्रा को गया था। वहाँ से जैसे स्वाभाविक ही सब भक्तजन श्रीरामेश्वर पर चढ़ाने के लिये गंगाजल लाते हैं उसी प्रकार मैं भी लाया। नीचे आने पर सुना कि बाबा इन दिनों कर्णवास में हैं। अतः वहाँ जाने के लिये मैं राजघाट स्टेशन पर उतर गया। वहाँ रात्रि को स्वप्न में मैंने देखा कि अत्यन्त विशाल नन्दीश्वर सहित एक सुन्दर शिवलिंग है। इस स्वप्न से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और ऐसा अनुभव हुआ कि बाबा में और श्रीरामेश्वरजी में अभेद है। प्रातः काल उठकर स्टेशन से कर्णवास आया। जब गंगास्नान करके लौट रहा था तो एक गुजराती परमहंस संत के दर्शन हुए। उन्हें मैंने स्वप्न की घटना सुनायी। वे बोले, " तुम्हें श्रीरामेश्वरजी के दर्शन हुए हैं। मैं रामेश्वर गया हूँ वहाँ के नन्दीश्वर बहुत विशाल हैं।"

इसके पश्चात् मैं बाबा के पास गया और गंगाजल उनके सम्मुख रख दिया। मन में ऐसा संकल्प हुआ कि यदि रामेश्वर जाता तो वहाँ शिवलिंग पर ही जल चढ़ाया जाता। यहाँ तो रामेश्वरजी प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। ये स्वयं मुख द्वारा इसे पान करें तो मुझे निश्चय हो जायगा कि श्रीरामेश्वरजी ने ही मेरा जल स्वीकार किया है। बाबा बोले, " क्या बात है ?" मैंने कहा, "गंगोतरी का जल है। शिवजी पर चढ़ाने के लिये लाया हूँ।" बोले, "चढ़ा दो।" मैं मौन रहा। तब वे तत्काल गंगाजली उठाकर पान कर गये। उस समय जो लोग वहाँ बैठे थे वे भी आनन्दमग्न हो गये। तब से मैं प्रत्येक गुरुपूर्णिमा और शिवरात्रिपर बाबा के चरणों में अवश्य पहुंचता था। शिवरात्रिको बाबा रात्रिभर एक आसन से बैठे रहते थे और हम लोग उन्हीं के प्रभाव से सुगमता पूर्वक रात्रि को जागरण कर लेते थे।

एक बार मैं बाँध पर था। इस बात का निश्चय नहीं था कि बाबा की गुरुपूर्णिमा कहाँ होगी। चित्त में व्याकुलता हुई की कहाँ जाऊँ। उसी दिन रात्रि को स्वप्न में बाबा ने आज्ञा दी कि गुरुपूर्णिमा वृन्दावन में होगी। मैं वृन्दावन पहुँचा और चतुर्दशी के सायंकाल में न जाने कहाँ से बाबा आश्रम में पहुँच गये। खूब उत्सव मनाया गया। मिष्ठान और फलों का ढेर लग गया। प्रातः काल से सायंकाल तक जो आता वहीं प्रेमपूर्वक प्रसाद पाता था। मैंने गुरुपूर्णिमा तो कुछ अन्य महापुरुषों की भी देखी है, परन्तु बाबाकी सी कहीं नहीं देखी।

प्रतिष्ठा-महोत्सव का चमत्कार

वृन्दावन में श्रीकृष्णाश्रम का प्रथम प्रतिष्ठा–महोत्सव हो रहा था। आश्रम के मुख्य द्वार के सामने एक मण्डप में निरन्तर अखण्ड कीर्तन होता था। उस दिन श्रीनित्यानन्द–जयन्ती भी थी। प्रातः काल चार बजे समष्टि संकीर्तन हो रहा था। उसमें श्री बाबा एवं श्रीहरिबाबा आदि सभी महापुरुष पधारे हुए थे। उसी समय एक आर्यसमाजी सज्जन बाबा का दर्शन करने आये। कीर्तन में तो उनकी कुछ भी श्रद्धा नहीं थी, तथापि बाबा का दर्शन करना था इसलिये वे कीर्तनमण्डप में चले गये। वहाँ उन्होने देखा कि एक दिव्य तेजोमय मण्डल के भीतर श्रीबाबा और श्रीहरिबाबाजी दोनों हाथ उठाकर परस्पर मिलकर कीर्तन कर रहे हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष में श्रीबाबा कभी कीर्तन करते नहीं थे, केवल ध्यानस्थ हुए खड़े रहते थे। यह अद्‌भुत दृश्य देखकर वे सज्जन आनन्दमग्न हो गये। पीछे जगदीश नामक एक विद्यार्थी को उन्होंने यह बात सुनायी और उसने मुझे यह सब बतलाया। मैंने जगदीश से कहा कि यह तो उन पर भगवान् की अहैतुकी कृपा हुई

है। इस प्रकार उन्होंने इन दोनों महापुरुषों के श्रीगौर निताई रूप में दर्शन किये हैं।

श्री बाबा का कीर्तन के प्रति अगाध प्रेम था। एक बार बाँध पर प्रातः कालीन प्रभाती कीर्तन हो रहा था।' श्रीनिताई गौरांग गदाधर' की तुमुल ध्वनि आकाश को गुँजा रही थी। उस समय बाबा को ऐसा दिखायी दिया कि श्रीहरिबाबाजी तो घंटा,बजाते हुए कीर्तन कर रहे हैं और उनके सामने श्रीमन्महाप्रभु जी दोनों भुजाये उठायें नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करते हुए साथ–साथ घूम रहे हैं। इसी प्रकार एक बार बाँध के उत्सव में फाल्गुन शु० ११ के दिन जब प्रायः सभी को विशेष भावावेश और चमत्कार हुए थे पूज्य बाबा ने श्रीमुख से कहा था कि आज मुझे भी ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कीर्तन कर रहा है, खड़े–खडे समाधि सी हो रही थी।

कुछ दैवी चमत्कार

(१)

श्री बाबा को वृन्दावनधाम के प्रधान ठाकुर श्रीबाँकेबिहारी जी से अगाध प्रेम था। वे जब कभी वृन्दावन पधारते थे अथवा वृन्दावन से कहीं बाहर जाते थे। तब श्री बाँकेबिहारजी के दर्शन अवश्य करते थे। बाबा के अनेक भक्त तो श्रीबाँकेबिहारी जी और बाबा में अभेद ही मानते थे। उस दिन मार्ग शीर्ष शुक्ला पञ्चमी थी, जिसे बिहार पञ्चमी भी कहते हैं। इसी दिन श्रीबाँकेबिहारी जी का प्राकट्य हुआ था। मेरे मन में संकल्प हुआ कि आज भिक्षा करने के लिये नहीं जाऊँगा। आज जो स्वाभाविक रूप से स्वयं ही मुझसे प्रसाद पाने को कहेगा समझूँगा उसी पर श्रीबिहारीजी की विशेष कृपा है। तत्काल ही बाबा मेरी कुटिया में आये और बोले, "आनन्द ! आज बिहारीजी का भोग लगा है, प्रसाद यहीं पाना।"

(२)

दिल्ली के श्रीधूमीमलजी भगवान् के अनन्य भक्त थे। उन्हें तो भगवान् तथा देवी–देवताओं के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। एक बार निधिवन के पास उन्हें श्रीबाँकेबिहारजी ने दर्शन दिया और कहा कि उड़ियाबाबाजी विचित्र सन्त हैं, उनका पीछा मत छोड़ना।

ऐसी ही एक घटना श्रीकृष्णाश्रम की है। तब तक वर्तमान कथामण्डप बना नहीं था। इसलिये तीसरे पहर की कथा प्रधानद्वार के ऊपर होती थी। कथा से पूर्व नित्य नियम के अनुसार श्रीरामायणजी का गान प्रारम्भ हुआ। उन दिनों श्रीधूमीमलजी मेरे पास ठहरे हुए थे। बोले, "रामायण की कथा सुनआऊँ।" वे ज्यों ही कथा में पहुँचे उन्होंने देखा कि श्रीहनुमान्जी आकाश मार्ग से पधारे हैं और हाथ जोड़कर रामायणजी के सम्मुख बैठ गये हैं। उनके नत्रों से अश्रु प्रवाह चल रहा है और ज्योंही रामायण का गायन समाप्त हुआ कि वे जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। वहाँ से लौटकर धूमीमलजी ने यह प्रसंग मुझे सुनाया। मुझे सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। तब मैंने सबसे कहा कि रामायणजी के गान में श्रीहनुमानजी पधारते हैं, इसीलिये बड़े प्रेम से गायन किया करो। इससे सबको इस बात में भी विश्वास हो गया कि शास्त्र का यह मत सर्वथा सत्य है कि जहाँ भी रामायणजी की कथा होती है वहाँ श्रीहनुमानजी अवश्य पधारते हैं।

(३)

एक बार बाबा अनूपशहर में सेठ रामशंकर मेहता के बाग में ठहरे हुए थे। सायंकाल में वहाँ दर्शन करने गया। अनेकों सत्संगियों और दर्शनार्थियों की भीड़ लगी हुई थी। उसी समय एक भक्त ने मिट्टी के बर्तन में सवा सेर मक्खन बड़े लाकर बाबा

के आगे रख दिये। पात्र वस्त्र से ढका हुआ था। सत्संग समाप्ति के पश्चात् जब सब लोग धीरे–धीरे जाने लगे। तो बाबा उसमें से प्रत्येक को एक–एक मक्खन बड़ा देने लगे। मुझे भी दिया। मैं उसके बिल्कुल समीप बैठा हुआ था। यह सब देख रहा था और अनुभव कर रहा था कि इस समय यदि सारा शहर आ जाय तो भी बाबा इस छोटे–से पात्र से ही सबकी पूर्ति कर देंगे। अन्त में बोले, "अब तो कोई नहीं रहा है ? यह कहकर ऊपर का वस्त्र हटाया तो उसमें केवल एक मक्खन बड़ा और थोड़ा–सा टुकड़ा बचा हुआ था। उसमें से कणमात्र उन्होंने अपने मुख में डाल लिया। वह दृश्य ठीक वैसा ही था जैसा कि युधिष्ठिर को भगवान् सूर्य द्वारा दिये हुए पात्रों में से जब तक द्रौपदी स्वयं न खा ले वह सबकी तृप्ति कर देता था।

बाबा के गुणों का कहाँ तक वर्णन करें। उनमें अनन्त गुण निवास करते थे।

श्रीपूर्णानन्दाष्टक

एक बार ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी बाबा के पास आये हुए थे। उन्होंने पाँच मिनट में ही पूर्णानन्दाष्टक रचकर प्रकट किया। उसे मैंने पढ़कर सबको सुनाया। सहता आदि ग्रामों में जब बाबा ने मुझे और वासुदेव ब्रह्मचारी को संकीर्तन का प्रचार करने के लिये भेजा था तो वहाँ सभी भक्त नित्यप्रति उस पूर्णानन्दाष्टक का पाठ करते थे। उस समय उन्हें ऐसा अनुभव होता था कि मानों बाबा प्रत्यक्ष पधारकर इसे सुन रहे हैं। यह अष्टक इस प्रकार है–

पावनं परमं पुण्यं पद्मत्रमिव स्थितम् ।
पूर्णप्रेमप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। १।।
सुखदं शान्तिदं सौम्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सारासारप्रवक्तारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। २।।
भजनं भाजनं भव्यं भक्तिभावप्रदायकम् ।
भक्तानन्दकरं भाव्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। ३।।
मानदं मोहकं मुख्यं मानातीतं मनोहरम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। ४ ।।
तार्किकं तर्कहन्तारं तर्कातीतं तु तुष्टिदम् ।
त्यक्तदण्डं तुरीयं तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। ५ ।।
परात्परं परमातीतं पालकं परमेश्वरम् ।
पुरीनिवासिनं पुण्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।। ६ ।।
लौकिकं वैदिकं शास्त्रं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
भक्तान् शिक्षयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।।७।।
लेह्यं चोष्यं च पेयं तु चर्वणं भोजनं सदा ।
भुंक्ते भोजयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ।।८।।
पुण्यं पापहरं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिभावतः ।
न तु स भयमाप्नोति न दुःखं न पराभवम् ।।



श्रीलक्ष्मीनाराणजी वैद्य, वृन्दावन

प्रथम दर्शन और साधनोपदेश

मुझे कल्याण पढ़ने का व्यसन था। उसमें श्रीमहाराजजी के उपदेश प्रकाशित हुआ करते थे। मैं उन्हें बड़े चाव से पढ़ता था। उन्हींने मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। एक दिन मेरे एक प्रेमी ने मुझसे कहा कि एक बहुत बड़े योगिराज आये हुए हैं। मैं बड़ी उत्सुकता से दर्शनों के लिये गया। आप फिरोजाबाद में उस स्थान में पधारे थे जहाँ कि रामलीला होती है। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि ये श्रीउड़िया बाबाजी महाराज हैं। फिरोजाबाद के अनेकों गण्य–मान्य पुरुष प्रश्न कर रहे थे। और आप बड़ी प्रसन्न मुद्रा में सुमधुर वाणी से उनका समाधान कर रहे थे। मैंने दर्शन किया, किन्तु अभी मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि ये वे ही श्री उड़िया बाबाजी हैं जिनके उपदेश में 'कल्याण' में पढ़ता रहा हूँ अथवा कोई दूसरे हैं ? इतने ही में आपके मुखारविन्द से यह श्लोक निकला–

''हरिरेव जगज्जगदेव हरिः हरितो जगतो न हि भिन्न तनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति।।''

बस, इस श्लोक ने मेरा संशय निवृत्त कर दिया। 'कल्याण' में आपके उपदेशों में मैंने यह श्लोक पढ़ा था। अतः मुझे निश्चय

हो गया कि ये वे ही उड़िया बाबाजी हैं, जिनके दर्शनों की चिरकाल से मेरे मन में अभिलाषा थी।

कुछ देर आपके दर्शन और उपदेशों का सुखास्वादन कर मैं अपने निवास स्थान को लौट आया। परन्तु मेरा मन तो उधर खिंच चुका था। बार–बार आपके पास ही जाने की प्रेरणा हो रही । मध्याह्न में पुनः गया। मुझे आया देखकर आप बोले–"तुम फिर क्यों चले आये यहाँ क्या करते हो?" मैंने कहा "महाराजजी! मैं यहाँ आयुर्वेदिक चिकित्सा का कार्य करता हूँ। मुझसे रहा नहीं गया, इसलिये चला आया।" आपने मुझे अपने समीप बैठा लिया। मुझे ऐसा अनुभव होता था मानों ये मेरे अत्यन्त निकटवर्ती हैं और मुझ पर इनका अपार प्रेम है। फिर आप बोले, तुम्हें कोई सन्देह तो नहीं है?"

मैंने कहा–महाराजजी! मुझे निराकार–साकार उपासना के सम्बन्ध में कुछ संदेह है। इसका क्या कारण है कि कुछ लोग निराकार की उपासना करते हैं और कुछ साकार की?

महाराजजी बोले–मनुष्य दो प्रकार के होते हैं–हृदयप्रधान और मस्तिष्कप्रधान। जो हृदयप्रधान हैं उनमें श्रद्धाभक्ति और भाव की प्रधानता होती है, इसलिये वे साकारोपासक होते हैं। और जो मस्तिष्कप्रधान होते हैं उनमें विचारशक्ति की प्रधानता होती है, अतः वे निर्गुण–निराकार की उपासना करते हैं।

श्री महाराजजी ने यह बात मुझे इतनी उत्तमता से समझायी कि मेरे हृदयं का संदेह सर्वथा निवृत्त हो गया तथा मेरे मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि सर्वदा आप ही के साथ रहूँ। मैं निवासस्थान पर लौट आया और रात्रि को फिर पहुँचा। तब आप मेरा हाथ पकड़कर एकान्त में ले गये और कहने लगे, "अरे भैया! तुम यह

क्या कर रहे हो ? सांसारिक प्रपञ्च से निकलने का शीघ्र ही प्रयत्न करो।" इसके पश्चात् आपने मुझे द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश किया और निम्नाङ्कित श्लोक के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने की आज्ञा दी—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।।

बैठने के लिये आपने सिद्धासन सर्वोत्तम बताया और रामायण तथा भागवत् का स्वाध्याय करने की अनुमति दी।

मैंने उस समय अनुभव किया कि ये सदा से मेरे हैं और मैं सदा से इनका हूँ। सिद्धासन के अभ्यास और द्वादशाक्षर मन्त्र के जपने मुझे संसार से उपराम कर दिया। मेरे चित्त की ऐसी दशा हो गयी कि श्रीमहाराजजी के बिना मुझे चैन नहीं पड़ता और न किसी काम–काज में ही मेरा मन लगता था। मैंने श्रीमहाराजजी से अपनी अवस्था निवेदन की। तब वे बोले, "एकमात्र भगवद्भजन ही सार है संसार में कोई सार नहीं है, छोड़ो इसे।"

बस, तबसे मैं सर्वदा श्रीमहाराजजी के ही साथ रहने लगा। उनके श्रीचरणों में निरन्तर मेरी श्रद्धा–भक्ति बढ़ती गयी। मुझे साँसारिक प्रवृत्ति से निकालकर उन्होंने भगवद्भजन में लगा दिया यह उनकी महती कृपा है। इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है ? उनके विषय में मेरा तो यही अनुभव है कि ऐसा महापुरुष 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात् न कभी हुआ न होगा।

श्रीव्रजमोहनजी, वृन्दावन

प्रथम दर्शन

मैं स्कूल में पढ़ रहा था। एक दिन सहपाठियों में चर्चा चली कि महात्मा के पास रहने वाले भक्तों के जीवन में यदि सुधार न हुआ तो महात्मा कैसा? यह प्रसंग छिड़ा था एक महात्मा के शिष्यों के जीवन में कोई सदाचार न देखकर।

एक सहपाठी ने कहा, "वैसे तो बहुत–से महात्मा हैं, परन्तु गंगा जी के किनारे एक उड़िया बाबा हैं, उनमें बड़े–बड़े चमत्कार सुने जाते हैं। एक मनुष्य बड़ा ही दुर्व्यसनी और गिरे हुए स्वभाव का था। वह सौभाग्य से उनके दर्शन करने गया। उनकी कृपा से प्रथम दर्शन में ही उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सबसे अलग रह कर भजन करने लगा और अब वह अपने को सबसे दीन–हीन मानता है, सभी को हाथ जोड़ता है तथा जहाँ वे रहते हैं वहाँ दूर–दूर तक झाड़ू लगाया करता है।" यह सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैंने पूछा, "वे महात्मा कहाँ रहते हैं?" सहपाठी ने बताया कि यों तो वे विचरते रहते हैं, परन्तु रामघाट या कर्णवास में प्रायः आया करते हैं। बस, उसी समय श्रीमहाराजजी का दर्शन करने के लिये मन में संकल्प उठा।

मेरे गाँव (कसीसों) में एक अघोरी महात्मा रहते थे। उनमें मेरी अच्छी श्रद्धा थी। वे बड़े विरक्त थे। सबसे अलग रहते और उत्तम से उत्तम वस्तुओं को भी दूर फेंक देते थे। उनमें कुछ सिद्धियाँ भी थीं। एक क्षण ऊँची परमार्थ की बात करते, दूसरे क्षण में अपने को छिपाने के लिये

पागलों–की सी बातें बनाने लगते। मैं उनसे भगवान् का दर्शन कराने के लिये प्रार्थना किया करता था और वे बड़े प्रेम से मुझे समझाया करते थे। एक दिन जब मैंने उनसे भगवान् का दर्शन कराने के लिये कहा तो वे डंडा लेकर मेरे पीछे दौड़े। बोले, "ठहर, तू बिना साधन किये भगवान् का दर्शन करना चाहता है।" मैं वहाँ से भागा और घर चला आया। बात कुछ समझ में न आयी कि ये महात्मा ऐसे क्यों बन गये। परन्तु इसके बाद भी उन पर मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई। एक दिन वे महात्मा कहीं बाहर जाने के लिये तैयार हुए और मुझसे बोले, "बेटा ! साधुओं के पीछे ऐसे नहीं पड़ा करते। भगवान् के दर्शन ऐसे सुगम थोड़े ही हैं। जा, आज से आठवें दिन तुझे गुरु मिल जायँगे। उनकी शरण ग्रहण करने से तेरा कल्याण होगा।" यह कहकर वे महात्मा कहीं चले गये।

मैं बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। ठीक आठवाँ दिन आया। गुरुप्राप्ति की आशा से मेरा मन आज अत्यंत प्रसन्न था। प्रातः कालीन नित्यक्रिया से निवृत्त हो मैं गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित साधनपथ नाम की पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें यह प्रसंग था–'साधकों को सद्गुरु की प्राप्ति के लिये बाहर ढूँढ़–खोज नहीं करनी चाहिये। महात्मा और ईश्वर योग्य अधिकारी को स्यवं ही कृपा करके मिलते हैं।' इसके पश्चात्, जब मैं श्रीसूरदासजी का प्रसिद्ध पद मो सम कौन कुटिल खल कामी' पढ़ रहा था, मेरा मित्र रामप्रसाद आया और कहने लगा, "गोतम (किसीसों से एक मील दूरी पर स्थित गाँव) में एक प्रसिद्ध महात्मा उड़ियाबाबाजी आये हैं। चलो, दर्शन कर आवें।" मैं तो इसी प्रतीक्षा में था ही तुरन्त चल पड़ा। गोमत की सरस्वती नामकी एक भक्त माता आग्रह करके श्रीमहाराजजी को अपने यहाँ ले आयी थी।

मैंने जाकर दर्शन किया और प्रणाम करके एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। महाराजजी के रोम–रोम से शान्ति और वैराग्य टपकता था।

कुछ देर तक उनके दर्शन और सत्संग—श्रवण का सुअवसर मिला। मेरी श्रद्धा और प्रसन्नता का पार नहीं था। बहुत—से बड़े—बड़े आदमी श्रीमहाराजजी की सेवा में आये हुए थे। और अपने अपने यहाँ चलने के लिये प्रार्थना कर रहे थे। इससे स्वाभाविक ही मेरे मन में आया कि जिनके इतने बड़े—बड़े आदमी भक्त हैं वे मुझसे क्या स्नेह करेंगे? इतने में भिक्षा का समय हो गया। सब लोग जहाँ—तहाँ चले गये। मैं भी वहाँ से उठकर अन्यत्र जा बैठा।

अब, महाराजजी ने एक व्यक्ति से कहा, "इस वृक्ष के नीचे जो लड़का बैठा था वह भूखा है, उसे भोजन के लिये बुला लाओ।" उसने पूछा, "कौन, कसीसों का ब्रजमोहन?" बोले, "हाँ, हाँ।" यद्यपि अभी तक उनसे मेरे नाम और गाँव की कोई चर्चा हुई नहीं थी। वह आदमी आकर मुझे लिवा ले गया। महाराजजी ने कहा, "तुम भोजन कर लो।" मैं शर्माया, जैसा कि प्रायः गृहस्थों को साधुओं अथवा अन्य अपिरिचित गृहस्थों के घरों में भोजन का प्रसंग उपस्थित होने पर होता है। अतः मैंने श्रीमहाराजजी से 'मैंने भोजन कर लिया है' यह झूठ बोलकर बचने का प्रयत्न किया। पर वे तो सब कुछ जानते थे। तुरन्त बोले, "अरे! झूँठ बोलता है। चल, भोजन कर ले।" मैंने फिर भी अपनी बात दुहराई। तब 'अच्छा, इसे छोड़ दे' ऐसा कहकर श्रीमहाराजजी चले गये।

शाम को मैंने पूछा, "महाराजजी! आप कल रहेंगे? मैं कल भी दर्शन करने के लिये आना चाहता हूँ।" आप बोले, पता नहीं। चले आना। रहें तो दर्शन कर जाना, न रहें तो लौट जाना। थोड़ी दूर तो है।" उसके बाद मैं घर लौट आया।



कसीसों में

मैंने गाँव में कुछ लोगों को आपस में बात करते सुना—उड़िया बाबा बहुत बड़े महात्मा हैं, हमारा इतना सौभाग्य कहाँ जो वे यहाँ आवें? उनके सामने मेरे मुख से निकल गया, "तुम लोग चिन्ता मत करो, उन्हें मैं यहाँ ले आऊँगा।" मैंने कह तो दिया, परन्तु स्वयं संदेह में था।

दूसरे दिन मैं फिर गोमत पहुँचा। दिन भर दर्शन और सत्संग का लाभ मिला। उन दिनों महाराजजी का नियम था कि रात्रि में वे किसी को अपने पास नहीं रहने देते थे। सायंकाल में सबको सुना दिया गया। "अब सब लोग अपने—अपने घरों को जाओ।' मुझसे भी कहा, परन्तु महाराजजी ने कह दिया, "यह नहीं जायगा। यहीं रहेगा।" इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। रात्रि में श्रीमहाराजजी की चरण सेवा का अवसर मिला। आपने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?" मैंने कहा, "व्रजमोहन।" आप बोले, "तू सच्चा व्रजमोहन है या झूँठा?" मैंने उत्तर दिया, "महाराजजी! सच्चे व्रजमोहन तो ठाकुरजी हैं।" आप बोले, "नहीं, मैं कहता हूँ, तू सच्चा व्रजमोहन होगा।" इसे मैंने उनकी कृपा मानी। इसी समय आपने मुझे भगवान श्रीकृष्ण के ध्यान और द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश किया तथा श्रीरामचरितमानस का पाठ करने की आज्ञा दी।

रात्रि में मैंने अपने गाँव चलने के लिये प्रार्थना की। आप बोले, भैया! वैसे तो खुरजा जाने का निश्चय हो चुका था। परन्तु मैं वहाँ जाऊँगा नहीं। यहाँ से मेरा विचार वृन्दावन जाने का है।" मैंने कहा, "महाराजजी! वृन्दावन के मार्ग से तो केवल चार फर्लांग की दूरी पर मेरा गाँव है। वहाँ होते हुए चले जाइयेगा। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरे दिन श्रीमहाराजजी मेरे गाँव पधारे। हमने शिवमन्दिर पर कीर्तन कराया। गाँव के लोग बड़े प्रसन्न हुए और मेरी प्रशंसा करने लगे। वास्तव में इसमें उनकी अहैतु की कृपा के सिवा मेरी प्रशंसा की तो कोई बात नहीं थी। रात्रि में देर तक श्रीमहाराजजी की चरण सेवा करता रहा। इस समय मैंने एक चमत्कार देखा। रात्रि में दो बजे जिस आसन पर आप बैठे थे उससे उठकर बोले, "चल" मैं साथ चल दिया। कुछ फर्लांग तक साथ–साथ गया। फिर अकस्मात् आप अन्तर्धान हो गये। मैं बड़ा चकित हुआ कि महाराजजी कहाँ गये, अन्य कोई उपाय न देखकर मैं लौट आया। वहाँ देखा कि आप पूर्ववत् अपने आसन पर विराजमान हैं। इसे मैंने श्रीमहाराजजी की कोई सिद्धि माना और इससे उनमें मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

अब मुझे श्रीमहाराजजी के बिना चैन नहीं पड़ता था। दूसरे दिन जब आप चलने को तैयार हुए तो कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने झूँठ का आश्रय लिया और उनसे कहा, " महाराजजी ! ब्रज के चोमा गाँव में मेरे मामा रहते हैं। उनके यहाँ से पत्र आया है, मुझे वहाँ जाना है। यदि आज्ञा हो तो वृन्दावन तक आपके साथ चलूँ ?" मैंने सोचा कि पहले वृन्दावन तक तो चलूँ, आगे देखा जायेगा। यद्यपि श्रीमहाराजजी सब जानते थे, फिर भी मेरी हार्दिक इच्छा जानकर उन्होंने अनुमति दे दी और मैं साथ चलने के लिये तैयार हो गया।

अब तो गाँव वाले घबड़ाये और घर के लोग रोने लगे। उन्होंने समझा कि अब यह साधु हो जायगा। महाराजजी ने सबको आश्वासन दिया कि तुम लोग घबड़ाओ मत। मैं इसे साधु नहीं होने दूँगा और पन्द्रह दिन में यहाँ भेज दूँगा। तब सबको धैर्य हुआ और मैं श्रीमहाराजजी के साथ वृन्दावन को चल पड़ा।

श्रीवृन्दावन की ओर

इस यात्रा में श्रीमहाराजजी की सेवा में बम्बई वाले ब्रह्मचारी कृष्णानन्दजी भी थे। अभी वे श्वेत वस्त्र धारण करते थे। मार्ग में एक गाँव आया। उसके पास एक जगह हम ठहर गये। महाराजजी ने कहा कि देखो, किसी को मेरा नाम मत बताना। नहीं तो भीड़ हो जायगी। वहाँ गाँव का एक आदमी आया और ऐसा अनुमान करके कि ये कोई अच्छे महात्मा हैं घर से दूध और पराँठे बनवा कर ले आया। थोड़ी देर में श्रीमहाराजजी शौच से निवृत्त होने के लिये चले गये। तब उसने बम्बई वालों से पूछा, "महाराज ! ये कौन महात्मा हैं ?" अब बम्बईवाले बड़े चक्कर में पड़े। इधर महाराजजीने तो मना कर रखा था और उधर वह श्रद्धालु भक्त पूछ रहा था। अन्त में उन्होंने यह सोचकर कि इसके पराँठें तो हमने खा ही लिये हैं, अब यह भी अपना सौभाग्य समझे, उन्होंने पूछा, " "तुमने किसी बड़े महात्मा का नाम सुना है ?" वह बोला, " हाँ, उड़िया बाबा का नाम तो सुन रखा है।" इस पर बम्बई वाले बोले, 'बस ये वे ही हैं।"

थोड़ी देर में महाराजजी आ गये। वे स्वयं ही कहने लगे, "भैया तुमने नाम बता दिया। अब यहाँ भीड़ लग जायगी। अच्छा, एक काम करो। आज रात को इसे गाँव में मत जाने दो।" ऐसा ही किया गया। उसके गाँव में न जाने से किसी को भी पता न चला।

वहाँ से चलकर श्रीमहाराजजी माँट पहुँचे और एक घर पर भिक्षाके लिये 'नारायण हरि' किया। उस घर की बुढ़िया भोजन कर रही थी। वह आवाज सुनते ही बोली, "बाबा, ! अभी हाल लाऊँ" और तुरन्त उठकर हाथ लहेंगा से पोंछ आधी रोटी लायी। महाराजजी ने उस रोटी को बहुत प्रशंसा करते हुए पाया और बोले, "भैया ! ब्रजवासियों

में अब भी ब्रज भाव है।" इसके पश्चात् महाराजजी वृन्दावन पहुँचे और भजनाश्रम में ठहरे। यहाँ भी आप सब से छिपकर रहते थे और चुपचाप श्रीबाँकेबिहारीजी, श्रीराधावल्लभजी और आनन्दीबाई आदि मन्दिरों में दर्शन कर आते थे। मैं तो पहली बार ही वृन्दावन आया था। मुझे ऐसा भान होता था मानो श्रीबाँकेबिहारी जी और श्रीराघावल्लभजी प्रत्यक्ष श्वास ले रहे हैं वृन्दावन में सात–आठ दिन ही ठहर पाये थे कि खुरजा के कुछ लोग पता लगते आ गये। महाराजजी बोले, "भागो यहाँ से।" फिर गोरे दाऊ होते हुए आप मथुरा पहुँचे। यहाँ आपने मुझसे एकादशी व्रत रखवाया और मुझे यज्ञोपवीत धारण कराया। फिर गौके सहित भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र खरीदवाकर मुझे दिया और कहा कि इन्हीं का ध्यान किया करो।

पन्द्रह दिन पूरे होते ही आपने मुझे गाँव जाने की आज्ञा दी मैंने प्रार्थना की, महाराजजी! मुझे छोड़ियेगा नहीं।" आप बोले, बेटा! मुझे अपनाकर छोड़ना नहीं आता। और तेरी तो क्या ताकत है जो छोड़ दे। मुझे भजन करने वाले सदाचारी व्यक्ति बहुत प्रिय लगते हैं।" मैं चौमा होकर घर लौट आया। श्रीमहाराजजी की मुझे बहुत याद आतीं थी। घर में मन नहीं लगता था। एक वर्ष बाद खुरजा जाकर मैंने पुनः दर्शन किये। उसके पश्चात् अनूपशहर में दर्शन हुए। जब मैं अनूपशहर पहुँचा तो श्रीमहाराजजी, बोले, "मेंने तुम्हें परसों याद किया था।" अर्थात् जिस दिन श्रीमहराजजी ने मुझे स्मरण किया था उसी दिन मैं गाँव से चला था। यह उनकी आकर्षणशक्ति या संकल्प सिद्धि ही थी जो मुझे वहाँ खीच ले गयी थीं।

उनकी विशेष कृपा

प्रारम्भ के चार–पाँच वर्षों में श्रीमहाराजजी मुझे बड़े आदमियों के यहाँ नहीं खाने देते थे। किसी गरीब के घर भोजन करा देते थे। जिस दिन मुझसे कोई प्रमाद होता तुरन्त टोक देते। मैंने अनुभव किया कि उनसे मेरी किसी भी क्षणकी क्रिया छिपी नहीं रह सकती थी। यह बात उन्होंने मेरे मन में अच्छी तरह बैठा दी थी। मैं जब–जब उनसे मिलता तब–तब वे मेरी प्रत्येक साधना, स्थिति और स्वभाव के विषय में सूक्ष्म बातें खोलकर बतला देते थे। मैं उनमें परचित्ताभिज्ञान[1] सिद्धि को स्पष्ट अनुभव करता था। मुझसे जिस दिन भजन न होता वे स्पष्ट कह देते थे, "बेटा ! आज तुमने भजन नहीं किया।" परन्तु उनकी यह महिमा उन्हीं लोगों को अनुभव हुई जिन्हें उन्होंने अनुभव कराना चाहा : दूसरों को नहीं।

श्रीमहाराजजी प्रारम्भ से ही कहा करते थे। कि तू वृन्दावन का प्रेमी है, अतः वृन्दावन में ही रहेगा। यह उन दिनों की बात है जब वृन्दावन के प्रति मेरा आकर्षण भी नहीं था। जब मेरा चित्त उचटता आप तुरन्त कहते कि वृन्दावन चला जा। आगे चलकर उनकी यह बात सत्य हुई और वृन्दावन के प्रति मेरी श्रद्धा–प्रीति बढ़ गयी।

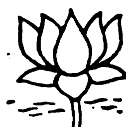
मेरा एक छोटा भाई था। उसका नाम था पुष्कर। वह बड़ा होनहार था। दिन भर काम करने के बाद भी वह रात के ग्यारह बजे तक भजन करता था। उस पर मेरा बड़ा अनुराग था। उसकी

---

१. दूसरों के चित्तकी बात जान लेने की शक्ति

मृत्यु हो गयी। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। इच्छा होती कि शरीर छोड़ दूँ। लोग बार–बार मुझे रोक लेते। भजन में बिलकुल मन नहीं लगता था। भगवद्दासजी ने मुझे झूसी भेजा। वहाँ श्रीमहाराजजी के दर्शन किये। फिर भी वहीं दशा। पन्द्रह दिन तक रोता रहा। अन्त में एक दिन श्रीमहाराजजी ने कहा, "हट !" उनके इस शब्द के उच्चारण में न जाने क्या शक्ति भरी थी कि उसी समय से मेरा सारा मोह विलीन हो गया। अब मैं अपने भाई को भाई नहीं अपना शत्रु समझने लगा, जिसने मेरे भजन में इतनी बाधा पहुँचाई।

श्री महाराजजी के उपदेश, सत्संग और कृपा से मुझे कितना लाभ हुआ–यह कैसे कहा जा सकता है? मेरा घोर संसारी जीवन था। स्वप्न में भी ऐसे जीवन की आशा नहीं थी। उनकी दया से ही आज श्रीधाम वृन्दावन का वास और श्रीप्रियाप्रीतम की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है।



बाबा श्रीजीयालालजी

(१)

अभी मुझे बाबा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। मैं लोगों के मुँह से सुनता था कि बाबा सिद्धकोटि के महापुरुष हैं और वे दूसरों के मन की बात जान लेते हैं। बारम्बार बाबा के गुणों की प्रशंसा सुनकर मेरे मन में उनके दर्शनों की उत्कण्ठा हुई। एक दिन मैंने महाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) से बाबा के दर्शनार्थ जाने के लिये आज्ञा माँगी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा दे दी। उन दिनों बाबा गंगातट पर कर्णवास में विराजमान थे। मैं भिरावटी से चला। रास्ते में चलते समय मेरे मन में बाबा के प्रति श्रद्धा–भक्ति के भाव बढ़ते जाते थे। और मैं सोचता जाता था कि आज मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मैं बाबा के दर्शन करूँगा। लोग कहते हैं कि वे अन्तर्यामी हैं। आज मुझे बेसनी लड्डू खाने की इच्छा है। जाने पर यदि वे मुझे खाने के लिये बेसनी लड्डू देंगे तो मैं समझूँगा कि वे सचमुच अन्तर्यामी हैं।

जिस समय मैं कर्णवास पहुँचा दिन के दो बज चुके थे। बाबा छत्तपर की कुटी में विश्राम कर रहे थे। ज्योंहि मैं जीने पर चढ़ा त्यों ही दण्डिस्वामी सियारामजी ने मुझे रोका। बोले, 'महाराजजी ! अभी विश्राम कर रहे हैं, नहीं मिलेंगे।" मैंने बाबा को सुनाने के उद्देश्य से ऊँची अवाज में कहा, " मैं बाबा का दर्शन करने के लिये आया हूँ। तुम बीच में क्यों रोकते हो ?" मेरी बात सुनकर बाबा स्वयं ही बाहर आ गये और बोले, "अरे भैया ! तू कहाँ से आया है।" मैंने प्रणाम किया और कहा, "बाबा ! मैं भिरावटी से आपके दर्शनों के लिये आया हूँ। मुझे महाराजजी

ने भेजा है। यह सुनकर बाबा बड़े प्रसन्न हुए और महाराजजी का कुशल क्षेम पूछा। फिर उन्होंने कहा, "सियाराम! तख्त के नीचे हाँडी रखी है, उसे लाओ तो।" सियाराम हाँडी ले आये। उसमें बेसनी लड्डू भरे थे। बाबा ने मुझसे कहा, "ले तू भूखा है। भोजन करले।" मैं भिक्षा कर चुका था, इसलिये प्रार्थना की, "बाबा मैं भिक्षा कर चुका हूँ।" बाबा फिर बोले, नहीं रे! तू भूखा है।" यह कहकर उन्होंने बहुत से लड्डू मेरे आगे परोस दिये। उनमें से मैंने कुछ खाये और शेष बाँध लिये।

दूसरे दिन जब मैं बाबा को प्रणाम करके भिरावटी जाने लगा तो उन्होंने रास्ते में खाने के लिये मुझे और लड्डू दिये। इस घटना से मुझे विश्वास हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं। इससे उनमें मेरी श्रद्धा बढ़ी।

(२)

इसके कुछ महीने पश्चात् मैंने एक विद्यार्थी से सुना कि बाबा आजकल नरवर पाठशाला में पधारे हैं। मैं उन दिनों फतहपुर में था। बाबा के दर्शनों की मुझे इच्छा हुई और मैं नरवर की ओर चल दिया। बीच में गंगाजी पड़ती थीं। नाव आदि कुछ भी नहीं। मैंने सोचा यदि राजघाट पुल से होकर जाता हूँ तो आने–जाने में दस मील का चक्कर लगेगा। और आज मुझे बाबा के दर्शन करके ही भोजन करना है। ऐसा सोचकर मैंने पटेरों का एक बोझ बाँधा और बाबा का स्मरण करके उसे गंगा में छोड़ दिया। उसी के सहारे मैंने गंगाजी को पार कर लिया। जब मैं बाबा के पास पहुँचा उस समय मेरे दाहिने हाथ में तो झोली और माला थी, अतः मेंने बायें हाथ से ही बाबा के ऊपर फूल चढ़ाये। उस समय मेरे मन में प्रेम का वेग आया कि मैं रोने लगा और मूर्च्छित होकर गिर गया।

जब मैं सावधान हुआ तो बाबा मुझसे बोले, "तू क्या भजन करता है? बाबा (श्रीहरिबाबाजी) से प्रेम कर तेरा कल्याण तो हो गया।" बाबा के मुख से ऐसे आशीर्वादात्मक वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए कलकत्तीवाले डाक्टर साहब बार–बार उनसे प्रार्थना करने लगे कि मेरे लिये भी ये ही वचन कह दीजिये। परन्तु बाबा ने यह कहकर टाल दिया कि यह तो बालक है, इसे बहला रहा हूँ इसके पश्चात् बाबा ने मुझे भोजन कराया और तीसरे पहर लौंग इलायची का टिकट देते हुए कहा, बेटा! जैसे आया है वैसे मत जाना। वहाँ बहुत जानवर हैं। राजघाट पुल से पार करके जाना।" यद्यपि मैंने बाबा को बेड़े द्वारा गंगाजी पार करने का वृत्तान्त सुनाया नहीं था और न सुनाने की कोई आवश्यकता ही थी, तथापि उन्होंने जान लिया।

बाबा के मना करने पर भी मैंने आलस्यवश यह सोचकर कि इतनी दूर कौन जाय, बेड़े से ही गंगाजी पार करने का निश्चय किया। किनारे पर पहुँचकर मैंने बेड़े को ठीक करके गंगाजी में छोड़ा, परन्तु वह भीग जाने के कारण डूब गया। यह सोचकर कि शायद पानी क़म होने के कारण डूब गया हो, मैंने उसे सीने के बराबर जल में ले जाकर छोड़ा। परन्तु वहाँ भी डूब गया। बार–बार प्रयत्न करने पर भी मैं सफल न हुआ। मानों उसने मुझे न ले जाने की शपथ खा ली हो। आखिर मैं निराश हो गया और बाबा की आज्ञा शिरोधार्य कर राजघाट के पुल से पार होकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा।

(३)

बाबा अतरौली के पास गड़ियावली में विराज रहे थे। श्रद्धालु भक्त क्रमशः एक–एक दिन अपने यहाँ भिक्षा कराते थे। श्रीभूदेव शर्मा के अनुरोध से ही बाबा वहाँ गये थे। उनकी इच्छा थी जिस दिन वहाँ से

प्रस्थान करें उस दिन की भिक्षा उन्हीं के यहाँ हो। एक दिन बाबा ने कहा, 'भूदेव ! तुम भी भिक्षा करा लो। अब मेरा मन यहाँ नही लग रहा है।" शर्माजी बोले, "हाँ महाराज ! कल परसों तक मैं भी भिक्षा करा लूँगा।" वे सोच रहे थे कि मेरे यहाँ भिक्षा किये बिना तो बाबा जायँगें नहीं अतः एक दो दिन के लिये और भिक्षा टाल दूँ। बाबा ने दुबारा कहा, "अब मेरा मन यहाँ से जाना चाहता है।" इससे लोगों को निश्चय हो गया कि अब बाबा यहाँ से जायँगे।

शाम को मुझे साथ लेकर आप एक मील तक टहलते चले गये और बोले, "देख आज तू अमुक पेड़ के नीचे सोना। आधी रात के पश्चात् मैं वहाँ आऊँगा। आज रात को यहाँ से चल देना है। किसी से भी कहना मत।" रात्रि में अनेकों भक्त बाबा को घेर कर सोये। कुछ लालटेन लिये इधर–उधर घूम भी रहे थे। फिर भी न जाने कैसे सबसे बचकर आधी रात के बाद आप बाहर निकल आये और मुझे साथ लेकर वहाँ से चल दिये। मैंने अपनी इच्छा से ही चेतन देवजी को संकेत कर दिया था, अतः वे भी साथ हो लिये। कई मील चले जाने पर सूर्योदय हुआ। स्नानादि के पश्चात् जब मध्याह्न हुआ तो बाबा हम दोनों को साथ लेकर भिक्षा के लिये गये। भिक्षा में मुझे और चेतनदेवजी को दो–दो तीन, तीन, रोटिया मिलीं और बाबा मोटी–मोटी दो रोटियाँ लाये थे। मुझसे बोले, "तू ज्यादा भूखा है, एक रोटी तू ले ले।" ऐसा कहकर एक रोटी मुझे दे दी। अब उनके पास केवल एक ही रह गयी। परन्तु उसे भी वे खा नहीं रहे थे। थोड़ी देर में उनका एक पूर्व परिचित भक्त आया। वह भी भूखा था। उसे उन्होंने वह बची हुई रोटी खिला दी।

तीसरे पहर मेरे मन में आया कि बाबा भूखे बैठे हैं और गर्म–गर्म हवा चल रही है, ऐसा न हो इन्हें लू लग जाय। यह सोचकर मैं कहीं से तीन–चार कच्चे आम ले आया। उन्हें भूनकर नमक मिलाकर पन्ना बनाया और बाबा

को पिला दिया। उस दिन वही बाबा का भोजन रहा। मेरा विश्वास है कि बाबा उस भक्त के आने की बात जान गये थे इसीलिये उन्होंने वह रोटी नहीं खायी। बाबा की ऐसी परदुःखकातरता देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गये।

(४)

वहाँ से चलकर ठीक अक्षय तृतीया के दिन बाबा वृन्दावन पहुँचे। श्रीबाँकेबिहारीजी और राधावल्लभजी के दर्शन किये और फिर चौमा पहुँच गये। वहाँ पीताम्बर पटवारीने सब सेवा की। वहाँ से सहार पहुँचे। उस गाँव में मीठा जल भरने के लिये पन्द्रह—बीस गोपियाँ गाँव से बाहर कुएँ पर आयी हुई थीं। वे बाबा को देखकर बोलीं, "अरे संन्यासी, रे संन्यासी! आ पानी पी जा।" बाबा कुछ न बोले चुप रास्ता चलते रहे। तब वे फिर बोलीं, "अरे निपूते। पानी न पीवे तो मत पी, नेक दर्शन तो दै जा।" बाबा उनकी ब्रज की बोली ठीक—ठीक न समझ सके, बोले, "ब्रज किशोर[1] ये क्या कह रही हैं?" चेतनदेवजी ने अपने हृदय के अनुसार भावुकता के स्वर में कहा, "महाराजजी! श्यामसुन्दर जब वन में गौएँ चराने जाते थे तो बड़ी बूढ़ी गोपियाँ तो बाहर आकर उनका दर्शन कर लेती थीं। परन्तु जो नवविवाहिता होतीं वे लोकलज्जा वश घर से बाहर नहीं निकल पाती थीं। उन्हें उस समय श्यामसुन्दर के दर्शन नहीं हो पाते थे। वे जब मीठा जल भरने के लिये गाँव से बाहर कुँए पर जाती थीं तब गौएँ चराते हुए श्यामसुन्दर को देख कर इसी प्रकार बुलाती थीं कि ओ श्यामसुन्दर! आओ, जल पी जाओ। पर वे भला सीधी तरह क्यों आने लगे। तब वे कहती थीं, अरे निपूते! जल नहीं पीता तो न सही, नेक दर्शन तो दे जा।" तब श्यामसुन्दर आते और जल पीते। साथ ही दो—दो मीठी चुटकियाँ लेकर उन गोपियों के मन और प्राणों को चुराते हुए चले जाते। इसीलिए उन्होंने

१. चेतनदेवजी का पूर्वाश्रम का नाम। बाबा उन्हें इसी नाम से पुरकारते।

यहाँ के कुओं के जल खारे कर दिये। तभी से यहाँ ऐसी चाल पड़ गयी है कि यहाँ गोपियाँ जब किसी महात्मा को जाते देखती हैं तो इसी प्रकार बुलाती हैं।''

यह उत्तर सुनकर बाबा बोले, ''तुम उनसे कह आओ कि हम तीन दिन नहर के किनारे ठहरेंगे।'' चेतनदेवजी ने जाकर उन्हें यह बात सुना दी। तीसरे पहर बहुत सी गोपियाँ साथ मिलकर गाती हुई वहाँ आयीं और अपनी–अपनी भिक्षा सामग्री रखकर लौट गयीं। छाछ, रोटी–दूध और दलिया का ढेर लग गया। बाबा के साथ हम दोनों ने वह प्रसाद पाया।

(५)

वहाँ तीन दिन ठहरकर बाबा करैला की झाड़ी में पहुँचे और बोले, ''देखो, कोई जानने न पावे, यहाँ हम कुछ दिन झाड़ी में निवास करेंगे।'' उस समय मैं चेतनदेव, वासुदेव, और व्रज मोहन आदि चार–पाँच व्यक्ति थे। हमने एक कच्चा कुआँ खोदा था। उसका जल बहुत ठंडा और मीठा था। वहाँ बाबा तेईस दिन रहे। एक दिन रात्रि में बाबा शयन कर रहे थे और चेतनदेव उनकी चरणसेवा में तत्पर थे। आधीरात के पीछे एक जंगली सूअर आया और चेतनदेवजी को सूँघकर चला गया बोला कुछ नहीं।

आस–पास के ग्रामवासी बड़ी श्रद्धापूर्वक बाबा को भिक्षा कराते थे। एक दिन वृन्दा यादव की स्त्री भिक्षा लेकर आयी और अपने हाथ से ही बाबा को खिलाने लगी। इतने ही में उसका पति भी आ गया। उसने देखा कि बाबा खाते जा रहे हैं। परन्तु उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। बात यह थी कि बाबा तो मिर्च खाते नहीं थे और उस भोजन में मिर्च थी अधिक। इसी से खाते समय उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

यह दृश्य देखते ही वृन्दा अपनी स्त्री से बोला, "अरी राँड़! तू यह क्या कर रही है तूने बाबा को बड़ा दुःख दिया।" बाबा ने उसे रोकते हुए कहा, " तू इससे कुछ मत कह। यह तो प्रेम से भोजन करा रही है। मुझे बड़ा आनन्द आ रहा है।" तब वह हाथ जोड़कर बाबा से कहने लगा, "बाबा! शाप मत दीजो। मैं वैसे ही निःसन्तान हूँ।" बाबा बोले, "तेरे सन्तान तो अवश्य होगी।" इसके पश्चात् वृन्दा के दो पुत्र और दो पुत्री चार संतानें हुईं। पहला पुत्र होने पर वृन्दा ने बधाई की मिठाई वृन्दावन लाकर बाबा को खिलायी थी और प्रार्थना की थी कि बाबा! घर चलो, आपके आशीर्वाद से बच्चा हुआ है। परन्तु बाबा ने यह कहकर टाल दिया कि अब तो जा, फिर कभी आयँगे।

(६)

कर्णवास की बात है, शिवरात्रि व्रत का दिन था। सभी लोग व्रती थे। श्रद्धालु भक्त बाबा को जल, फल फूल, बेर सेव, संतरा, आक के फूल और धतूरा आदि जिसे जो भाता था वही चढ़ा रहे थे। समष्टि पूजन हुआ। आरती होकर समाप्ति हुई। बाबा ने सभी को प्रसाद दिया। मुझे भी दिया। मुझे जो प्रसाद मिला उसमें अन्य फलों के साथ एक धूतरा भी था। मैंने और सब तो खा लिया, अब धतूरे की बारी आयी। मन डरा, न जाने क्या दशा होगी। भावुकता के आवेश में मैंने सोचा, 'मीराबाई ने प्रसाद समझकर जहर पी लिया, हम क्या एक धतूरे को नहीं खा सकते?' ऐसा विचार कर मैंने धतूरा खा लिया। थोड़ी ही देर में खुश्की बढ़ी कण्ठ सूख गया और पेट में बड़े जोर से ऐंठन होने लगी। व्याकुलता के मारे होश गुम होने लगे। मेरी दशा देखकर अमरसा वाले बलदेव ब्रह्मचारी, जो बाबा से सखाभाव रखते थे, बाबा के पास गये और बोले, "तुम न जाने क्या-क्या आक-धतूरा बटोरते रहते हो? जीयालालकी हालत

देखो तो।" बाबा तुरन्त आये और मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "कुछ नहीं होगा, चुपचाप सो जा।" इतना कहकर वे मुझे एक रेशमी वस्त्र ओढ़ाकर चले गये। मैं सो गया और जब प्रातः काल उठा तो सर्वथा स्वस्थ था।

(७)

एकबार गाँव में मैं सख्त बीमार था। बुखार के कारण तेरह–चौदह लंघन हो गये थे। कष्ट की अधिकता के कारण मैंने मन ही मन आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया। पर कहा किसी से कुछ भी नहीं। सुना था सफेद कन्नेर का अर्क पीने से मृत्यु हो जाती है। चुपके से मैंने अर्क तैयार किया और छिपाकर रख दिया। मन में निश्चय किया कि जानकी प्रसाद आदि के चले जाने पर इसे पीऊँगा।

रात्रि को स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया और बोले, 'बेटा! यों अकाल मृत्यु से नहीं मरा करते। रोग–शोक तो आते–जाते रहते हैं। घबड़ा मत, अच्छा हो जायगा। इस अर्कको फेंक दे। प्रातः काल जगने पर मेरा चित्त प्रसन्न और स्वस्थ था। उसके दो–तीन दिन बाद ही मेरा स्वास्थ ठीक हो गया और मैं बाबा के दर्शन करने चला गया।

बाबा इस तरह विकट अवसरों पर हम लोगों की रक्षा किया करते थे। उनकी कृपा तो अब भी वैसी ही है। परन्तु उसका अनुभव हम लोगों को बहुत कम हो पाता है। यह हमारा दुर्भाग्य है फिर भी वे हमें भुलाते नहीं। कितना अच्छा होता यदि हम उनकी महान् कृपा का अनुभव कर पाते। हित तो करना परन्तु जहाँ तक हो सके छिपे रहकर–यह उनकी कृपाका निराला ढंग था।



श्रीवासुदेवजी ब्रह्मचारी, वृन्दावन

पूज्य श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मैंने रामघाट में किया। इसके पश्चात् मैं जगन्नाथपुरी गया। वहाँ से लौटने पर मुझे ज्वर के साथ दस्त भी आने लगे। उस रुग्णावस्था में ही मैंने श्रीमहाराजजी के पास जाकर उनके दर्शन किये। जब वहाँ से चलने लगा तो बोले, "जाता कहाँ है ? यहीं रहो" मैंने निवेदन किया, "मुझे ज्वर और दस्त आते हैं, इसलिये जाना चाहता हूँ।" तब आपने एक फल देकर आज्ञा दे दी, 'अच्छा जा।" उस फल में न जाने क्या शक्ति भरी थी उससे पहले जहाँ मैं बड़ी कठिनाई से रास्ता चल पाता था। वहाँ उसे पाकर कूदता–फाँदता घर पहुँच गया।

एक बार दिवाली के अवसर पर मैं घर ही था। अकस्मात् मेरा श्वास बन्द हो गया और मुझे स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि श्रीमहाराजजी को कोई विशेष बात है। अतः मुझे उनके दर्शन करने की इच्छा होने लगी। विश्वम्भरप्रसादजी से मालूम हुआ कि फर्रुखाबाद से तार आया है– वहाँ श्रीमहाराजजी को ज्वर आ रहा है। मैं पैदल चल पड़ा। रास्तें में चार दिन लग गये। पाँचवें दिन जब मैं सरकार के समीप पहुँचने वाला था आप सुखराम से कह रहे थे–"भैया ! बासुदेव को रास्ता चलते–चलते पाँच दिन हो गये हैं, वह अभी तक नहीं पहुँचा।' इतने ही में मैं पहुँच गया। आप अब स्वस्थ हो चुके थे, अतः दर्शन करने पर मेरी चिन्ता दूर हो गयी और चित्त प्रसन्न हो गया।

वहाँ से हम तीन–चार सेवकों को साथ लेकर श्रीमहाराजजी शिवपुरी को चले। रास्ता चलते–चलते सायंकाल में मुझे भूख लग

आयी। मैंने यह बात आपसे भी कह दी। आप बोले, "भैया! साधु का काम रात्रि में भिक्षा करने का नहीं है, भजन करो।" उस दिन सड़क के सहारे एक झोंपड़ी में विश्राम हुआ। रात्रि के नौ बजे एक तेजस्वी महात्मा प्रसाद लेकर आए और सरकार को अर्पण किया। उसमें से किञ्चिन्मात्र आपने लेकर शेष सब हमको बाँट दिया। वहाँ से चलकर हम शिवपुरी पहुँचे। वहाँ मैं बीमार पड़ गया। और इतना शक्तिहीन हो गया कि उठकर सरकार के चरणस्पर्श भी नहीं कर सकता था। उसी अवस्था में मेरी इच्छा गंगास्नान करने की हुई। उठने का साहस किया, पर उठ न सका। इतने ही में सरकार आ गये और अपने करकमलों का आश्रय देकर उठाया। उनका हाथ लगते ही मेरे शरीर में न जाने कहाँ से शक्ति आ गयी और मैं बड़े उत्साह से जाकर गंगा–स्नान कर आया।

श्रीवृन्दावन के आश्रम का प्रतिष्ठा–महोत्सव करके श्रीमहाराजजी बाँध के उत्सव में चले गए। यहाँ उत्सव के पश्चात् अन्नादि बहुत सामग्री बच गयी थी। एक रात में चोर आए और उन्होंने कोठार से कुछ सामान निकाल लिया। मैं उस समय सो रहा था। स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और बोले, "बेटा! तू ऐसा सोता है। देख, चोर आ गए हैं।" इतना कहकर आप अन्तर्धान हो गए। मैं चौंककर बैठ गया। उन दिनों कुटिया के आगे जगमोहन में रातभर लालटेन जलती रहती थी। उधर बड़े दरवाजे के पास वाले कमरे का ताला तोड़कर चोरों ने ठाकुर साहब का बहुत सा सामान निकाल लिया था। मेरे उठने–बैठने की परछाई के कारण चोरों को जाग होने का संशय हो गया और वे जो कुछ पल्ले पड़ा उसी को लेकर चंपत हो गए। श्रीमहाराजजी की आज्ञा होते ही यदि

मैं सावधान होकर आश्रम में चारों ओर घूम–फिरकर देखने लगता तो अवश्य ही चोरों का या तो सारा ही सामान छोड़कर भागना पड़ता या वे पकड़े जाते। परन्तु उस समय मेरी बुद्धि ऐसी मलीन हो गयी कि मैं उनकी आज्ञा सुनकर भी फिर सो गया।

इसी प्रकार इस जीवन में श्रीमहाराजजी की अनेकों चमत्कारपूर्ण लीलायें देखी हैं। अब तो वे सब केवल स्मृतिमात्र रह गयी हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे अब भी पूर्ववत् हमारी देख–भाल करते हैं और समय–समय पर हमें सावधान करते रहते हैं।



श्रीबुद्धिसागरजी, वृन्दाबन

(१)

एक बार हरिद्वार में कुम्भ होने के कारण श्रीजयदयाल गोयंदका सत्संग कर्णवास में हुआ। एक दिन इस प्रसंग पर चर्चा चली कि विषयवासना कैसे दूर हो ? इस पर विभिन्न सत्संगियों ने अपने–अपने विचार प्रकट किये। अन्त में श्रीजयदयालजी ने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की, "आप भी इस विषय में कुछ कहिये।" महाराजजी ने कहा, "मैं क्या कहूँ ? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।" परन्तु जब पुनः प्रार्थना की गयी तो आप बोले–

"रामनाम जब सुमिरन लागा। कहत कबीर विषय सब भागा।।"

इस संक्षिप्त और सारगर्भित उत्तर को सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे, "आप तो कहते थे, मैं कुछ नहीं जानता। आपने तो सम्पूर्ण शास्त्रों का निचोड़ ही कह दिया।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी कुछ भक्तों के साथ हरिद्वार गंगा के किनारे–किनारे लौट रहे थे। एक स्थान पर विश्राम किया और सत्संग होने लगा। "भगवान् के दर्शन कैसे हों ? इस विषय पर श्रीमहाराजजी का प्रवचन हो रहा था। उसी समय माथे पर तिलक लगाये एक नवयुवक पण्डितजी आये और पूछने लगे, " महाराजजी ! मुझको भगवान् कब मिलेंगे ? महाराजजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "तुमको सात जन्म में भगवान् नहीं मिल सकते।"

पण्डितजी ने पूछा, "क्यों महाराजजी ?' महाराजजी ने स्पष्ट कह दिया, "परस्त्रीगामी को भगवान् कभी नहीं मिलते।"

सुनकर पण्डितजी अवाक् रह गये। जो महापुरुष दूसरों के गोपनीय प्रसंगों को भी जान लेने की सामर्थ्य रखता है उसकी बात को अस्वीकार करने की सामर्थ्य पण्डितजी में कहाँ थी ? परायी स्त्रियों से दूषित सम्बन्ध रखने वाले और साथ ही भगवान् के दर्शन चाहने वाले मनुष्यों को श्रीमहाराजजी के इस उत्तर से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

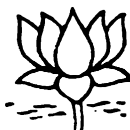
(३)

एकबार मैंने पूछा, "महाराजजी ! गुरु के पास शरीर से रहना चाहिये या मन से ?" आप बोले, "शरीर से रहना चाहिये, मन को किसने देखा है ?"

एक बार सत्संग के अन्त में आप यह कहते उठ गये थे- "वासना विसारि दे– यही बड़ी बात है।"

श्रीमहाराजजी सत्संग में ये दोहे प्रायः कहा करते थे–

'बालकपन से हरि भजे, जग से रहे उदास ।
तीरथ हू आसा करें, कब आवे हरिदास ।।
साधू ऐसा चाहिए, दुखे दुखावै नाहिं ।
फूल पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं ।।'



श्रीप्रकाशानन्दजी, वृन्दावन

प्रथम वर्णन

मैं लोगों के मुख से सुना करता था कि कर्णवास–रामघाट में एक सिद्ध महात्मा रहते हैं। वे लोगों को प्रायः दर्शन नहीं देते, तथापि लोग उनके दर्शनों को लालायित रहते हैं। इससे स्वाभाविक ही मेरे मन में इच्छा हुई कि मैं उन महात्माजी के दर्शन करूँ।

कुछ काल पश्चात् मुझे किसी ने बतलाया कि वे महात्माजी उत्सव में काजिमाबाद आ रहे हैं। इसे मैंने अपना सौभाग्य माना और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तुरन्त काजिमाबाद पहुँचा। वहाँ जिस समय मैंने श्रीमहाराजजी का दर्शन किया, मुझे उनके मस्तक के चारों ओर प्रकाशपुञ्ज दिखलायी पड़ा। इससे मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई कि न जाने मुझे क्या मिल गया।

उनका प्रभाव

उसके बाद श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर दूसरी बार दर्शन करने के लिये मैं रामघाट गया। वहाँ बड़ी सुन्दर सजावट की गयी थी। उस समय श्रीमहाराजजी की पूजा, प्रताप और ऐश्वर्य देखकर मुझे तो ऐसा लगा मानों साक्षात् भगवान् ही मिल गए। वहाँ मैं छोटी–मोटी सेवाओं में भाग लेने लगा। मुझे श्रीमहाराजजी की आज्ञा जिस किसी सेवा कार्य के लिये होती उसे करने में मैं बहुत सुख मानता। उनकी कृपा और उपदेश से मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया। कहाँ तो मैं घर–गृहस्थी के जंजाल में फँसा था और कहाँ सन्त–महात्माओं के सत्संग और ज्ञान भक्ति के सदुपदेश सुनने का यह दुर्लभ अवसर मिला।

श्रीमहाराजजी में मैंने यह विलक्षण सिद्धि देखी थी कि वे जहाँ कहीं बैठ जाते थे वहीं वर्षा की तरह वस्तुयें बरसने लगती थीं। ऐसी अनेकों

घटनायें देखीं कि जहाँ कोई संभावना नहीं थी वहाँ भी उनके संकल्पमात्र से वस्तुओं का ढेर लग जाता था। परन्तु इतना बड़ा वैभव होते हुए भी उनका किसी वस्तु में तनिक भी राग नहीं था। बड़े–बड़े उत्सवों के अन्त में हजारों का सामान पड़ा रह जाता था और वे सब छोड़कर चल देते थे। इस बात की कभी चिन्ता नहीं करते थे कि इतना सामान पड़ा है, इसका क्या होगा।

अद्‌भुत चमत्कार

(१)

एक बारकी बात है। श्रीमहाराजजी गोरहामें थे। मैं और गौरीशंकरजी उनके दर्शनों के लिए गोरहा की ओर चले। साँकुरा गाँव के पास पहुँचनेपर रात्रि हो गयी, अतः हम दोनों एक झोंपड़ी में सोये। रात्रि में मुझे आवाज सुनायी दी–'अरे भाई ! तुम लोग यहाँ क्यों आ रहे हो ? मैं तो बाँध पर आ रहा हूँ। वहाँ तो इस प्रकार बोलनेवाला कोई था नहीं। मैं समझ गया कि यह आवाज बाबाकी है। मैंने गौरीशंकर जी को जगाया और उन्हें सब हाल सुनाया। परन्तु उन्होंने मेरी बात का विश्वास नहीं किया। हम दोनों फिर सो गये। थोड़ी देर में मुझे पुनः आवाज सुनायी दी–'अरे !तुम लोग क्यों नहीं मानते ? वृथा क्यों आ रहे हो ? मैं तो सबेरे ही वहाँ से चल दूँगा और होली पर बाँध पर पहुँचूँगा ? मैंने गौरीशंकरजी से फिर सब बात कही। परन्तु उन्होंने नहीं माना। हम लोग प्रातःकाल उठकर चल दिए और सायंकाल में चार बजे के लगभग गोरहा पहुँचे तो मालूम हुआ कि महाराजजी सबेरे ही बाँध के लिए चले गए हैं। तब हम लोग भी वहाँसे लौटकर बाँधपर आए। जब श्रीमहाराजजी के दर्शन किए तो वह कहने लगे, "होलीपर मैं कभी गोरहा रहता हूँ, जो तुमलोग वहाँ गए थे ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि मुझे दोनों बार की आवाज श्रीमहाराजजी के संकल्पसे ही सुनायी दी थी।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी की आज्ञा लेकर मैं गंगातट को चला। उन्होंने एक कटिवस्त्र दिया था, उसे मैंने साथ ले लिया। तीसरे दिन १० बजे अलीगढ़ पहुँचकर अचल ताल पर ठहरा। स्नान करके कटिवस्त्र ऊपर सुखा दिया और भजन करने लगा। थोड़ी देर में हवाके झोंके से उड़कर वह कटिवस्त्र नीचे जल में गिर पड़ा। जब मेरी दृष्टि उसपर पड़ी तो मैं उसे उठानेके लिए चला। परन्तु उसी समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि महाराजजी रोक रहे हैं। मैं रुक गया। फिर मन में संशय हुआ कि मुझे शायद भ्रम हो गया होगा। अतः फिर उठाने के लिए चला। किन्तु इस बार भी वैसा ही अनुभव हुआ। तब मैं उसे छोड़कर ऊपर जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद मेरी दृष्टि कटिवस्त्र के नीचे पड़ी। वहाँ देखा कि एक साँप बैठा हुआ है। तब मैं समझा कि इसी कारण से श्रीमहाराजजी ने मुझे रोका था।

(३)

श्रीमहाराजजीके ब्रह्मलीन हो जानेके पश्चात् एक दिन मैंने स्वप्न में देखा कि वे बैठे हुए हैं। उनके पास ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी (श्रीगणेशजी) और चेतनदेवजी आदि कई महात्मा भी हैं। आपने चेतनदेवजी के द्वारा मुझे बुलवाया और जब मैंने समीप जाकर चरणों में प्रणाम किया तो बोले, "कहाँ जा रहा है? आश्रम में क्या हो रहा है?" मैंने कहा, "महाराजजी! आश्रम में बड़ी हलचल मची हुई है, लोग आपके विरह में गोपियों की तरह व्याकुल हैं।" वे बोले, "मैं यहीं तो हूँ।" ठकुरानी और गणेशजी सब प्रबन्ध करेंगे। घबड़ाओ मत। इसी प्रकार दूसरी बार भी स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने कहा था, "बेटा मैं कहीं गया थोड़ा ही हूँ? तुम लोगों के पास ही रहता हूँ। तुम घबड़ाओ मत।"

एक भक्तिमती माताजी, वृन्दावन

अद्भुत चमत्कार

पूज्य श्रीमहाराजजीने आज तक मेरे साथ जो–जो लीलायें की हैं तथा मुझ पर उनकी जैसी–जैसी कृपा रही है, वह सब स्पष्ट प्रकट करने का न तो मुझमें साहस है और उसकी आवश्यकता ही है। उनमें से जितनी बातें कही जा सकती हैं उन्हींमेंसे कुछका वर्णन किया जाता है।

(१)

श्रीमहाराजजीका साक्षात् दर्शन तो मुझे बहुत पीछे हुआ था। पहले तो वे स्वप्न या ध्यान में ही दिखायी देते रहे। मैंने जिस दिन पहली बार आपका नाम सुना उसी दिन स्वप्न में आपका दर्शन भी हुआ। जब मैं ग्योरा गाँव गयी तो आपप्रत्यक्ष मेरे नेत्रों के सामने आने लगे। परन्तु अभी तक मैंने आपका साक्षात् दर्शन तो किया नहीं था, इसलिये मैं आपको पहचानती नहीं थी। आप अपना करकमल मेरे सिर पर रखने के लिये आते तो मैं यह समझकर कि न जाने यह कौन है पीछे हट जाती थी। इस प्रकार आठ वर्ष व्यतीत हो गये।

(२)

जब मैं सेंड़ौल गयी तो मैंने यह शुभ समाचार सुना कि आप केवल एक मील दूर काजिमाबाद में पधारे हैं। यह सुनकर मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। सौभाग्य से पड़ौसके एक भक्त आपका

चरणोदक ले आये थे। मैं आतुर होकर वहाँ गयी और चरणोदक पान करके अपने को कृतार्थ माना। वह चरणामृत पान करने से मेरी विचित्र अवस्था हो गयी। मुझे देहकी सुधि न रही तथा श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा मेरे हृदय में जाग्रत हुई। मेरे नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उस तन्मयावस्था में मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि आप मेरे सामने खड़े हैं। परन्तु उस समय आपको खड़े होकर प्रणाम करने की शक्ति मुझमें नहीं थी, अतः सोचा कि बैठे–बैठे ही चरणस्पर्श कर लूँ। परन्तु यह क्या ? आपने बड़ी विचित्र लीला की, उल्टे मेरे ही चरण छू लिये। मैं जब–जब उनके चरण छूती वे मेरे चरण छू लेते इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने तीन दिन तक कुछ भी नहीं खाया। तीसरे दिन श्रीमहाराजजी ने मेरे सामने साक्षात् प्रकट होकर कहा–

'प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा।।'

यह कहकर आप अन्तर्धान हो गये और मैं चुप हो रही।

(३)

दूसरी रात मैंने स्वप्नमें देखा कि मैं अपने एक सम्बन्धी के साथ जा रही हूँ। उसने संकेत किया कि श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। मेरे मन में पास जाकर दर्शन करने की अभिलाषा हुई। यह सोचते ही आप मेरे बिल्कुल समीप आ गये। मैंने नम्रता से झुक कर तीन बार प्रणाम किया और श्रीमहाराजजी ने मेरे सिर पर अपना कर–कमल फेरा।

(४)

दूसरे वर्ष आप पुनः काजिमाबाद पधारे। तब मुझे पण्डित किशोरीलालजीके द्वारा आपका चरणामृत और प्रसाद मिला परन्तु, साक्षात् दर्शन नहीं हो सके। मुझे तो चरणामृत पान करके ही अपार हर्ष हुआ।



(५)

एक दिन अनजान में मुझसे ऐसी भूल हो गयी कि अपनी ये अनुभवकी बातें मैंने ब्रह्मचारी गौरीशंकरको सुना दीं। तबसे अनुभव होने बन्द हो गये। अब तो मेरी ऐसी दशा हो गयी जैसे जलके बिना मीन की होती है। मैं मन ही मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगी तथा गौरीशंकरको मन्त्र और माला लाने के लिए श्रीमहाराजजीके पास भेजा। आपने माला तो दे दी, किन्तु मन्त्र के लिए यह कहकर टाल दिया कि मिलने पर देंगे। गौरीशंकर के द्वारा यह संदेश पाकर मुझे दुःख तो हुआ, किन्तु अनुभव उसी दिन से फिर होने लगे। एक दिन गौरीशंकर मुझे और नानक को कल्याण का एक लेख सुना रहे थे। उसी समय पीछे से मुझे श्रीमहाराजजी की आवाज सुनायी दी कि तुम तीनों यहाँ आओ। दूसरे ही दिन मैंने गौरीशंकर को अनूपशहर भेजा। अबकी बार बिना कहे ही आपने मेरे लिये माला और पादुका प्रदान की। मन्त्र के लिए कह दिया कि जो अब तक जपती रही है वही रहेगा। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

(६)

मैं एक दिन श्रीमहाराजजी की पादुकाओं का पूजन कर रही थी। इतने में आप साक्षात् प्रकट होकर बोले, "आरती में अमुक दो स्त्रियों को बुला लाओ।" मैं उन्हें बुला लाई। बात यह थी कि किसी विशेष कारणवश मैंने उनसे बोलना बन्द कर दिया था। आपको यह बात अच्छी नहीं लगी, अतः मुझे अमानी बनाने के लिए उन्हें बुलाने के लिए मुझे ही भेजा।

उपरामता और परीक्षा

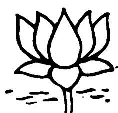
धीरे–धीरे संसारसे मेरी उपरामता बढ़ने लगी। इससे गृह कार्यों में शिथिलता आने लगी। अतः पण्डितजी की ओर से मुझे बहुत कष्ट मिला।

भयानक ताड़नायें भी मिलीं। मैं कहीं भी आ–जा नहीं सकती थी। ऐसी अवस्था में मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा हुई। उन दिनों शरीर बहुत कृश हो गया था। बारम्बार आत्महत्या करने की मन में आती थी। एक दिन आपने प्रकट होकर कहा, "सावधान तुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। पहाड़पर धीरे–धीरे चढ़ा जाता है। घबड़ाओ मत, सब ठीक हो जायगा।" श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे अनुभव होता कि वे मुझे अपनी गोद में लिये मेरी रक्षा कर रहे हैं। अतः पण्डितजी के दिये हुए दुःख मेरे हृदय में अधिक ब्यथा नहीं पहुँचा पाते थे।

श्रीमहाराजजी के बतलाए हुए साधन का अनुष्ठान करने से मुझे समय–समय पर श्रीभगवान् के दर्शन उनके धाम तथा लीलाके दर्शन और नारदादि ऋषियों के भी दर्शन होते रहते थे। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा।

श्रीमहाराजजीके साक्षात् दर्शन

अन्त में वह शुभ घड़ी आयी जब मुझे श्रीमहाराजजीके साक्षात् दर्शन हुए। मेरे जीवन की साध पूरी हुई। अब उनके लीलासंवरणके बाद भी उनके दर्शन होते रहते हैं। उनके चमत्कार वाणी से व्यक्त नहीं किये जा सकते। ऐसा सत्य और स्पष्ट अनुभव होता रहता है कि वे सदा पासही हैं और सारी बातें ठीक–ठाक बतला रहे हैं। यदि कोई उलझन आती है तो वे तुरन्त सुलझा देते हैं। ऐसी उनकी अद्भुत कृपा है।



पं० श्रीछविकृष्णजी दीक्षित, भिरावटी

विक्रमी सं० १९७५ की बात है। मेरी आयु उस समय ११ सालकी थी। मैं कर्णवास पक्के घाटके संस्कृतविद्यालयमें पढ़ रहा था। एक दिन खबर मिली कि मार्गशीर्ष शु० ११ को श्रीउड़िया बाबाजी पधार रहे हैं। हम विद्यार्थियों को उनके निवासस्थानके परिष्कार का कार्य सौंपा गया। पक्के घाट के ऊजड़ भाग में एक कच्ची कोठरी थी। उसकी ऊँची–२ घास काटकर उसे लीप–पोतकर सुन्दरसे सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया गया। इस कार्यमें मैं सब विद्यार्थियोंका नायक था। यद्यपि उस समय यह कार्य भार रूप जान पड़ा था, परन्तु अब पता लगा है कि यह कितना मूल्यवान् था। बाबा ठीक समय पर अन्य चार संतों के सहित पधारे। सायं कालके प्रायः चार बजे का समय था। भगवान् भास्कर अपनी दिनभर की यात्रा से श्रान्त होकर पश्चिमाकाश में ठिठके हुए थे। पूज्य बाबा भी उन्हीं के साथ पूर्व से आकर वहाँ खड़े हो गये। आपका दिव्य कषाय वस्त्र अपनी पीतकान्ति से सूर्य की कान्तिको और स्वयं सूर्य को भी लज्जित कर रहा था। अस्तु। सूर्यदेव तो कुछ क्षणों में अस्ताचलकी ओट में छिप गये और आप कुंजके चबूतरे पर विराजे। लोगों ने स्थान के परिष्कार का प्रसंग उपस्थित होने पर मुझे श्रीमहाराजजी के सामने प्रस्तुत कर दिया। आपने एक विचित्र कृपा दृष्टि से मेरी ओर देखा और पास बुलाकर प्रसाद दिया। उस दृष्टि और प्रसाद में न जाने क्या जादू

था— मैं कह नहीं सकता। बस, हर समय मेरा मन उसी रूप का चिन्तन करने लगा। स्वप्नमें तो प्रायः नित्य ही उस रूप के दर्शन होते थे। कभी—अँधेरे उजाले में ऐसा भी अनुभव होता था कि बाबा सामने से आ रहे हैं और मुझे बुला रहे हैं। कभी तो आवाज भी सुनाई देती थी। मैं तो सचमुच आधा पागल—सा हो गया। बाबा वहाँ केवल पाँच दिन ठहरे, परन्तु मेरी यह दशा सवा वर्ष तक रही। इसके पश्चात् बहुत दिनों तक दर्शन नहीं हुए और प्रायः दो वर्षमें मैं भी उन्हें भूल गया।

परन्तु वे मुझे नहीं भूले। इसका पता लगा सात वर्ष पश्चात् जब आप बाँधपर पधारे। उस समय वहाँ अखण्ड कीर्तन चल रहा था। और भिरावटीकी पार्टीकी ड्यूटी थी। उसमें श्रीबहादुर सिंह और रणवीरसिंह आदि के साथ मैं भी कीर्तन कर रहा था। आप आकर चुपचाप खड़े हो गए। हम लोग नेत्र बन्द किए कीर्तन कर रहे थे। स्वाभाविक ही हमारे कीर्तन में बड़ा उत्साह और आनन्द बढ़ गया। उस समय मेरे और उपर्युक्त दो व्यकित्यों के मनमें ऐसा भाव हुआ कि नाम के परम रसिक श्रीसदाशिव हमारे कीर्तन में आ गए हैं। साथ ही हमें अपने अन्तःकरणों में पूर्वसंस्कारानुसार श्रीशंकरजी के दर्शन भी होने लगे। यद्यपि नेत्र बन्द होनेके कारण हम तीनोंमेंसे किसीको भी आपके आने का पता नहीं था और उन दोनों ने तो पहले कभी आपके दर्शन भी नहीं किए थे, तथापि आपकी विशेष प्रसन्नता की परिचयस्वरूप आपकी दिव्य क्रीड़ा सभीके मनोंमें होने लगी और भीतर ही भीतर कभी शिव और कभी आप दीखने लगे। यह भाव या साक्षात्कार उस समय बहुत से कीर्तनकारोंको हुआ थोड़ी देर में पार्टी बदली। उस समय नेत्र खुले तो सामने आपके दर्शन हुए। घुटनोंतकका कटि· वस्त्र, तह बनाकर कन्धे पर डाली हुई चादर,

गाढ़े अँगोछेमें, लपेट कर अण्टापर बँधी हुईएक छोटी–सी पुस्तक और हाथ में तूँबा। कण्ठके नीचे वक्षःस्थलपर कुछ स्याहीका रंग और चरण धूलि धूसरित। नेत्र बन्द होनेपर भी हम सब शिवरूपमें इसी मूर्तिका दर्शन कर रहे थे। अब अकस्मात् नेत्रों के सम्मुख देखकर सबके सब चरणों से लिपट गये। इस समय अपने बालकोंको अपने प्राणाधार भगवन्नाम में तल्लीन देखकर आप भी न जाने कितने आनन्दमग्न थे। ऊपर से अवश्य मन्त्रमुग्ध की तरह खड़े थे। परन्तु आपको भी चेत तभी हुआ जब कुछ देर हम सब चरणोंसे लिपटे रहे। फिर कुछ दूर चलकर बैठ गये और एक–२ के विषयमें पूछकर सबका परिचय प्राप्त किया। मुझे तो देखते ही ऐसा पहचाना मानो सदा की जान–पहचान है। कर्णवासकी भी याद दिलायी। मैं तो बचपन के कारण भूल चुका था, परन्तु वे कैसे भूलते। सब लोगों ने प्रार्थना की तो आपने भिरावटी आनेका भी वचन दिया। इसके पश्चात् ७ दिन बाँधपर रहकर भिरावटी पधारे और ११ दिन चौधरी बहादुरसिंह के मकान के चौबारे में विराजे। अब तो गाँव के सभी लोग कृतार्थ हो गये और फिर कभी आपको नहीं भूले।

जबसे शिवरूपमें आपका दर्शन हुआ तबसे मेरा और चौधरी बहादुरसिंह का यह नियम रहा है कि श्रावण और फाल्गुन मास की कृष्णा चतुर्दशियों पर आप जहाँ भी हों वहीं जाकर हरिद्वार से लाए हुए गंगाजल द्वारा आपका अभिषेक और पूजन करें। इसके लिये कई बार हमें बहुत खोज भी करनी पड़ी है। एक बार बहुत प्रयत्न करने पर भी हमें आपका पता न लग सका। तब उसी मास की शुक्ला चतुर्दशीपर आप स्वयं पधारे और कहा, "बेटा ! लो, आज ही शिवरात्रि है।" बस, तभी आपका पूजन किया गया। उसके पश्चात् ऐसा कभी नहीं हुआ

जो इन तिथियों पर हमें आपका पता न लगे। एक बार आप फर्रुखाबाद में थे। हम दोनों शिवरात्रि पर वहाँ पहुँचे। किन्तु आप कुछ और ही लीला कर रहे थे। आपने किसी दीन भक्त का रोग अपने ऊपर लिया हुआ था और उस समय आपको १०६ डिग्री ज्वर था। सिविल सर्जन ने उठने तकको मना किया हुआ था, केवल एक आदमी ही पास रह सकता था और जलके सिवा कोई दूसरी चीज आप ले नहीं सकते थे। हम लोग पहुँचे तो यह सब प्रतिबन्ध देखकर कुटीके बाहर ही खड़े रह गये। आपने न जाने किस प्रकार हमें देख लिया। बस, झट बाहर निकल आए और हमें बाग के दूसरे किनारे पर जाने का संकेत कर दिया। हम वहीं चले गए और थोड़ी देर में आप भी घूमते–फिरते वहाँ आ गये। साथ में जो आदमी था उसे तो किसी बहाने से पानी लेने के लिए भेज दिया और बोले, "तुम अभी पूजन कर लो।" हम तो डर रहे थे, परन्तु आपने स्वयं कह–कहकर बड़े आनन्द से पूजन कराया, गंगाजल पिया और भोग भी लगाया। इतने ही में वे भक्तमहाशय जल लेकर आ गये। हम उन्हें देखकर डरे, परन्तु वे तो यह सब लीला देख चुके थे। वे हम पर बिगड़ने लगे तो आपने उन्हें डाँटते हुए कहा, "अरे! तू! उल्लू है और तेरा डाक्टर भी उल्लू है। मैं बिलकुल बीमार नहीं हूँ, देख मेरी नब्ज और बुला ले डाक्टर को।" डाक्टर ने आकर देखा तो सचमुच ही आप नीरोग थे। फिर आप उक्त भक्त से कहने लगे, " तू इन बालकों पर बिगड़ता है, मैं तो कल से इनका रास्ता देख रहा था। अब देख मैंने हरिद्वारका गंगाजल पी लिया है, मैं ठीक हो गया; देखा तूने हरिद्वार के गंगाजल का प्रभाव।" वे तो अवाक् रह गए। हम भी बैठे सोच रहे थे कि यह गंगाजल का प्रभाव है या स्वयं इनका। यदि जलका ही प्रभाव है तो दूसरे लोग इस प्रकार गंगाजल पीकर क्यों नीरोग नहीं हो

जाते। पर यह सोचकर चुप रहे कि शिव के लिए गंगा बड़ी हैं और गंगा के लिए शिव। **'को बड़ छोट कहत अपराधू।** बड़ोंका खेल बड़े ही जाने हमारे लिए तो दोनों ही बड़े हैं।

इस प्रकार हमारा यह नियम बराबर अक्षुण्णरूप से चलता रहा। अन्तिम वर्ष जब हम पूजा के लिए वृन्दावन गए तो आप अस्वस्थ थे अतः लोगोंने पूजाके लिए आपत्ति की। कुछ ऐसा वातावरण बना हुआ था कि आग्रह करनेसे संघर्ष पैदा हो सकता था। हमें किसीकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करना उचित नहीं जान पड़ता था। आपने भी परिस्थिति अथवा भविष्यका विचार करके आज्ञा दी कि चौकीपर चित्र और पादुकायें रखकर पूजन कर लो। अतः **'ईश रजाय शीश सबही के।** यही ठीक मानकर हमने उसी भावसे चित्र और पादपीठ का पूजन किया। पास आपकी पादुकायें थीं। हमें तो उस पूजन में भी वैसा ही आनन्द मिला। हमारी दृष्टि में तो उस समय भी चौकीपर स्वयं सदाशिव ही विराजमान दीखे थे। पीछे आपने हमें अपनी कुटीमें बुलाया और वहाँ पुनः पूजा करायी, स्वयं भोग लगाया और हमें भी प्रसाद दिया। यह हमारे लिए भावी पूजाक्रम का संकेत था क्योंकि उसके ठीक एक मास पश्चात् आप हमारी आँखों से ओझल हो गये। अब इसी क्रमसे पूजन होता है। यों तो आप सदा सर्वत्र हैं और कभी–कभी कृपा करके दर्शन भी देते हैं परन्तु अन्तर इतना है कि पहले तो जब हम चाहते थे तभी दर्शन होते थे और अब जब आपकी इच्छा होती है तब दर्शन देते हैं। खैर ठीक है। 'राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।

भिरावटी आप कई बार पधारे थे और ५–७ दिन से लेकर २–३ मास तक एक–२ बार में निवास किया था। वह सुख हम वर्णन नहीं कर सकते।

आज केवल उसकी स्मृतिही शेष है। एक बार बदादुरसिंहके मकान पर ही आप ठहरे हुए थे। सेवा में मैं तथा १–२ निजजन ही थे। एक दिन प्रातः काल आप जंगल में जाकर एकान्तमें बैठे थे, बोले, "अरे! दर्शन क्या चीज है, कुछ नहीं। बड़ी बात तो यह है कि जब इच्छा हो तभी दर्शन हो जायँ। और इससे भी बढ़कर यह है कि दर्शन करके हम अपनेको और जिसके दर्शन हों उसको भी भूल जाँयें।" हम लोगों ने जब दर्शन की इच्छा प्रकट की तो बोले, "अच्छा नेत्र बन्द करके बैठ जाओ।" आप भी नेत्र मूँदकर बैठ गये। हमने देखा कि आपके स्वरूपमेंसे एक दिव्य कान्ति निकली और आपका स्वरूप बदलकर शिवरूप हो गया। फिर वह क्रमशः राम, कृष्ण और हमारे महाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) के रूपमें बदला। हम यह सब देखकर घबड़ा गये और हमारे नेत्र खुल गये। तब भी हमें इसी प्रकारका दृश्य दीखता रहा। तब हम स्तुति–प्रार्थना करने लगे और कुछ भयभीत से हो गये। इसपर आपने हँसकर कहा, 'अरे! ध्यान करते हो या स्तुति।" फिर पुचकारते हुए बोले, "बेटा! डर गए, डरो मत।" पीछे आपने बहुत प्रयत्न किया कि हम उस बात को भूल जायँ और कहा, "किसीने तुम्हें डरा दिया, यह जंगल है न। डरो मत। बैठो, ध्यान करो।" परन्तु अब कैसा और किसका ध्यान करते। हमारे सामने तो आप प्रत्यक्ष विद्यमान थे। प्रत्यक्ष को छोड़कर अब आँखें क्यों मूँदे। भेद तो सब खुल ही गया था। इसी झगड़े में १२।। बज गये और हम सब गाँव में लौट आए। इसी प्रकार और भी आपकी अनेकों लीलाएँ हमने तथा दूसरे लोगों ने देखी हैं।

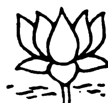
उस दिन के पश्चात् हम लोग आपसे कोई भी बात छिपाते नहीं थे। घरकी, बाहरकी, देशकी सब प्रकार की अच्छी–बुरी बातें हम एकान्त में पूछते थे। साधन की बात पूछनी होती तो सबके सामने पूछ लेते। आपने देश और हमारे भविष्य में जो–जो बात

बतायीं वे सब ज्योंकीत्यों होती जा रही हैं। हम जब कभी आपके दर्शनों को जाते १५मिनट मेरे और १५ मिनट बहादुरसिंह के लिए बँधे हुए थे। उस समय में एकान्त में यही सब बातें होती थीं। हमें काई कठिनाई होती और उनसे कह देते तो वहाँसे लौटते ही वह हल हो जाती थी, हमें उसके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। उनकी कृपासे हमें तो मानों प्रकृति अपने अधीन जान पड़ती थी। इतनी उदारता और कोमलता देखना तो दूर हमने संसार में कहीं सुनी भी नहीं। आपका यह सदाका नियम था कि कितना ही प्रसाद आ जाय रात को बाकी नहीं रखते थे। वस्त्रकी भी ऐसी बात थी कि स्वयं तो सामान्य ही वस्त्र धारण करते, किन्तु यदि कोई उत्तम वस्त्र भेटमें आ जाता तो उसे किसी अत्यन्त सामान्य पुरुषको बुलाकर बिना माँगे स्वयं ही दे देते थे और कहते, 'अरे ! ले जा, ले जा, यह तेरे ही लिए रख छोड़ा था। जल्दी ले जा, कोई देखेगा तो कहेगा क्या बात है।''

एक बार भिरावटीसे कर्णवासको चले। केवल मैं ही साथ था गंगाजीपर पहुँच गये, किन्तु रास्ता छूट गया था। कुछ सच मुच छूटा और कुछ जानकर छोड़ दिया। घाट वहाँ से बहुत दूर था। आपने कहा, ''यहाँ थोड़ा ही जल है, ऐसे ही पार कर लें।'' बस, घुस पड़े। आप आगे और मैं पीछे। जल सचमुच कमर से नीचे हो रहा। एक आदमी दूर से भागकर आ रहा था और पुकार–पुकारकर कह रहा था–''अरे डूब जाओगे, यहाँ अथाह जल है।'' परन्तु आपने उसकी एक न सुनी। जबतक वह आया हम गंगापार कर चुके थे। चौथे दिन मैं घर को चला तो सोचा, उसी रास्ते चलें। परन्तु जब गंगा पार करने लगा तो जल सचमुच अथाह था और अनेकों मगर उछल रहे थे। वहाँ से डेढ़ मील लौटकर घाट पर गया तब घर पहुँचा।

एक समय बाँधपर मैं और बहादुरसिंह गंगास्नान को गए। उधरसे पं० सुन्दरलालजी स्नान करके आ रहे थे। सोचा यहीं स्नान कर लें। बस, हम गंगाजी में घुस गए। वहाँ जबरदस्त कुण्डा था। पण्डितजीका घाट हमसे छूट गया था। एक–दो बड़े–२ मगर भी दिखायी दिये। हम डर गए। किनारे पर देखा तो आप खड़े हैं। हँसकर बोले, "अरे! डरते क्यों हो? खूब स्नान करो।" हमने अच्छी तरह स्नान किया और नित्यकर्म भी। आप तो चले गये। पीछे हम ढायपर चढ़े तो देखा वहाँ दस–बारह मगर पड़े मुँह फाड़ रहे हैं। सचमुच उस दिन हमारी मृत्यु ही थी। हमारी रक्षा के लिये ही आप पधारे थे। हमने बाँधपर आकर आपको सब बातें सुनायीं तो आप हँस दिये और कहा, "बेटा! अब वहाँ मत जाना, वह स्थान अच्छा नहीं है।"

ऐसी अनेकों लीलायें हमने इन नेत्रोंसे प्रत्यक्ष देखी हैं, कहाँ तक लिखें। हमारी दृष्टिमें वे प्रत्यक्ष कामारि श्रीसदाशिव ही थे। हम कलियुगी जीवों पर दया करके हमें कृतार्थ करने के लिए ही पधारे थे, अथवा सदा की भाँति परमप्रिय श्रीहरि की लीलाओं का रसास्वादन कराने के लिए प्रादुर्भूत हुए थे। अब सब कुछ देख कर और दिखाकर हमारे सुकृत पूर्ण हुए जानकर सदा सर्वत्र विराजमान रहते हुए भी अपने निजधाम को पधार गए। मनमें अब यही आशा और अभिलाषा है कि देखें कब दर्शन होते हैं; सो सब भक्तजनोंकी कृपापर ही निर्भर है; अपना तो न कोई बल है, न योग्यता है।



श्रीरामेश्वरप्रसादजी, गवाँ (बदायूँ)

पूज्य बाबाकी बड़ी प्रसिद्धि थी। मैं भी उनका नाम सुना करता था। अनूपशहरवाले सेठ रामशंकरजी बाबा के पास जाया करते थे। और मुझसे उनके गुणों की प्रशंसा किया करते थे। सन् १६२६ या २७ के लगभग श्रीरामनवमी के उत्सवपर बाबा बाँधपर पधारे। तभी मैंने उनका प्रथम दर्शन किया। उस समय मेरे मन पर उनके इस गुणकी सबसे अधिक छाया पड़ी कि वे सबसे प्रेमसे मिलते थे। उनके प्रेममय व्यवहारसे चित्त आकर्षित होता था। फिर तो बाँध के अतिरिक्त रामघाट, कर्णवास आदि अन्य स्थानों में भी, जहाँ वे होते वहाँ उनके दर्शनार्थ जाने लगा। उत्सवों के अवसर पर श्रीमहाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) बाबाको बुलाने के लिए मुझे भेजते थे।

बाँधके उत्सवोंपर जब–जब बाबा पधारते उनके परिकर के भोजनकी सेवा मेरी होती थी। मैं तो केवल सामान मँगाकर उनके भक्तोंको सौंप देता था। शेष सारा प्रबन्ध बाबा स्वयंही करते थे। वे स्वयंही सबकी देखरेख रखते थे। बाँध के उत्सवोंपर कभी–कभी बाबा दो, दो, तीन–तीन महीने विराजते थे। परन्तु प्रबन्धके कामों से अवकाश बहुत कम मिलता था; इसलिये मैं बाबाके पास निश्चिन्त होकर थोड़ी देर भी नहीं बैठ पाता था। बाबा स्वयं ही मेरे पास चले आते और हरेक बात पूछते कि क्या प्रबन्ध करना है और क्या नहीं करना है। इससे उनके चरणों की छत्रछायामें मुझे इतना आनन्द रहता कि रात–दिनका भी

कोई ध्यान नहीं था। कैसी भी चिन्ताजनक स्थिति हो बाबा कहते, 'अरे ! तू क्यों चिन्ता करता है ? तेरा अकल्याण कभी नहीं हो सकता।" उनके श्रीमुख से ये शब्द सुनकर मैं निश्चिन्त हो जाता था।

बाबा बहुत व्यवहारकुशल थे। घर–बार की स्थितिके विषयमें भी वे पूरी जानकारी रखते थे। वे दूसरेकी रुचि और स्थिति का इतना ध्यान रखते थे कि उन्होंने मुझसे कभी कोई ऐसी बात कही ही नहीं जिसे मैं न कर सकता। वे अनुकूलता–प्रतिकूलता, रुचि–अरुचि और सामर्थ्य आदिको देखकर ही कोई बात कहते थे। इधर मेरे महाराजजीका फौजी आर्डर होता था, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती थी। उन्हें भी मिलने–जुलने के लिये फुरसत नहीं और बात करने का समय नहीं।

एक बार बाँधका उत्सव समाप्त होने पर बाबा बाँधसे चलकर बेले (गंगाजी की रेती) में डट गए और दस–बारह दिन तक वहीं रहे। उनके साथ अनेकों भक्त भी थे। वैशाख का महीना था। उस भीषण गर्मी में भी वे झाऊके नाचे रहा करते थे। उन दिनों मैं प्रातःकाल एक–दो बजे उठता। बाबाकी भक्तमण्डलीके लिए भोजन तैयार कराता। सूर्योदय होते–होते हथिनीपर सारा सामान रखवाकर चल देता और आठ बजे के लगभग बाबा के पास पहुँच जाता। फिर दिनभर वहीं रहता। कथा, कीर्तन और सत्संग सुनता तथा शामको पाँच बजे वहाँसे लौट आता। कभी–कभी रात में ऐसी लीला होती कि भक्तों की चाँदी की कटोरियों को सियार झाऊओं में घसीटकर ले जाते। सबका समय बड़े आनन्दसे बीतता था।

बाबा का महाराजजी से अत्यन्त प्रेम था। वे सदैव इनकी रुचिका ध्यान रखते थे। इनकी आँखें देखते रहते थे। जरा भी कीर्तन शिथिलता देखी

कि फौरन पूछते, "क्या बात है? बाबा प्रसन्न हैं या नहीं? पूछा।" वे अनेकों प्रोग्राम तो केवल श्रीमहाराजजी की प्रसन्नता के लिए रखते थे। हम लोग तो केवल प्रेम–२ कहा करते हैं, प्रेम करना जानते नहीं। सच्चा प्रेम तो बाबा और महाराजजीका ही देखा। एक बार किसी कारणवश बाँधके उत्सवपर पहुँचने में बाबा को कुछ देरी हो गयी। बस, महाराजजी रूठ गए। बोले, "भैया! अब उत्सव करके क्या करना है? बाबा तो आए नहीं। उत्सव में उत्साह नहीं रहा।" इत्यादि। बाबा ने आकर महाराजजी को बहुत मनाया और दूसरे वर्ष उत्सव में महाराजजी से भी पहले पहुँचकर उन्हें प्रसन्न कर लिया।

बाबा बहुत ही उच्चकोटिके संत थे। वैसे तो महाराजजी के अतिरिक्त मेरा हर किसी के प्रति आकर्षण नहीं होता; परन्तु बाबा के प्रति मेरा पूरा आकर्षण था। उसका एक यह भी कारण था कि वे मुझ पर बहुत ही प्यार रखते थे।

एक बार मेरी पत्नीको क्षयकी बीमारी हो गयी। बरेली में चिकित्सा हो रही थी। डाक्टरोंने रोगको भयानक बताया और परामर्श दिया कि इसे पहाड़ पर ले जाना चाहिए। परन्तु मेरी हार्दिक इच्छा थी नहीं। उन्हीं दिनों एक रात्रिको स्वप्न में मुझे बाबा और महाराजजी ने दर्शन देकर कहा, "कोई चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा।" उसके पश्चात् स्वाभाविक ही भुवाली सेनीटोरियम के डाक्टर आए। उनकी दवा से तीन–चार दिन में ही रोग ठीक हो गया। मुझे जब कभी स्वप्नमें बाबा का दर्शन हुआ है साथमें श्रीमहाराजजी भी अवश्य रहे हैं।



श्रीप्रेमवल्लभजी एडवोकेट, रामपुर

प्रथम दर्शन

सन् १६३३ में चन्दौसी कालेज में एफ० ए० में पढ़ रहा था। उस समय साधारण अँग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की तरह ही मेरा जीवन था। हमारे हिन्दी के अध्यापक थे पं० श्रीभगवान– दासजी शास्त्री। वे धार्मिक व्यक्ति थे। उनके सत्संग से मुझमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति जाग्रत हुई और ऐसी तीव्र आकांक्षा होने लगी कि मुझे कोई ऐसे उच्चकोटिके महापुरुष मिलें जिनकी कृपा से मेरा जीवन बदल जाय और मैं भजन साधन में प्रवृत्त हो आत्मकल्याण प्राप्त कर सकूँ। मेरी धारणा थी कि जब तक किन्हीं महापुरुषका संरक्षण प्राप्त न हो भजन–साधनमें निर्विघ्न प्रगति होना कठिन है। हाँ, यदि कोई महापुरुष अपना लें तो अवश्य प्रगति हो सकती है। पं० भगवानदास तथा पं० याज्ञेश्वरप्रसाद आदि चन्दौसीनिवासी भक्तगण श्रीमहाराजजी की चर्चा और प्रशंसा किया करते थे, जिसे मैं बड़े चावसे सुनता था। इससे मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा जाग्रत हुई। सौभाग्यसे मैंने सुना कि बाबा अलीगढ़के महोत्सव में पधार रहे हैं। चन्दौसी के भक्तगण वहाँ जा ही रहे थे, उन्हींके साथ अपनी मित्रमण्डलीके सहित मैं भी हो लिया। अलीगढ़ पहुँचनेपर मैंने देखा कि वहाँ एक बागमें अनेकों

भक्तोंसे घिरे श्रीमहाराजजी विराजमान हैं। उनके पास पहुँचकर मैंने न तो उन्हें प्रणाम किया और न कुछ बोला ही, केवल निर्मिमेष नेत्रों से उनकी ओर देखता रहा और आश्चर्य तो यह कि वे भी उसी प्रकार एक टक दृष्टि से मुझे देख रहे थे। प्रायः एक मिनट तक यही स्थिति रही। उस समय मुझे स्पष्टतया अनुभव हो रहा था कि मानों ये मेरे चिरपरिचित हैं और इस प्रकार मुझे अपना रहे हैं। उसके पश्चात् मैंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

अलीगढ़ में तीन–चार दिन ठहरकर मैं महोत्सव के दर्शन करता रहा। बाबा के दर्शन, सम्भाषण और उपदेश श्रवणका लाभ मिलता ही था। किन्तु परीक्षा समीप ही थी, इसलिये मुझे चन्दौसी लौटनेकी भी जल्दी थी। अतः पूज्य बाबासे मैंने अपने लिए भजन–साधन बतलाने की प्रार्थना की। उन्होंने दो मिनट मुझे एकान्त में अवसर दिया और भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना, उन्हीं का ध्यान और महामन्त्र का जप करने का आदेश दिया। उसके पश्चात् मैं आज्ञा लेकर चन्दौसी चला आया।

श्रीमहाराजजी के तीन–चार दिन के सम्पर्क से ही मेरे जीवनमें अद्भुत परिवर्तन हुआ। इससे पूर्व मैं बहुत खाता था, बहुत सोता था, दिनभर साथियों में बकवाद किया करता था और पढ़ता लिखता बहुत कम था। परन्तु अब यह सब बदल गया। मैं एक समय भोजन करने लगा, रातको केवल दूध पीता; उससे नींद स्वतः कम हो गयी। साथियोंसे बात बनाना छूट गया और एकान्त में रहकर भजन करने लगा। भजन–साधनमें मेरी रुचि जोरों से बढ़ने लगी। मेरे इस महान् परिवर्तनको देखकर मेरे अध्यापक और सहपाठी आश्चर्य करते थे। कई बार तो मैं एक लाख नामजप पूरा करके ही किसी अन्य कार्य में लगता था। अब छात्रावास के वातावरण में रहना ही असह्य हो गया। अतः एकान्त में एक कोठरी लेकर रहने लगा।

परीक्षामें असफलता

तीन–चार महीने बाद मैं श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ कर्णवास गया। इस साल मैं एफ० ए० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा। बाबा ने देखते ही कहा, "क्यों प्रेम! तू फेल हो गया?"

मैं–हाँ, महाराजजी।

बाबा–क्यों?

मैं–महाराजजीकी कृपासे।

बाबा–इसमें क्या कृपा है?

मैं–यदि मैं पास हो जाता तो मुझे पढ़ने के लिये इलाहाबाद जाना पड़ता। तब बार–बार आपके दर्शन और सत्संग का सौभाग्य नहीं मिल सकता था। चन्दौसीसे तो कर्णवास रामघाट आदि पास ही हैं। यहाँ बार–बार आपके दर्शन होते रहेंगे।

यह सुनकर बाबा हँस पड़े। उस साल मैं चन्दौसी में ही रहा। अब भजन में तो खूब मन लगता था। परन्तु पढ़ना–लिखना कठिन हो गया था। परीक्षा के दिन समीप आनेपर मैं फिर बाबाके पास गया। बोले, 'अब तू ठीक है। जा, पास हो जायगा।" मैंने परीक्षा दी और मैं पास हो गया।

इलाहाबाद में

(१)

अब आगे पढ़ने के लिये मुझे इलाहाबाद जाना पड़ा। वहाँ भी वही दशा रही। पढ़ने में मन बिलकुल नहीं लगता था, परन्तु मानसिक जप निरन्तर चलता रहता था। प्रोफेसर आकर पढ़ा जाते, परन्तु मुझे यह ध्यान नहीं रहता था कि क्या पढ़ा गए हैं। नयी बात यह हुई कि अब आत्मजिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी थी। 'मैं कौन हूँ यह प्रश्न खड़ा

हो गया, परन्तु समाधान कुछ होता नहीं था। सारा संसार मृत्यु के मुखमें पड़ा दिखायी देता था।

इसी समय अर्धकुम्भी के अवसरपर श्रीमहाराजजी झूसी पधारे। मैंने जाकर दर्शन किये। उन्होंने मेरे मनोगत भावों को जान लिया और मेरे प्रति अपार प्रेम प्रदर्शित किया। एकान्तमें प्रायः हृदय से लगा लेते थे। मैं उनके वेदान्त सम्बन्धी सत्संग में भी सम्मिलित होने लगा। यदि मैं न होता तो बाबा मुझे बुलवा लेते थे। परन्तु मैं उनसे पूछता कुछ नहीं था। वे मेरे मनके विचारों को जानकर स्वयंही मेरा समाधान कर देते थे। इस प्रकार मेरी शंकायें मिटती जाती थीं। वे मेरी हार्दिक स्थिति जानने में पूर्ण समर्थ थे। जब वे प्रयाग से काशी जाने लगे तो मैं भी साथ चलने को उद्यत हुआ। परन्तु उन्होंने रोक दिया। कहा कि तेरी परीक्षा का समय है। मैंने कहा, 'मैंने कुछ पढ़ा ही नहीं है और न मेरा मन ही पढ़नेमें लगता है, परीक्षा क्या दूँगा ?" तब बोले, "बी० ए० तो पास हो ही जायगा। आगे देखी जायगी।" मैं उनके आदेश से रुक गया। परीक्षा दी और पास भी हो गया। परन्तु कैसे हुआ– यह वे ही जानें। मैं तो इसमें उनकी ही कृपा मानता हूँ।

अनेकों बार ऐसी घटनायें भी हुईं कि मैं इलाहाबाद से श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ आता और वे मेरे पहुँचने से पूर्वही किसीसे कह देते, 'प्रेम आ रहा है, उसके लिए रोटी रख देना।" पहुँचनेपर पता लगता कि अरे! अभी थोड़ी देर पहले बाबा कह रहे थे कि प्रेम आ रहा है, रोटी रख देना सो सचमुच तुम आ गये!

(२)

श्री महाराजजीकी कृपासे मेरे अनेकों दुर्गुणोंकी निवृत्ति हुई और भजन में प्रवृत्ति। मेरे जीवनमें महान् परिवर्तन हुआ और वेदान्त विचार

द्वारा शान्ति मिली। मुझे जो कुछ भी मिला है उन्हींकी कृपा से मिला है। और किसी से मेरा गुरुभाव नहीं हुआ। मैंने दर्शन तो अनेकों सन्तों के किये हैं, परन्तु आनन्दका जैसा विलक्षण प्राकट्य बाबा में देखा वैसा अन्यत्र देखने में नहीं आया।

सन् १९३७ में मैं बीमार पड़ गया था। चौबीसों घंटे ज्वर बना रहता था। परन्तु दवा–दारू मैंने कुछ नहीं की। केवल एकांत में पड़ा रहता था। एक दिन मध्याह्नोत्तर ३–४ बजे कुछ तन्द्रासी आ गयी। उस अवस्था में मैंने देखा कि बाबा सामने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, "तू शरीर से पृथक है, शरीर का द्रष्टा है। शरीर में पहले ज्वर नहीं था, अब है और आगे भी नहीं रहेगा। तू तो इन सारी अवस्थाओं का साक्षी है।" इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गए। उसके पश्चात् बिना दवा किये उस आनन्दकी स्थिति में ही ज्वर निःशेष हो गया।

(३)

सन् १९३७ की ही बात है। मैं इलाहाबादमें पढ़ रहा था। एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा कि बाबा आये और मैं उनके साथ हो लिया। वे आगे–आगे चले और मैं पीछे–पीछे। हम दोनों एक पहाड़पर बहुत दूर तक चढ़ते चले गये। एक स्थानपर एक शिला थी, वहाँ पहुचने पर बाबाने उसे हटाया और उसके नीचे गुफामें प्रवेश किया। पीछे–पीछे मैं भी गया। वहाँ एक महात्माके दर्शन हुए। उनसे बाबाकी वेदान्त–चर्चा होने लगी। आश्चर्य की बात यह थी कि उन दोनों में वे ही प्रश्नोत्तर होते थे जो मेरे मनकी शंकायें थीं। मैं मनही मन सोच रहा था कि ये ही शंकायें तो मेरे मन में भी थीं। इस प्रकार मेरे मन की एक–२ गुत्थी सुलझती जा रही थी। अन्त में जब बाबा उठकर चले तो मैंने पूछा, "बाबा ! ये कौन

महात्मा थे ?" उन्होंने कहा, 'याज्ञवल्क्य ?' इसी प्रकार दूसरे दिन भी मैं बाबा के साथ दूसरे महात्मा के पास गया और वहाँ भी बाबासे उनके वे ही प्रश्नोत्तर हुए जो मेरे मनकी शंकाये थी। उनके विषयमें मैंने पूछा तो बाबाने बताया, "ये वशिष्ठ हैं।" यह क्रम कई दिनों तक चला। इस प्रकार स्वप्न में ही अनेकों दिन मुझे संतसमागम प्राप्त हुआ और उससे मुझे बड़ी शान्ति मिली।

रामपुर में

इलाहाबाद से एल० एल० बी० पास करके मैंने रामपुर में वकालत आरम्भ की। एक बार ऐसा हुआ कि पाँच–सात दिनों तक कचहरी में कोई काम न होने के कारण मैं बाबा के दर्शनार्थ चला आया। रामपुर हाईकोर्ट में अपील में मेरा एक मुकदमा था। उसकी तारीख से एक दिन पहले लौटने के लिये मैंने बाबासे आज्ञा चाहीं। परन्तु आपने कह दिया, "नहीं, मत जाओ सब ठीक हो जायगा।" मैं प्रायः पन्द्रह दिनों तक रह गया। जब लौटकर रामपुर आया तो मालूम हुआ कि मेरी अंनुपस्थिति में जज साहब ने स्वयं मेरी ओर से बहस की और मैं मुकदमा जीत गया हूँ।

निर्वाणके पश्चात् अब भी अनेकों बार स्वप्न में बाबा के दर्शन हुए हैं। वे मुझे प्रायः वेदान्त सम्बधी उपदेश ही करते हैं।



पं० श्रीशोभारामजी शर्मा, प्रिंसिपल, इण्टरकालेज, दादरी

पूज्यपाद बाबाका साक्षात् दर्शन करनेसे पहले मैंने उन्हें स्वप्न में देखा था। आध्यात्मिक ज्ञानपिपासाकी शान्ति के लिये मैं किसी महापुरुषके दर्शन करना चाहता था। इसी उद्देश्यकी पूर्ति के लिये पं० श्रीभूदेव शर्मा प्रिसिंपल एम. ए. कालेज, बबराला मुझे श्रीअच्युतमुनिजी के पास ले जा रहे थे। अथवा यों कहिये कि मैं ही उनके साथ जा रहा था। ऐसी विचित्र बात हुई कि प्रस्थानके दिन ही प्रातःकाल मैंने स्वप्न में देखा कि श्रीगंगाजी के किनारे उज्जवल रेती में पूज्य बाबा विराजमान हैं। भक्तमण्डली उन्हें चारों ओर से घेरे बैठी है और वे मुझसे कह रहे हैं, "तू उधर कहाँ जा रहा है ? इधर आ।" इसके पश्चात् मेरी निद्रा खुल गयी। स्वप्न तो भंग हो गया, परन्तु मुझे उसकी पूरी स्मृति थी। मेरा चित्त बाबाकी ओर आकर्षित हो गया। विचारधारा बदली और साथ ही गन्तव्य स्थान बदल गया। यद्यपि हम दोनों का प्रस्थान एक ही काल में एकही साथ हुआ, तथापि वे अच्युतमुनिजीके पास गये और मैं कर्णवास बाबाके पास पहुँचा। जाकर ठीक वही सब दृश्य देखा जो स्वप्न में देखा था। वही गंगाजीकी उज्जवल रेती, चारों ओर बैठी हुई भक्तमण्डली और उसके मध्य में काषायवस्त्र धारण किये पूज्य बाबा। उनका मुखमण्डल ब्रह्मज्ञान के तेज से देदीप्यमान था।

बाबाका दर्शन करके चित्त प्रसन्न और गद्गद् हो गया। जब मैंने प्रणाम किया तब बाबा बोले, "अरे भैया! अब तक तू कहाँ था? मैं तो तुझे बहुत दिनों से याद कर रहा था।" इससे और भी अधिक प्रसन्नता हुई। बाबाने इस प्रकार मुझपर कृपा की और अन्ततक विशेष कृपा रखी। यही उनका प्रथम दर्शन था। इसके बाद अनेकों बार जब जहाँ वे होते मैं उनके दर्शनों के लिये जाता, उनके सत्संग से लाभ उठाता और उनकी छत्रछाया का अनुभव करता था।

पहले बहुत वर्षों तक मैं दुग्धपान और फलाहार किया करता था। अन्न नहीं खाता था, ऐसा कई बार हुआ कि बाबा के पास मिष्ठान्न और फल दोनों आये हैं। वे मिष्ठान्नको तो बाँट देते और जब कोई पूछता, "महाराजजी! ये फल रखे हैं" तो कह देते–"इन्हें रख दे, शोभाराम आता होगा" और उसके थोड़ी देर पश्चात् ही मैं पहुँच जाता। वे दूरदर्शन सिद्धि द्वारा पहले ही जान लेते थे कि कौन मेरे पास आ रहा है, और तदनुसार व्यवस्था कर लेते थे।

एक बार मैंने बाबासे प्रार्थना की कि आपके पास हजारों लोग आते हैं। आप किसी ऐसी संस्थाका निर्माण करें जिससे लौकिक क्षेत्रमें उन्नति और कोई विशिष्ट कार्य हो। परन्तु बाबा की रुचि तो आध्यात्म विद्या की ओर ही अधिक थी। अतः उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नही दिया। परन्तु उनकी कृपा से मेरी तो परमार्थज्ञान और लौकिक अभ्युदय दोनों ही की आकांक्षायें पूर्ण हो गयीं।

बाल्यकाल में जब मैं पढ़ता था मेरी इच्छा एम० ए० पास करने की थी। मैं बाबा के पास था, उस समय लोग मुझे बुलाने के लिये आये। तब बाबाने उनसे कह दिया, "तुम लोग जाओ। यह एम० ए० पास करेगा।" उनके वचन सत्य हुए, मैंने एम० ए० पास कर लिया। अध्ययनकालमें मैं

अपने अलमस्त स्वभाववश खेतों में या नहरके किनारे यों ही पड़ा रहता था। परीक्षा के दिन समीप आजाने पर भी विशेष ध्यान नहीं देता था। उस समय स्वप्न में या तन्द्रावस्था में देखता बाबा कह रहे हैं "यों क्यों पड़ा है? उठ खड़ा हो, परीक्षा के दिन सिर पर हैं। देख अमुक पर्चे में अमुक–२ प्रश्न आयेंगे, उन्हें तैयार कर ले।' बस मैं उठ कर उन प्रश्नों के उत्तर याद कर लेता। आश्चर्य की बात यह होती कि उस पर्चे में ठीक वे ही प्रश्न आते और मैं पास हो जाता।

अन्य लोग प्रायः सत्संगमें बैठकर बाबा से प्रश्नोत्तर करके शंका–समाधान करते थे परन्तु मैं कभी उनसे कोई प्रश्न नहीं करता था। मुझे जो कुछ पूछना होता उसका उत्तर वे सर्वदा स्वप्न में ही दे दिया करते थे। गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वका उपदेश भी वे स्वप्न में ही करते थे। तभी नहीं, आज भी जब कि उनका पाञ्चभौतिक शरीर हमारे चर्मचक्षुओं के समक्ष नहीं है जीवन की विषम परिस्थितियों में मुझे जब–जब प्रकाश की आवश्यकता होती है, वे अपना समझकर कृपापूर्वक मेरा पथप्रदर्शन करते हैं। लोग उनका पत्र पुष्प एवं माला आदि से पूजन करते थे, परन्तु मैं न तो उनका पूजन करता था और न इन बातों में मेरी आस्था ही थी। अलग एकान्त में अथवा नहर के किनारे चला जाता, ध्यान में बैठता और वे वहीं ध्यान में ही मेरे मन का समाधान कर देते। कहते, "जब जगत् ही मिथ्या है तो पूजनादि व्यापार भी तो वैसा ही है, तू उसमें आस्था करके क्यों विचार करता है?"

एक बार बाबा विचरते हुए कहीं जा रहे थे। उस समय उनके साथ केवल मैं ही था। सायंकालमें उन्होंने एक वट वृक्षके तले ठहरने का विचार किया। समीप में ही एक कुँआ था। मुझसे कहा, "जा कमण्डलु में जल भर ला।" मैंने कमण्डलु ले जाकर कुँए में लटकाया, परन्तु जल खींचते समय न जाने वह कहाँ फँस गया। ऊपर खींचता तो ऊपर नहीं आता और नीचे छोड़ता तो नीचे नहीं जाता। आखिर मैंने रस्सीको ईंटसे दबाकर बाबा

के पास जाकर सब हाल कहा। इतने ही में एक साँड़ गर्जता हुआ तेजी से मेरी ओर दौड़ा। बाबा बोले, "आँखें मूँद ले।" मैंने तुरन्त आँख बन्द कर लीं। जब खोली तो साँड़का कहीं पता नहीं था। फिर वटवृक्ष के पत्ते और डालियाँ इस जोर से खड़खड़ाये मानों उन्हें कोई जोर से हिला रहा हो। बाबा बोले, 'भैया! यहाँ कोई ब्रह्मराक्षस रहता है। उसीने कुएँ में कमण्डलु फँसा रखा है, वही साँड़ बनकर आया था और वही अब पत्ते खड़खड़ा रहा है। तुम जाओ कमण्डलु भर लाओ।' अब उनके सानिध्यमें मुझे कोई भय नहीं था मैं गया और कमण्डलु भर लाया।

जिस दिन बाबा ने अपना पञ्चभौतिक शरीर त्यागा था उस दिन मैं एम० ए० की परीक्षा दे रहा था। एक पर्चा हो चुका था, तब प्रातःकाल 'स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया और बोले, 'बेटा! तू परीक्षा दे रहा है, पर मैं अब चलता हूँ।" मैं यह नहीं समझ सका कि बाबाके इस कथनका क्या अभिप्राय है। दूसरे दिन समाचारपत्रमें पढ़ा कि बाबा का निर्वाण हो गया। तब मैंने बाबा के उस वचन का रहस्य समझा और मुझे महान् दुःख हुआ। उनके चरणों की छत्रछाया में जाकर हम जिस आनन्द को प्राप्त करते थे। उसका सौभाग्य अब छिन गया। संतोष की बात इतनी ही है कि उनकी कृपादृष्टि अब भी हमपर ठीक वैसी ही है जैसी पहले थी। जब कभी उद्विग्नताका अवसर आता तो बाबा स्वप्नावस्था में कहते "बेटा! जगत् मिथ्या है तो क्या ये दुःख के निमित्त मिथ्या नहीं है। तुम इन परसे आस्था हटा लो।" अब भी जब कभी लौकिक कार्यक्षेत्र से जी ऊबता है, उसे छोड़ना चाहता हूँ तब वे यही आज्ञा करते हैं कि तुम इसे छोड़ने की इच्छा छोड़ दो और सुख दुःख दोनोंके साक्षी बनकर रहो।



श्रीशम्भूनाथजी वकील जयपुर

आज पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें अपने भाव प्रकट करने से पूर्व मैं यह लिख देना चाहता हूँ कि इस समय मेरा मन मुझको धिक्कार रहा है। पूर्वकाल में अमृतमय चन्द्र जिस प्रकार वर्षोंतक समुद्र में रहा, परन्तु मछलियाँ उसे अपने ही समान कोई जलजन्तु समझकर उससे कोई लाभ नहीं उठा सकीं उस अमृतसरोवर के समीप रहकर भी उन्हें पूर्ववत् मरणभय बना ही रहा, उसी प्रकार हम पामर जीव भी श्रीमहाराजजी की असीम अनुकम्पा से कोई लाभ न उठाकर संसारी सुखों के पीछेही दौडते रहे , उनकी कृपासे तो हम सदा के लिये इस जन्म–मरणरूप ससार चक्रसे मुक्त हो सकते थे। अब यदि आपके प्रयास से उनके सदुपदेश और सस्मरणों का संग्रह हो गया तो निश्चित ही श्रीमहाराजजी के भक्तोंके लिये यह मायारूपी समुद्र को पार करनें के लिये एक सुदृढ़ नौका के समान होगा।

सच्ची बात तो यह है कि श्रीमहाराजजीके एक–एक रोम से जैसा प्रेम, दया और करुणाका स्रोत प्रवाहित होता था वैसा अपनी सत्तर वर्ष की आयु में मैंने तो किसी अन्य व्यक्ति में देखा नहीं। आप पूर्ण ज्ञानी और पूर्ण अनुभवी ही नहीं प्रत्युत पूर्ण परब्रह्मकी साकार मूर्ति ही थे तथापि आपका प्रत्येक क्षण संसारी पुरुषों के उद्धार के लिये ही लगता था। अन्यथा उनका ऐसा क्या प्रयोजन था जो वे प्रातःकाल तीन बजे से रात के ग्यारह–बारह बजे तक अपने शरीर की कुछ भी परवाह न करके निरन्तर सत्संग का सदावर्त्त लगाये रखते थे।

एक बार किसी ने यह प्रश्न किया कि संसार में विज्ञानवादी एकसे एक बढ़कर चमत्कार दिखा रहे हैं; जिससे लोग नास्तिक होते जा रहे हैं। आध्यात्मिक नेता लोग भी ऐसा कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते कि जिससे संसारी मनुष्य उधर आकर्षित हों। उसका उत्तर मिला कि विज्ञान से तोप और अणुबमों का अविष्कार हुआ, जिनसे क्षणभर में लाखों जीव नष्ट हो सकते हैं। पर ज्ञानी तो प्रत्येक क्षण में लाखों नहीं, करोड़ों ब्रह्माण्डों की सृष्टि और संहार करता है। उसे ऐसी क्या अपेक्षा है जो इस स्वप्नवत् संसार के अपने संकल्प से उत्पन्न किए जीवों को सन्तुष्ट करने के लिए अपने निजस्वरूपसे उतरकर अज्ञानी जीवों की तरह संसार को सत्य माने और इसकी सहज प्रवृत्तिमें हेर–फेर करने का प्रयास करे। वह तो अणुबम बनानेवालों में भी अपनी ही शक्ति देखता है।

फिर प्रश्न हुआ कि ज्ञानी भले ही अपनी ही शक्ति देखता हो परन्तु साधरण जीवों का ऐसा विश्वास कैसे हो सकता है? इसका उत्तर मिला कि यदि कोई आँखों से पट्टी बाँधले और सामने रखी वस्तुको न देख सके तो इसमें किसीका क्या दोष? इच्छा और वासनाकी पट्टी हटाकर देख लो कि तुम्हारे सिवा क्या और भी कोई ऐसी शक्ति हो सकती है जो एक तिनके को भी इधर से उधर कर सके।

पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें सबसे पहले मैंने श्रीशोभाराम नामके एक सज्जनसे सुना था, जो उन दिनों मेरे यहाँ ही रहकर विद्योपार्जन करते थे। उनके छोटे भाई चिन्तामणिजी भी, जो इस समय दिल्ली प्रदेश विधान सभा के सदस्य हैं, मेरे ही यहाँ रहते थे। इन दोनों के मुखसे श्रीमहाराजजी की बहुत महिमा सुनकर मैंने सोचा कि हिन्दुओं में अपने

गुरु और पूज्य पुरुषोंके गुणोंको बहुत बढ़ा–चढ़ाकर कर क़हने की प्रथा तो है ही, इसीसे ये इनका उतना गुणगान करते हैं। कुछ दिनों पश्चात् मेरे ही घर रहने वाले श्रीशंकरलाल नाम के एक विद्यार्थी, जो अब स्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं शोभारामजी के साथ पूज्य महाराजजीके दर्शनार्थ गये। शंकरलालजी एक होनहार नवयुवक हैं–इसमें मुझे कभी कोई सन्देह नहीं हुआ। परन्तु जब वे भी वहाँ से लौटने पर बाबा की भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे तो मेरे चित्त में यही विचार हुआ कि यह सीधा–सादा लड़का शोभारामजी की लंबी–चौड़ी बातोंसे प्रभावित हो गया है।

पर यह एक बड़ी ही शुभ घड़ी थी, क्योंकि तभी से मेरे चित्तमें भी श्रीमहाराजजी के दर्शनों की लालसा उत्पन्न हो गयी। जब मैं उनके दर्शनों के लिए गया तो पता नहीं, यह उन्हींका कोई चमत्कार था या मेरा सौभाग्य कि उनकी प्रेममयी मूर्ति से प्रायः सौ पग दूर रहने पर ही मेरा चित्त व्याकुल हो उठा और मुझ ही को धिक्कारने लगा। कि ऐसे महापुरुष के विषय में तूने क्यों कोई सन्देह किया। उनके दर्शनमात्रसे सब प्रकार की संसारी चिन्तायें, वासनायें और रागद्वेषादि दोष हवा हो जाते थे। यह मेरा ही नहीं उनके पास जानेवाले सैकड़ों–हजारों व्यक्तियों का अनुभव है। वहाँ पहुँचने पर उनके मुख से निकलते हुए जो शब्द कानों में पड़ते थे उनका हृदयपर विद्युत्के समान प्रभाव पड़ता था। ऐसा तो कभी नही देखा गया कि वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हुए हों। दूसरोंको वे जो कुछ उपदेश करते थे उसे कई गुना अधिक अपने आचरण से चरितार्थ करके दिखा देते थे। यदि कोई आश्रमवासी किसी अन्य व्यक्ति की शिकायत करता और आपके सामने उसके अवगुणों की चर्चा करने लगता तो आप उसी को डाँट देते। इसका परिणाम यह

होता था कि दोषी को स्वयं ही अपने अपराधके लिए पश्चात्ताप होता और वह आपके समक्ष अपना दोष स्वीकार कर लेता था। तब आप हँसकर बड़े प्रेमपूर्वक उससे कहते थे, "भैया ! मैं यह सब कुछ जानता था।"

मुझे सबसे पहले आपके दर्शनों का सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ जब आप ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी के साथ प्रयागकी पञ्चकोशी परिक्रमा कर रहे थे। उस यात्रामें मैं आपके साथ तो नहीं रह सका, तथापि मोटरद्वारा जाकर नित्यप्रति आपके दर्शन करता रहा। एक दिन मार्गमें मेरे भाई बाबू रामनामाप्रसाद एडवोकेट और मेरे मित्र पं० रामचन्द मिश्रमें इस बातको लेकर विवाद होने लगा कि ब्रह्मचारीके साथ रामलीलामण्डली का रहना उचित है या नहीं। जब हम श्रीमहाराजजीके पास पहुँचे तो वे स्वयं ही इस शंका का इस प्रकार समाधान करने लगे मानों उन्होंने हम लोगों के मुखसे निकला हुआ प्रत्येक शब्द सुना हो। ज्ञानके सामने सिद्धिका महत्त्व मेरी दृष्टि में कभी नहीं रहा और न श्रीमहाराजजी ही कभी अपने वचन या कर्मोंसे उसे कोई महत्त्व देते थे। परन्तु मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि वे पूर्ण ज्ञानी नहीं, साक्षात् पूर्ण परब्रह्म थे। ऋध्दि–सिद्धि उनके चरणों में लोटती थीं और वे कभी उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे।

इसके पश्चात् मुझे कई बार उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रेममयी मूर्ति मेरे हृदयको सबसे अधिक उस समय आकर्षित करती थी। जब वे स्वयं रोटी परोसकर सब लोगों को भोजन कराते थे। सर्वथा अपरिचित पुरुषों और लंगड़े–लूले भिखारियों को भी वे ऐसे प्रेम से भोजन कराते थे कि कोई माता भी अपने एकमात्र पुत्र को क्या करायेगी।

आपने पूछा कि महाराजजीके उपदेशोंका मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। इस विषय में मैं ऐसा मानता हूँ कि मेरे चित्त में इतना

कालापन भरा हुआ है कि पूज्य श्रीमहाराजजी के उपदेशोंको सुननेके पश्चात् भी मुझें संसार से वैराग्य नहीं होता। पर उन्हीं की कृपाका फल है कि जब मेरा मँझला पुत्र मनमोहनलाल मुझसे अलग होकर दो वर्षों तक निरन्तर श्रीमहराजजीकी सेवा में रहा तो मेरा चित्त मोहवश उसे रोकने की जगह प्रसन्न होता था कि मैं न सही मेरा पुत्र तो सन्मार्ग में लग गया। मनमोहनने श्रीमहाराजजीकी सन्निधिमें रहते हुए एक बीमार वृद्धाकी ऐसी सेवा की थी कि पूज्य श्रीमहाराजजीके श्रीमुखसे यह आशीर्वाद निकल गया था—"जा ! तेरी बन गयी।" इस आशीर्वादके फलस्वरूप मन मोहन आज मनमाहेनलाल नही वरन् विरक्त धर्ममें दीक्षित हो गया है। आपकी मुझपर यह महती कृपा है जो आपने मुझे श्रीमहाराजजी के विषय में कुछ लिखनेकी आज्ञा दी है, क्योंकि इसी मिससे मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो रहा है। आज उनकी एक–एक बात को याद करके ऐसा आनन्द होता है, जैसा सम्भवतः ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर भी न होता।

जिस समय श्रीमहाराजजी ने इस क्षणभंगुर शरीर को त्यागा था, उस समय मैं और मनमोहन कलकत्ते में थे। मनमोहन के पास ऐसा व्यापार था जिसमें हजारों रुपयों का लाभ हो सकता था। पर उसका चित्त ऐसा व्याकुल हुआ कि वह उस कार्य को छोड़कर मुझसे वृन्दावन जानेकी आज्ञा माँगने लगा। मैंने बहुत आग्रह किया कि दो दिन बाद चले जाना पर उसने एक न मानी और वह चला गया। मुझे उस समय उसका यह कार्य बुरा तो अवश्य लगा पर पीछे मन ही मन मुझे प्रसन्नता हुई और मैं अपने को धिक्कार कर कहने लगा कि तुम बड़े अभागे हो जो तुम्हारे चित्त में श्रीमहाराजजीके प्रति ऐसा प्रेम नहीं है। महाराज दशरथ ने महर्षि विश्वामित्रजी की आज्ञा का पालन करते हुए

यद्यपि अपने पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण उन्हें सौंप दिये थे, तथापि मोहवश वे मूर्च्छित हो गये थे। परन्तु यह श्रीमहाराजजी के दर्शन और उपदेशोंका ही चमत्कार था कि मैंने मनमोहनको उनकी सेवामें जानेसे कभी नहीं रोका। मुझे उसके साधु हो जाने पर भी कोई दुःख नहीं हुआ और जब मेरे अन्य पुत्रों ने उसे पुनः घर गृहस्थी में लाने का विचार प्रकट किया तो मैंने सर्वदा उनके ऐसे प्रयत्न को रोका।

श्रीमहाराजजीका अन्तिम समय भी बड़ा चमत्कारी था। उनके शरीर से पंसेरियों खून निकल चुका था, किन्तु जब डाक्टरों ने इञ्जैक्शन द्वारा एक क्षणके लिये उन्हें सचेत किया तो उस समय उनके मुखारविन्द से जो शब्द निकले वे भी अत्यन्त विचारणीय हैं। उनका सर्वदा यही उपदेश था कि संसार में कठोर से कठोर परिस्थिति उपस्थिति होने पर भी घबड़ाना नहीं चाहिये। यही बात उन्होंने अपने उन अन्तिम शब्दों से भी व्यक्त कर दी। इतने गहरे घाव होनेपर भी न तो उनके मुखसे कोई वेदनासूचक शब्द निकला और न अपने घातकके प्रति कोई रोष ही हुआ; बस, केवल यही कहा कि 'यह क्या हो रहा है ? मानों इस घटना से सर्वथा तटस्थ रहकर वे यह सूचित कर रहे थे कि बड़ीसे बड़ी वेदना होने पर भी तत्वज्ञको रोना, चिल्लाना, घबड़ाना या खेद प्रकट करना उचित नहीं है उसे तो इसी प्रकार उदासीन रहना चाहिये जैसे एक सूखा पत्ता अपनी ओर से किसी प्रकार का प्रतिरोध न करके जिधर वायु उड़ा ले जाती है उधर ही चला जाता है।



श्रीछैलबिहारीलाल अस्थाना एम० ए०

होलीपुरा (आगरा)

मुझे बाल्यकाल से ही ध्रुव–प्रह्लाद आदि के चित्र और चरित्र बहुत प्रिय थे। मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि मुझे भी कोई प्राचीन कालिक महर्षि गुरुरूप में प्राप्त हो जायँ तो मैं भी वन में निवास कर घोर तपस्या एवं भगवद् भजन करके प्रभु को प्राप्त करूँ। जब १९३१–३२ में मैं आगरा कालेज में इण्टर क्लासमें पढ़ता था उस समय मेरे पास मोहनलाल नामका एक ब्राह्मण रसोई बनाने के लिये रहता था। वह छर्राके पास भुड़िया नामके गाँव का रहने वाला था। पूज्य श्रीमहाराजजी इसके गाँव में जाया करते थे उस पहली बार मुझे श्रीमहाराजजीका मौखिक परिचय मिला। फिर सौभाग्य से सन् १९३२ के जून मास में आप हाथरस पधारे और विशनदयाल के बाग में ठहरे। दोपहर को भिक्षा के लिये आप नित्यप्रति नगर में पधारते थे। वहीं ला० शंकरलालजी के मकान पर मुझे आपका पुण्य दर्शन और परिचय प्राप्त हुआ तथा उसी वर्ष जुलाई ७ वृहस्पतिवार को आपने मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ किया। हाथरस से आप कर्णवास पधारे और वहाँ पहुँचकर भाई सुखरामजी से लिखवाकर मुझे दस उपदेश भेजे, जिनमें से कुछ ये हैं–

१. संसार को स्वप्नवत् समझो।

२. नूतन बालवत् स्वभाव रखो।

३. गंगाप्रवाहवत् हरसमय प्रयत्नशील रहो।

४. भगवान् को सदैव अपने समीप समझो।

गुरुदेव सदैव पैदल ही यात्रा करते थे और मुझे दशहरा, बड़े दिन और गर्मी आदिकी प्रायः प्रत्येक छुट्टी में उनके साथ चलने का सौभाग्य प्राप्त होता था। जब कभी उनके पास पहुँचनेमें मुझे देरी हो जाती तो वे पूछते थे, क्योंरे ! अब तक कहाँ रहा ?' हम अबोध बालकों पर उनका कैसा स्नेहमय लाड़–दुलार था !

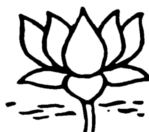
बड़े–बड़े उच्चकोटि के सन्त और विद्वान उनके सत्संग के लिये लालायित रहते थे। आप प्रातः ३ बजे से ४ बजे तक सत्संग के लिये बैठते थे। उस समय जिज्ञासुगण आपके पास बैठ जाते और वे जैसा प्रश्न करते थे तुरन्त उसका समाधानकारक उत्तर पाते थे। आपके उत्तरों में केवल शास्त्रवाक्यों को ही नहीं दुहराया जाता था, वह आपके अनुभवकी बात होती थी। शास्त्रोंमें जो सिद्धान्त निहित हैं उनको अनुभव द्वारा मथकर और उनका मक्खन निकालकर आप सरल भाषा में दृष्टान्तपूर्वक जिज्ञासुओं के आगे प्रस्तुत कर देते थे। आपकी युक्तियाँ अकाट्य होती थीं और आप कभी कोई पक्ष लेकर बात नहीं करते थे। आप तो डंकेकी चोट यही घोषित करते थे कि शास्त्र में इसकी बाबत क्या लिखा है, मैं नहीं कह सकता, किन्तु मेरी समझ में तो ऐसी बात है। आपका प्रत्येक उपदेश ऐसा होता था जिससे सभी मत और सम्प्रदायोंके लोग लाभ उठा सकते थे और जिससे मानवमात्रका कल्याण होना निश्चित था। किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय की निन्दा करना आप जानते ही नहीं थे। मैंने अपने सत्रहसाल के सम्पर्क में उन्हें कभी पूरे कण्ठ से भाषण करते नहीं सुना। इनकी दिव्य वाणी सर्वदा बहुत ही महीन और कोमल स्वर में

सुनायी देती थी। लोभ और क्रोधका तो उन्हें स्पर्श भी नहीं हुआ था। मैंने उन्हें कभी किसी पर क्रोध करते नहीं देखा और न सुना। आप कोमलता और उदारता की मानों मूर्ति ही थे। बड़े से बड़े अपराध को क्षमा कर देने में ही आपको प्रसन्नता होती थी। तथा भूखों को खिलाने और दुखियों को सहायता देनेमें ही आपको आनन्द होता था। संसार के दुःखी जीव आपके चरणों की शीतल छाया में पहुँचकर परमशान्ति लाभ प्राप्त करते थे। मैं अपने निजी अनुभवकी बात कहता हूँ कि जब कभी कालेज की परेशानियों से तंग आकर छुट्टी में श्रीमहाराजजीके पास पहुँचता तो मानों एक नवीन सृष्टि में ही पहुँच जाता था। जब वहाँ से लौटता तो मेरा हृदय आनन्द से परिपूर्ण और चिन्ताओं से सर्वथा मुक्त रहता था। उनके चरणों में पहुँचने के लिये चित्त सर्वदा ही अत्यन्त लालायित रहता था। चिन्ताओं के समय उनके चरणोंदकपान करनेसे भी एक अलौकिक आनन्द और शान्ति का अनुभव होता था।

एक बार सन् १९४४ के अप्रैल मास में श्रीमहाराजजी ग्वालियर के पास करह में एक उत्सव में पधारे थे। वहाँ से लौटते समय वैशाख कृ० ११ सं २००१ वि० तारीख १८ अप्रैल को आप अपने भक्तपरिकर सहित मेरे यहाँ होलीपुरा (आगरा) पधारे थे। यहाँ पाँचदिन कुटियापर विराजे। उन दिनोंके कथा, कीर्तन और उपदेशों को यहाँ के लोग अब तक याद करते हैं।

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी एक विश्व नागरिक थे। उनके अनुभव और अभ्यास अद्वितीय थे। वे जो कुछ कहते थे। सम्पूर्ण मानवसमाजके लिये कहते थे। हमें ऐसे महात्मा बहुत कम मिलते हैं जो एक वैज्ञानिककी भाँति अनुभव की प्रयोगशाला में परीक्षित आध्यात्मिक सिद्धान्तों को बताने वाले हों। श्रीमहाराजजी उन्हीं दिव्य रत्नोंमेंसे थे।

हम याज्ञवल्क्य आदि के नाम सुनते हैं, परन्तु श्रीमहाराजजी तो प्रत्यक्ष याज्ञवल्क्य अथवा दत्तात्रेय जान पड़ते थे। उनका स्पर्श सांसारिक चिन्ताओंको हर लेता था, उनकी वाणी से शान्तिकी स्रोतस्विनी प्रवाहित होती थी और उनकी दृष्टि आध्यात्मिक रहस्योंकी वर्षा करती थी। मुझे ऐसे दिव्य महात्मा के दर्शन तो श्रीमहाराजजी में ही हुए जिसमें गुणातीत और स्थितप्रज्ञ के सब लक्षण मूर्तिमान् होकर प्रकट हुए हों। यदि वे विदेशों में वेदान्तसिद्धान्त को समझाते तो स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ से भी बढ़कर सफलता प्राप्त करते। किन्तु उनका तो सिद्धान्त था—भाषण या उपेदश कभी न करना, केवल जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देना ही वे उचित मानते थे। उसमें भी यदि उन्हें कोई कुतर्क दिखाई देता तो शान्त हो जाते थे रोष कभी नहीं करते थे। आज उनसे बिछुड़कर हम सब प्रायः आश्रयहीनसे हो गये हैं।



पं० श्रीजगदीशप्रसाद्जी पुजारी, भिवानी

सं० १६६१–६२ में मनमें यह जिज्ञासा हुई कि किसीको गुरु बनावें। संकीर्तनप्रेमी पूज्य घनश्यामदासजी (उपनामराधेश्यामजी) से सुना कि श्रीउड़िया बाबाजीकी पूजा शालिग्राम की तरह होती है। इच्छा हुई कि दर्शन करूँ। दिल्ली की नवलप्रेमसभाके श्रीरामचरितमानस पाठ में मैंने महाराजजी के चित्रका दर्शन किया। उससे उनके दर्शनों की इच्छा और भी उद्दीप्त हो गयी। सं० १६६३ में गीताप्रेस गोरखपुर में अखण्डसंकीर्तन यज्ञका आयोजन किया। उस समय मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। वहाँ श्री केदारनाथ (कंछी) से परिचय एवं प्रेम हो गया। उनसे महाराजजी की गुणावली सुनी तो वहीं से दर्शनों के लिये चलने का निश्चय कर लिया। श्रीमुनिलालजी और रघुवीरसिंहजी के सत्संगसे भी बाबा के प्रति मेरे प्रेम की पुष्टि हुई और मैंने उनके चित्रपट स्वरूप की पूजा प्रारम्भ कर दी। गोरखपुर में श्रीरघुवीरजी तथा केदारनाथजी के साथ ही बाबा के पास चलने का निश्चय हुआ था। परन्तु प्रारब्धवश हम सब बिखर गये। इससे मन बेचैन हो गया। ऐसी अवस्था में रात्रि को स्वप्नमें श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और कहा, "परवा मत करो। अकेले चले आओ।"

तब भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दारसे आज्ञा ले मैंने सेहता में श्रीमहाराजजी के दर्शन किये। चित्त आनन्द से गद्गद् हो गया। पूजन किया और मन्त्र दीक्षाके लिये प्रार्थना की। परन्तु उन्होंने

आनाकानी कर दी। रात्रिको सोते समय मैं रो पड़ा। सोचने लगा, ''देखो, कहाँ खाना, कहाँ सोना, काम तो कुछ भी नहीं बना।' प्रातःकाल होते ही श्रीमहाराजजी ने मुझे बुलाया और मेरे बिना कहे ही मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ कर दिया। उस वर्ष गुरुपूर्णिमा कर्णवास में होने वाली थी। वहाँ आने के लिये आज्ञा दी।

मैं कर्णवास गया। वहाँ रात्रिमें स्वप्न में तीन बार यह आवाज सुनायी दी–''अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।'' प्रातःकाल श्रीमहाराजजी से इसका तात्पर्य पूछा। उन्होंने कहा, ''अहिंसाव्रत धारण करो।'' फिर उन्होंने मुझे नित्यप्रति छ : हजार रामषाःक्षर मन्त्रका जप करने और श्रीरामायण तथारामतापनी उपनिषद्का पाठ करनेकी आज्ञा दी। इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि नित्यप्रति विनयपत्रिकाका एक पद पाठ किया करो तथा एकादशी, रामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं शिवरात्रिका व्रत किया करो। उनकी उस आज्ञाका यथासाध्य पालन होता आ रहा है। यदि मुझे उनकी शरण न मिली होती तो मेरा जीवन कैसा होता ? यह सोचते ही मन घृणा से भर जाता है। उन्होंने कृपा करके मुझे गहरी खाइयों से बचाया है। श्रीमहाराजजी की गुण गरिमाका मैं क्या वर्णन करूँ ? उन जैसा तो मुझे कोई दिखायी ही नहीं दिया–

'अस सुभाव कहुँ सुना न देखा।'

हिन्दुस्तान–पाकिस्तानका बटवारा होने के समय पंजाब में बड़ा साम्प्रदायिक संघर्ष हुआ था। मैं उसी समय कानपुर में था। मैंने समाचारपत्रों में पढ़ा कि भिवानी में हिन्दू–मुसलमानों में बड़ी घमासान लड़ाई हुई है। हमारा मन्दिर मुसलमानों के समीप पड़ता है। अतः चित्त चिन्तित हो गया रात्रि में ज्वर भी हो आया। 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः'

इस श्लोकका पाठ करते हुए श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की। आँख लगनेपर स्वप्न में देखा कि भिवानी में मन्दिर में सामने श्रीमहाराजजी वीरभाव से खड़े कह रहे हैं, "चिन्ता मत करो।" दूसरे दिन मैंने वहाँ पहुँचकर देखा, "मन्दिरके सामने का मकान तहस–नहस हो गया है, परन्तु हमारा मन्दिर और सारा परिवार प्रभुकृपा से सुरक्षित है।

श्रीमहाराजजीकी कृपा अब भी पूर्ववत् है। वे कभी–कभी स्वप्न में मेरे साधन की बात पूछते हैं, आशीर्वाद देते हैं और प्रसादी माला भी देते हैं। उनका वरद हस्त अब भी ज्योंका त्यों मेरे सिर पर हैं।



पं० श्रीशीतलदीनजी शुक्ल, फर्रुखाबाद

बन्दौ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अञ्जलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ।
संत सरल चित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण-रति देहु।।

परममंगलमय, पूज्यपाद, सर्वभूतहितरत, प्रातःस्मरणीय श्री १००८ श्री उड़ियाबाबाजी महाराज के पावन पादपद्मों में भूरिभूरि साष्टांग दण्डवत् करते हुए निज गिरा पावनकरनकारण उनकी अनन्त अपार अवर्णनीय गुणावली का यत्किंचित् अंश अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार लिखने का प्रयास करता हूँ।

उपर्युक्त दोहे में कहा गया कि संत समानचित्त सरल चित्त, और जगतहितकर्ता हुआ करते हैं। यह उनका सहजस्वभाव है परम पूज्य संत शिरोमणि श्रीउड़िया बाबाजी महाराज में तो सन्तों के सभी लक्षणों का अद्भुत सामाञ्जस्य था। उनकी समान एवं सरलचित्तता और जगत्–हितैषिता तो सर्वदा प्रत्यक्ष देखने में आती थी। शत्रु, मित्र उदासीन कैसा भी व्यक्ति उनके सम्मुख आता सभीके प्रति आपका अत्यन्त कृपा एवं स्नेह से भरा सद्व्यवहार होता था। सर्वप्रियताकी तो आप साक्षात् मूर्ति ही थे। 'शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः इस गीतोक्ति के आप मूर्तिमान् उदाहरण थे। ऋद्धि–सिद्धि सब आपकी अनुगामिनी रहती थीं। यदि एकान्त जंगल में भी आसन लगाकर बैठ जाते तो वहाँ भी थोड़े ही काल में सज्जनों का समागम स्वतः जुट

जाता था, ठीक वैसै ही जैसे सरोवरों में खिले हुए कमलों को देखकर उसके आस–पास मधुपगण मँडराने लगते हैं। आपकी प्रसन्नमुखाम्बुजश्री सर्वदा एकरस रहती थी। सत्संग में पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर स्वरूप आपका वचनामृत पान करने के लिए समागत प्रेमियोंके कर्णपुट सदा सप्रेम उद्यत रहते थे और वे आपका उपदेशामृत पान करते करते अघाते नहीं थे। सब यही चाहते थे 'और सुनें। मैं तो प्रायः यह कह दिया करता था-

'नाथ तवाननशशि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर।
श्रवणपुटन मन पान करि, नहिं अघात मति धीर।।

श्रीमहाराजजी के चारों ओर प्रसाद, फल, फूल, तथा अन्यान्य सुन्दर खाद्य पदार्थों के ढेर लग जाते थे। जंगल में मंगल हो जाता था। यह सब आँखों देखी बातें हैं।

कहेऊँ न कुछ करि युक्ति विशेषी। यह सब मैं निज नयननि देखी।।

जब–जब श्रीमहाराजजी यहाँ (फर्रुखाबाद) पधारते अथवा अवकाश मिलनेपर मैं श्रीपदके दर्शनार्थ वृन्दावन जाता तो आप श्रीमुख से बोल उठते–'पण्डितजी, आ गये। चित्त प्रसन्न तो है। अब ''श्रीरामायणकी कथा होनी चाहिये।'' मुझे बरबस सरकारी आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती। पूज्यपाद का कृपाबल पाकर मैं भी अपनी टूटी–फूटी भाषा में श्रीरामचरितमानसका भावपूर्ण गायन करने लगता। उसमें कभी–२ तो स्वतः ही ऐसा आनन्द आता कि मैं विभोर हो जाता। यह बस उनके पवित्र सान्निध्य का ही प्रभाव था। नहीं तो मुझ अधम, अपावन, दीन बलहीन में यह बात कहाँ? चुम्बकके सहयोगसे यदि कुधातु लोहे में आकर्षण प्रादुर्भूत हो तो इसमें चुम्बक ही कारण होता है न कि लोहा। **'शठ सुधरहिं सत संगति पाई।** पारस कुधातु सुहाई।' यह कथन सर्वदा सत्य ही है।

प्रायः बीस वर्ष हुए मुझे सबसे पहले पूज्यपाद महाराजजी के परम भक्त आदरणीय बाबा रामदासजी और श्रीसियारामजी के मंगलमय दर्शन यहाँ (फर्रुखाबादमें) गंगातट पर हुए थे। वे विचरते हुए अकस्मात् यहाँ आ गये थे। गंगातट पर दूलाराम की विश्रान्तपर टिके हुए थे। मुझे उन युगल महात्माओं के समागम से बड़ा सुख मिला। उनके मुख से निकले हुए ये वाक्य मुझे अब तक स्मरण हैं—

खुदा खानावदोशोंकी करे खुद कार सामानी ।
नया मंजिल नया बिस्तर नया दाना नया पानी ।।
युगल सरकार सिर पर हैं तसल्ली दिलको रहती है ।
किसी की नाव पानी में मेरी रेती में चलती है ।।

इन्हीं महात्माओं के द्वारा परम पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का सुयशसौरभ श्रवणगोचर हुआ था। तभी से यह लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती रही कि 'श्रीमहाराज चरण जब देखौं। तब निज जनम सुफल करि लेखौं। फलतः प्रभु की अहैतुकी कृपा से बाँध के सुविशाल महोत्सव में सम्मिलित होने का सुयोग मिला। यहाँ के प्रेमीजनों के साथ वहाँ पहुँचा। वहाँ का पावन वायुमण्डल, श्रीभागीरथी का सुहावन तट आश्रमकी पवित्रता, अखण्ड हरिनाम संकीर्तन और संतों का समागम सभी बातें एक साथ देखकर सहसा स्वर्गीय सुख का अनुभव होने लगा। वहीं सर्वप्रथम परम पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के दर्शनों का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। केवल दर्शन ही नहीं, पारस्परिक कुशलप्रश्न और सम्भाषण का भी सौभाग्य मिला। बस, मैं तो कृतकृत्य हो गया मेरी मनोभिलाषा पूर्ण हो गयी। अधिक क्या कहूँ—

विधिहरि हर कवि कोविद बानी।कहत साधु महिमा सकुचानी।।
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुनगन जैसे।

श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित, फर्रुखाबाद

प्रायः पच्चीस वर्षकी बात है हमारी दूकान कुछ आर्थिक संकटमें थी। उस समय दूकानदारोंका ध्यान हमारी ओरसे बिगड़ गयाथा और वे हमसे अपना रुपया माँग रहे थे। इस तकाजे के कारण चित्त बहुत घबड़ाया और मेरे हृदयमें यह प्रेरणा हुई कि मैं किन्हीं महात्मा से मिलूँ। वे ही हमें इस संकट से उबार सकते हैं। इन दिनों पूज्यपाद श्रीमहाराजजी फर्रुखाबाद आये हुए थे। मेरे एक कांग्रेसी मित्र श्रीचन्द्रसेनजी भी उस समय मेरे ही पास रहते थे। कांग्रेसका कार्य करने के कारण उन्हें कई बार जेलकी यात्रा करनी पड़ी थी। अब उनका विचार संन्यास ग्रहण करने का हो रहा था। वे गुरुकी खोजमें थे। जब हमने श्रीमहाराजजी के विषय में सुना तो हम दोनों ही उनके दर्शनार्थगये। यही श्रीमहाराजजी से हमारी प्रथम भेंट थी। पं० चन्द्रसेनजीने जब अपना संन्यास ग्रहण करनेका संकल्प व्यक्त किया तो श्रीमहाराजजी ने उन्हें मना किया। परन्तु उनके विशेष आग्रह करने पर उन्हें अपने साथ रखना स्वीकार कर लिया। चन्द्रसेनजी अच्छे बड़े जमीदार थे और उनके एक पुत्र भी था। वे श्रीमहाराजजी के साथ प्रयाग गये। वहाँ उस समय अर्धकुम्भीका पर्व था। इसी अवसर पर श्रीमहाराजजी की अनुमति से उन्होंने दण्ड ग्रहण किया। उनका नाम हुआ स्वामी आत्मबोध तीर्थ। वे फर्रुखाबादी दण्डी स्वामी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

एकबार श्रीमहाराजजी यहाँ गंगाजीके किनारे शाहबिहारी जी विश्रान्त नामक घाटपर विराजमान थे। उन दिनों गंगाजीके किनारे ही एक मुसलमानोंका मेला होने वाला था। उनके घाटपर जानेकी बात दो–तीन दिनोंसे चल रही थी। मेलेका दिन तो था शुक्रवार, किन्तु वे ३–४ दिन पूर्व सोमवार को ही पहुँच गये। हरितालिका का दिन था। उस दिन विशेषरूपसे स्त्रियाँ स्नान करनेके लिये जाती हैं। जो नहीं जा सकतीं उनके रात्रिपूजनके लिये पुरुष ही गंगाजल ले आते हैं। इसी अवसर पर मुसलमानों का एक झुंड घाटपर पहुँचा और उनमेंसे कुछ ने हाथमें तलवार लिये हुए हिन्दुओं को ललकारा। बस, दोनों ओरसे ईंट पत्थर और तलवारों से आक्रमण होने लगे। इस अवसरपर हमने देखा कि श्रीमहाराजजी तनिक भी नहीं घबड़ाये। प्रत्युत उन्होंने मुसलमानोंको बहुत डाँटा तथा एक आदमी के हाथ से बल्लम लेकर उनकी ओर दौड़े भी। उनका वह अद्भुत धैर्य देखते ही बनता था। पीछे लोगों ने विशेष आग्रह कर आपको उस विश्रान्त से लेजाकर दूसरे स्थान पर ठहरा दिया।

(२)

सन् १९४२–४३ की बात है इस वर्षका चातुर्मास्य श्रीमहाराजजी ने फर्रुखाबादमें ही किया था। मैं उस समय आपहीकी कृपा से १० ।७ राजपूत रैजीमेण्ट फतहगढ़का रजिस्टर्ड आर्मी कण्ट्रैक्टर था। मैं सेना को सामान सप्लाई करता था। वहाँ मेरी छः दूकानें थीं। उसी समय पल्टन के क्वाटर गार्ड से एक पिस्तौल और कुछ कारतूस चोरी चले गये। जब सूबेदार मेजर श्रीव्रजनन्दनसिंहको इस चोरी का पता लगा तो बड़े प्रयत्नसे खोज होने लगी परन्तु बहुत ढूँढ़नेपर भी कोई पता न लगा। उस समय यहाँ बारह–तेरह

पल्टनोंका हैडक्वार्टर था। प्रातः सभी अफसर अँग्रेज थे। भारतीय अफसर तो केवल कर्नल करियप्पा थे, जो पीछे भारतके प्रधान सेनापति भी हुए। ऊपरसे विशेष दबाव पड़ने के कारण सूबेदार मेजर बहुत उद्विग्न हुए। उनका उत्तरदायित्व तो था ही। जब उन्होंने यह सब हाल मुझसे कहा तो मैंने उनसे श्रीमहाराजजी की चर्चा की। वे रविवारके दिन मेरे साथ श्रीमहाराजजीके पास आये। ये सूबेदार मेजर रामायण के बड़े भक्त और अयोध्याके प्रसिद्धसंत बाबारघुनाथदासजीके शिष्य थे श्रीमहाराजजीका नाम सुनते ही वे गद्‌गद्‌कण्ठ हो गये और कहने लगे कि मैंने 'कल्याण' में श्रीमहाराजजी के उपदेश पढ़े हैं, मैं अवश्य उनके दर्शन करूँगा।

श्रीमहाराजजी इस समय ला० रामभरोसेलाल रस्तोगीके बगीचेमें ठहरे हुए थे। जिस समय हम पहुँचे आप किसीसे एकान्तमें बात कर रहे थे, अतः हम कुटी के बाहर बैठ गये। जब मेरी आवाज सुनकर आपने हमें भीतर आनेको कहा तो हमने भीतर जाकर आपका चरणवन्दन किया। सूबेदार मेजरको उदास देखकर आपने उनकी चिन्ताका कारण पूछा। उनसे सब हाल सुनकर आपने कहा, 'चिन्ता मत करो। तुम तो रामजीके भक्त हो, रामायण के प्रेमी हो, अतः सब ठीक होगा। अभी कुछ समय अवश्य लग सकता है।' इसके पश्चात् वहाँ कीर्तन आरम्भ हो गया और हम लोग चले आये। इसके प्रायः एक मास पश्चात् सबेरे चार बजेके लगभग स्वप्न में सूबेदार मेजरसे किसीने कहा कि अमुक तारीखको तुम्हारे क्वाटर गार्डपर अमुक सिपाही और जमादार थे। उनमें से एक राजपूत और एक मुसलमान सिपाही ने यह चोरी की है। ऐसा कहकर उनके गालपर बड़े जोरसे थप्पड़ मारा, जिससे उनकी नींद खुल गयी।

स्वप्न टूटनेपर उन्होंने इसी आधारपर खोज प्रारम्भ की। धीरे धीरे सब रहस्य खुल गया और पिस्तौल तथा कारतूस भी मिल गये। इसके एक रात पूर्व मैं श्रीमहाराजजी के पास था। उन्होंने कहा कि तेरे मित्रकी चोरी का पता लग गया है। मैंने कहा, "अभी तो नहीं लगा। मैं तो वहींसे आ रहा हूँ।" तब आप बोले, "अब जब सबेरे तू पल्टन जायगा तब तुझे मालूम होगा।" मैं जब दूसरे दिन आठ बजे वहाँ गया तो सब बात मालूम हुई। मैंने रातकी बात सूबेदार मेजर से कही तो उन्होंने मन ही मन श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया और कहा, "भाई, यह सब उन्हींकी कृपा है हमारा मुँह उजला हो गया, नहीं तो बड़ी बदनामी थी।"

श्रीमहाराजजीकी कृपासे ये सूबेदार मेजर पीछे नागपुरमें विंग कमान्डर हो गये थे। अब वे रिटायर्ड हो गये हैं।

(३)

प्रायः उन्नीस वर्ष हुए श्रीमहाराजजी फर्रुखाबाद पधारे थे। उस समय हमने रास्तेमें ही आपको घेर लिया और अपने स्थान पर लाकर बैण्ड बाजेके द्वारा स्वागत करते हुए आपका पूजन किया बैण्डको सुनकर आप बड़े प्रसन्न हुए। आप लाला रामभरोसेलालके बाग में ठहरे। पन्द्रह–बीस दिन पश्चात् बैण्डके सदस्यों ने आपको अपने यहाँ निमन्त्रित किया। आपने उन्हें आशीर्वाद दिया कि यह बैण्डमण्डल बहुत दिनोंतक चलता रहेगा। उनके शुभाशीर्वादसे वह बैण्ड बाजा अभीतक विद्यमान है। एक बार आपने उसे श्रीहरिबाबाजी के बाँधपर बुलाया था। वहाँ उसने संकीर्तनोत्सव में अच्छी सेवा की। इसके पश्चात् जब श्रीकृष्णाश्रम वृन्दावनका उद्घाटनोत्सव हुआ तब भी उस बैण्ड के सभी सदस्य उसमें सम्मिलित हुए थे। वहाँ समय–समयपर वह उत्सवकी शोभा बढ़ाता था। भण्डारेके दिन आपने

बैण्डमास्टर बलदेवप्रसादको आज्ञा दी कि तुम काठियाबाबा के स्थानपर जाकर वैष्णव महात्माओंके अखाड़ों का स्वागत करो। उस समय सबको नंगे पैर रहना होगा। आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया और सब कार्य बड़ी धूमधामसे समाप्त होने पर सब लोग लौटे।

(४)

प्रयागकी अर्धकुम्भीके अवसर पर, जब आप फर्रुखाबाद होकर जा रहे थे, आपसे श्रीराधेश्याम मिश्रने रात्रिके समय अपने बाग में ठहरनेका आग्रह किया आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर भोजन के लिये आग्रह करने पर आपने पाँच–छः आदमियों का भोजन लाने की आज्ञा दी। किन्तु कीर्तनादि समाप्त होने पर वहाँ प्रसाद पाने वालों की संख्या अधिक हो गयी। आपने जो सामग्री राधेश्यामजी लाये थे उनसे ले ली और उसपर अपनावस्त्र ढककर बाँटना आरम्भ किया। प्रायः अट्ठारह महानुभावोंको भोजन करानेपर भी उसपात्रमें भोजन सामग्री बच रही। यह देखकर मिश्रजी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पीछे पं० बाबूराम और मैं प्रयाग पहुँचे। साथ में ला० भोलानाथ सर्राफ और राधेश्यामजी भी थे। वहाँ आज्ञा हुई कि रामनवमी के अवसर पर अयोध्या आना। मैं पं० बाबूरामजीके साथ वहाँ उपस्थित हुआ रामनवमीके दिन सरयूमें स्नानकर सब लोगों के साथ श्रीमहाराजजी हनुमानगढ़ी की ओर चले। मार्गमें भीड़ बहुत अधिक थी। पुलिस लोगोंको निकलने नहीं देती थी। आपने आज्ञा दी मथुरा प्रसाद और बाबूराम आगे–आगे चलो। हमारे पीछे एक महानुभाव घंटा बजाते चल रहे थे। अन्य सब भक्त 'जय सियाराम जय जय सियाराम' की ध्वनिके साथ कीर्तन करते चल रहे थे। आपके साथ अनेकों गृहस्थ और विरक्त थे। पुलिस ने

किसी प्रकारकी रोक–टोक नही कीं। जब मन्दिर की सीढ़ियोंपर पहुँचे तो जनता ने तुरन्त रास्ता दे दिया। आपका नाम सुनकर पुजारियों ने भी सब यात्रियों को एक ओर करके सबको खूब दर्शन कराये। वहाँसे हम सब लोग रामजन्मस्थान पहुँचे। यहाँ भी पुलिसने कोई रोक–टोक नहीं की। ठीक १२ बजे आरती हुई। उस समयका आनन्द देखते ही बनता था। यहाँ एक सुप्रसिद्ध रामायणी मिले। आपका नाम सुनकर उन्होंने आपका चरणस्पर्श किया और हनुमतनिवासकी ओर एकान्त में बैठकर रामायण की सुन्दर कथा–वार्ता चलायी। प्रायः तीन घंटेतक वे प्रवचन करते रहे। उनका कथन सुनकर श्रीमहाराजजी बहुत प्रसन्न हुए।

तीसरे दिन श्रीमहाराजजी मौनीजीकी छावनीमें गये। मौनीजी अत्यन्त बृद्ध महात्मा थे। इस समय किसीसे मिलते–जुलते नहीं थे। किन्तु जब उनके एक शिष्य ने आपके आने की सूचना दी तो उन्होंने तुरन्त आपको अपने पास बुला लिया। आपके कारण हमें भी उनके दर्शन हो गये। इस समय वे कुछ अस्वस्थ भी थे।

(५)

श्रीवृन्दावनमें महाराजजी के आश्रमका उद्‌घाटनोत्सव था। मुझे वहाँसे पत्रद्वारा आज्ञा हुई कि अमुक तिथितक कुछ स्वयंसेवकोंके सहित उपस्थित हो जाओ। मैं दूसरे ही दिन रात्रिकी गाड़ीसे चल दिया। भीड़ अधिक होनेके कारण सोना बिलकुल न हो सका। दूसरे दिन प्रातःकाल ७ बजेके लगभग आपके श्रीचरणोंमें उपस्थित हो गया। श्रीमहाराजजी ने मुझे कुछ कार्य सौंपा। परन्तु रातकी थकान और जागरण के कारण मुझे चक्कर आने लगे। मुझे बड़ी ग्लानि हुई। डरते–डरते श्रीमहाराजजी से कहा, "मुझे तो चक्कर आ रहे

हैं।" आप बोले, "स्नान करके आराम कर ले।' परन्तु यह सब करने पर भी सायंकाल तक वही हाल रहा। रात्रिमें जब आपने पूछा तब भी चक्कर आ रहे थे। आपने कहा, जाकर सो जा' ठीक हो जायगा।" मैं फर्रुखाबादी दण्डी स्वामी के पास जाकर सो गया। रात्रि में स्वप्नावस्था में देखा कि श्रीमहाराजजी मेरे पास आकर पूछ रहे हैं, "क्या हाल है?" मैंने कहा "बाबा! अभी तो चक्कर आते हैं।" तब आपने दीवारपर अग्रेजी का T बनाया और कहा अब तबियत ठीक हो जायेगी। परन्तु दूसरे दिन भी वहीं दशा रही। आपने दूसरे दिन भी आराम करनेको कहा। मुझे मनमें बड़ा संकोच हो रहा था! फिर आपने चार पाँच सन्तरे देकर कहा, 'इन्हें खाकर सो जाना।" मैंने वैसा ही किया। रात्रिमें प्रायः २ बजे स्वप्न में फिर देखा कि बाबा मुझसे तबियत का हाल पूछ रहे हैं और मेरे यह कहनेपर कि 'अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ आपने दीवार पर T अक्षर लिखकर बड़े बलपूर्वक मुझसे कहा कि बस, अब कल ठीक हो जायगा। कलसे काम करना। इसके पश्चात् मेरी आखें खुल गयीं। मेरी तबियत बिलकुल ठीक हो गयी और कई रातें जागकर काम करनेपर भी कोई कष्ट नहीं हुआ।

भण्डारेमें तो महाराजजी के अनेकों चमत्कार देखे गये। जिस दिन बड़ा भण्डारा था, फर्रुखाबादवालों के हाथ में बीचका भण्डार था। प्रायः तीन सौ आदमी परोसने के कार्यपर नियुक्त थे। जिसे जो चीज परोसनी थी उसे उसका वैज लगा दिया गया था। पहली पंक्तिमें प्रातः दो हजार आदमी बैठे। महाराजजीने आकर पूछा, "मथुरा प्रसाद! सब काम ठीक चल रहा है?" मैंने कहा, महाराजजी! ठीक है।" परन्तु जब पारसकी ओर देखा तो कुछ संदेह और मेरे मुँह से निकल गया," पहली बारमें ही काफी सामान खर्च हो गया

है।" आप हँसते हुए बोले, "सब ठीक है।" फिर जहाँ लड्डूओंका ढेर था उसकी ईटों से बनी मेंड़पर बैठ गये। अपने चादरे का सिरा लड्डूओं पर डाल दिया और एक लड्डू तोड़कर सब ढेर पर फैलाकर कहा "इसे चटाइयों से ढक दो।" इसी प्रकार पूड़ियों के ढेर पर भी किया और सागकी नादों को अपने हाथों से स्पर्श किया, फिर यह कहकर कि सब ठीक है, चले गये। इसका परिणाम यह हुआ कि फिर भण्डार बढ़ता ही गया। रात को १०।। बजे तक पंगतें बैठती रहीं। जब भण्डार बन्द करने की आज्ञा हुई उस समय भी आप वहाँ उपस्थित थे और बहुत प्रसन्न दिखायी देते थे। इतने ही में लड्डूओंवाला ढेर खिसका और जो मेंड़ बँधी थी वह पूर्ण हो गयी। इसी प्रकार और सब समानकी भी वृद्धि होती देखी गयी। यह चमत्कार देखकर हम लोग आश्चर्य चकित हो गये।

इसके पश्चात् आप हम सबको छतपर ले गये और अपने कर कमलोंसे परोसकर हमें भोजन कराया। आपका वह प्रेम अब इस जीवनमें हम कहाँ पा सकते हैं।

भण्डारेके समय एक दुर्घटनासे भी कई लोग आपहीकी कृपासे बाल बाल बच गये थे। बड़े फाटकपर अनेकों भक्त प्रबन्धमें लगे हुए थे। अच्छे मजबूत लठ्ठोंकी बाड़ लगा दी गयी थी। केवल एक–एक आदमी ही उसमें होकर निकल सकता था। परन्तु बाहरसे लोगोंने ऐसा जोरसे धक्का लगाया कि फाटक पर जो प्रबन्धक थे वे उसे सँभाल न सके। भीड़ एक साथ भीतरघुस आयी। उसके कारण आठ–दस स्त्रीपुरुष गिर गये और अनेकों आदमी उनके ऊपर होकर निकल गये। यह दशा देखकर जो लोग परोसने में लगे थे बड़े जोरसे चिल्लाये, "भीतर आनेवालों को एकदम पीछे ढकेल दो, नहीं तो जो आदमी नीचे दब गये हैं वे मर जायेंगे।" बस, सब लोगों ने भीड़ को ढकेलकर फाटकबन्द कर दिया। फिर नीचे गिरे हुए

स्त्रीपुरुषों को उठाया। उनमें दो पुरुष और एक स्त्रीकी दशा बहुत खराब थी। उसी समय वैद्य और डाक्टर आ गये, क्योंकि सरकारी अस्पतालका कैम्प बाहर ही लगा हुआ था। स्त्रीको प्रायः एक घण्टेमें चेत हुआ। यह समाचार जब बाबाने सुना तो वे अपनी कुटीकी गुफामें उतर गये और थोड़ी देर में पुनः ऊपर आकर बोले, उस स्त्रीको भोजन देकर उसे उसके स्थानतक पहुँचा दो।" परन्तु स्त्री ने आग्रह किया कि मैं बाबाके चरण छुए बिना नहीं जाऊँगी। बाबा उसके पास गये और उन्होंने उसके सिरपर हाथ फेरा। वह बाबाको प्रणामकर उनसे प्रसाद लेंकर चली गयी। उसका इस प्रकार सहसा स्वस्थ हो जाना एक विलक्षण चमत्कार ही था।

फिर श्रीमहाराजजी की आज्ञासे भीड़को एक साथ बाहर बैठाकर भोजन कराया गया। पारसकी सामग्री को देखते हुए इतने बड़े समुदायको एक साथ भोजन कराना भी आश्चर्य ही था। हम तो यह देखकर चकित हो गये।

(६)

श्रीमहाराजजी जिस समय उन्नीस वर्ष पूर्व आये थे उसी समय मेरा चौथा विवाह हुआ था। वे जब मेरे यहाँ भिक्षा करने आये तब फर्रुखाबादी दण्डीस्वामीने उनसे कहा कि बाबा इनके चार सम्बन्ध हुए हैं और सन्तानें भी हुई हैं। परन्तु कोई जीवित नहीं रही। तब बाबाने कहा, 'अच्छा।'

जब यहाँसे गंगाजीके दूसरी ओर, राजेपुर जाने लगे तो हम पाँच मित्र साइकिलें लेकर साथ चले। हमारा विचार था कि आपको राजेपुर पहुँचाकर वहाँसे साइकिलों द्वारा लौट आयेंगे। जब आप गंगाजीके जल में चल रहे थे उस समय आपने मुझे यह उपदेश दिया, "तू जन्मसे फौजी है,

अधिक तो कुछ करेगा नहीं, परन्तु इतना अवश्य करना कि नित्यप्रति रामायण के एक दोहेसे दूसरे दोहे तक पाठ कर लेना और नित्य नियमसे करते रहना। देख तेरे ५ पुत्र होंगे। और तुझे क्या करना है ? बस, अब गंगा अग गंगापार होते ही घर लौट जा, अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं।" उनकी आज्ञा के कारण हम सब उस पार पहुँचाकर लौट आये। आपके वियोगका हम सभी को बहुत दुःख था। परन्तु आज्ञा शिरोधार्य थी।

आपके आशीर्वादसे मेरे पाँच पुत्र हुए। उनमें से चार के नाम आपने क्रमशः कुञ्जविहारी, बनविहारी, श्यामविहारी और छैलविहारी रखे। जब पाँचवाँ पुत्र हुआ और मैंने बम्बई से लौटते समय वृन्दावनमें आपसे उसकी चर्चा की तो आप बोले, "इसकी छठी छः महीने बाद करना।" मुझे सुनकर चिन्ता हुई। इसके ठीक छः मास पश्चात एक दिन बीमार रहकर वह स्वर्ग सिधार गया।

श्रीमहाराजजी की मुझपर बड़ी कृपा थी। वे मुझसे बहुत प्रसन्न रहते थे। उनके सत्संगसे मेरी जो बुरी आदतें थीं वे बहुत कम हो गयीं। मैं उनकी आज्ञाका अधिक–से–अधिक पालन कर रहा हूँ और इसी कारण जीवित भी हूँ। मेरी दृष्टिमें बाबा साक्षात् श्रीशंकरके अवतार थे। वे सवर्गणुसम्पन्न थे। उनके स्वभावने गरीब–अमीर तथा शत्रु और मित्र सभी को मन्त्रमुग्ध कर रखा था। वे सभीको अपना स्वजन समझकर स्वयं ही सबका ध्यान रखते थे। उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। जिसे वे एक बार देख लेते थे। उसे कभी नहीं भूलते थे। उनके इस भूतलपर न रहने से हमलोग बहुत दुःखी हैं, अब दुख–सुख में हमें अपना कोई अबलम्ब दिखालायी नहीं देता। केवल आशीर्वाद का ही सहारा है।



श्रीमति श्यामा फुआजी, फर्रुखाबाद

पूज्य श्रीमहाराजजी एक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठाके निमित्त से फर्रुखाबाद पधारे थे। उन दिनों कभी–कभी प्रसाद पाने के लिये हमारे घर भी पधारते थे। उस समय तक मेरे उदरसे बाहर सन्तानें हो चुकी थीं। परन्तु उनमेंसे जीवित एक भी नहीं थी। इसका मेरे चित्तमें बहुत दुःख था। जब बाबा प्रसाद पाकर जाने लगे तो इसी दुःखसे मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने पूछा, "तू क्यों रोती है ?" मैंने उन्हें अपना दुःख सुनाया तो वे तख्तपर बैठगये और बोले, अच्छा, अब तू चिन्ता न कर।' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी चादरके अञ्चल से एक गोला (खोपरा) निकाल कर मुझे दिया। वह आजतक हमारे घर में सुरक्षित है। केवल गुरुपूर्णिमा के दिन ही हम उसे निकालकर गुरुदेवके साथ उसका भी पूजन करते हैं। उसके पश्चात् मेरे दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं जो आजतक सकुशल हैं।

अभी तीन वर्षकी बात है। पूज्य महाराजजी अपनी लीला संवरण कर चुके थे। हमें केवल उनके चित्रपटस्वरूपका ही सहारा था। मेरी छोटी कन्याका विवाह होनेवाला था। खर्च की बड़ी तंगी थी। एक दिन कीर्तन करते हुए मैं इसी दुःखसे रोने लगी। उसी अवस्था में मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। वे बोले, "तू रोती क्यों है ? तुम्हारी चिन्ता तो मुझे है। तुम सब प्रबन्ध करो। मैं एक दिनके लिये आऊँगा और तुम्हारी सब व्यवस्था कर

दूँगा।'' कन्या के टीके का दिन आया। उस दिन हमें ग्यारह सौ रुपयेका एक मनीआर्डर मिला। उसमें भेजनेवाले लिखे थे– श्रीपल्टूबाबाजी, वृन्दावन। हमने महात्मा के रुपये विवाह में लगाने उचित नहीं समझे। अतः उन्हें तो सुरक्षित रखा लड़के ने कुछ रुपये का प्रबन्ध कर लिया। उससे विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। पीछे उन रुपयोंको लेकर हम श्रीपल्टूबाबाके पास गये और उनसे रुपया वापस लेने को कहा। वे बोले, ''भला, मेरे पास इतने रुपये कहाँ से आये? यह सब तो श्रीमहाराजजीकी लीला है। उन्होंने जिस निमित्तसे रुपये भजे हैं उसीमें उनका उपयोग होना चाहये। अब विवाह तो हो चुका है। अतः इन रुपयों का उस लड़की के गौने में लगा दो।' हमने उनके आदेशानुसार उन्हें लड़की के गौने मे खर्च कर दिया। ऐसी उनकी अनूठी अनुकम्पा थी और आज भी है।

उनकी शरणमें आये मुझे प्रायः पचास साल हो गये हैं। मैं पिताजीके साथ उनके पास आया करती थी। तबसे उनकी अहैतुकी कृपासम्बन्धी कितने अनुभव हुए हैं, कह नहीं सकती। आज भी मेरी सब आवश्यकताओं की पूर्ति वे ही करते हैं। मैं तो बात बात में उनकी कृपाका अनुभव करती हूँ।



पं० श्रीनारायणजी दीक्षित, फर्रुखाबाद

(१)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

प्रारम्भमें मैं 'कल्याण' में श्रीमहाराजजी के उपदेश पढ़ा करता था। वे मुझे अत्यन्त प्रिय लगते थे। उन्हींने मेरे हृदयमें आपके दर्शनों की लालसा जाग्रत की। एकबार बाँधके उत्सवपर हमारे यहाँसे बाबा श्यामसुन्दरलाल, बाबा रामचन्द्र एवं यहाँका रामलीलामण्डल गये। उनके तथा लीलास्वरूपों के आग्रहसे आपने फर्रुखाबाद पधारना स्वीकार कर लिया। जब सन् १६३४ में आप यहाँ पधारे तभी १८ अक्टूबरको गुड़गाँवा देवीपर मुझे पहलीबार आपके दर्शन हुये। जिस समय आपके चरणकमलोंपर मैंने सिर रखा मेरे सारे शरीरमें रोमाञ्च हो गया। आपके श्रीमुख से निकला, आ गया भैया!" मानो मैं आपका कोई पूर्वपरिचित था मैं तो आश्चर्यचकित रह गया, किन्तु उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं थी।

मैंने आपना सौभाग्य माना। तुरन्त आज्ञा हुई, "कमण्डलु लेकर आगे–आगे चल।" मैंने कमण्डलु उठा लिया और आगे आगे चलकर आपको निर्दिष्ट स्थान ला० रामभरोसेलाल के बगीचे में ले गया। फिर आपकी आज्ञा हुई, 'तू हर समय मेरे पास रहेगा।" मेरा इससे बढ़कर क्या सौभाग्य हो सकता था ? मैंने अपनेको परम धन्य माना। अब तो मैं आपका अपना ही था।

शरत्पूर्णिमाको उत्सव आरम्भ हुआ और पूरे कार्तिक मास भर चलता रहा। इस उत्सव में पूज्यपादश्रीहरिबाबाजी, ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी, स्वामी शिवानन्दजी (ऋषिकेश), बाबा जयरामदासजी 'दीन' रामायणी एवं और भी अनेकों महापुरुष पधारे थे। वृन्दावनसे श्रीरासमण्डली भी आयी थी। इस प्रकार एक महीनेतक फर्रुखाबादमें कथा, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग, रामलीलाका बड़ा सुन्दर आयोजन रहा। इससे जनता को बड़ा आनन्द हुआ। इसी समय श्रीमहाराजजीने मुझे इष्टमन्त्रकी दीक्षा भी दी। इसके पश्चात् आप शिवपुरी चले गये।

(२)

इसके पश्चात् दूसरी बार आप सन् १९२८ में फर्रुखाबाद पधारे और सन् १९३६ में प्रयाग की अर्धकुम्भीपर जाते हुए भी कुछ दिनों यहाँ ठहरे। आप जब भी पधारते थे स्वाभाविक ही उत्सव–सा हो जाता था। ला० रामभरोसेलालजीने एक शिवमन्दिर बनवाया था। उसका शिलान्यास आपहीके करकमलों द्वारा हुआ। सन् १९४० में उसकी प्रतिष्ठा होनेवाली थी। उस निमित्तसे आप भी पधारे उस समय पन्द्रह दिन तक खूब उत्सव रहा था। अनेकों संत–महात्माओंके अतिरिक्त वृन्दावनसे रासमण्डली भी आयी।

इस प्रकार ला० रामभरोसेलालके बगीचे में तो आपके तत्त्वावधानमें उत्सव चल रहा था। परन्तु उनके घर पर उनका एक पौत्र अत्यन्त रोगग्रस्त था। वैद्य और डाक्टर तो उसके जीवन से निराश हो चुके थे। एक दिन रात्रिके समय एकान्तमें मैंने श्रीमहाराजजी से उसकी दशा निवेदन की तो आप बोले, "अच्छा, कल उसके घर चलेंगे।" प्रातःकाल ही आप मेरे साथ उनके घर

गये। वहाँ अपने भोगमेंसे एक किशमिश उठाकर उस बालकको दी और बोले, "यह तो अब अच्छा हो गया।' बस, उसी समय से वह बालक स्वस्थ होने लगा और आजतक सकुशल है।

(३)

इन्हीं दिनोंकी बात है, एक दिन पण्डित शीतलदीनजी श्रीरामचरितमानसकी कथा सुना रहे थे। उससमय राजा दुर्गा नारायण सिंहजी तिर्वानरेश आपके दर्शनार्थ पधारे। मार्गमें राजासाहब ने अपने मित्रमास्टर कन्हैयालालजी से सलाह की थी कि महाराज से वैराग्य के विषय में प्रश्न करेंगे। आप राजासाहब के बैठते ही उनके प्रश्न किये बिना ही वैराग्य के लक्षणोंका वर्णन करने लगे। इससे राजासाहब बड़े चकित हुए और बोले, 'यहीं प्रश्न करने का तो मैंने मार्ग में विचार किया था। जान पड़ता है श्रीमहाराजजी दूसरोंके मन की बात जान लेते हैं।"

(४)

एकबार मैं कलकत्ते में बहुत बीमार था एक दिन घबड़ाहट बढ़ गयी और मैं आपके चित्रपटके सम्मुख बहुत रोया। फिर सो गया तो श्रीमहाराजजी ने स्वप्न में मुझे दर्शन दिया और आज्ञा दी कि नवद्वीप चला जा, वहाँ अच्छा हो जायगा। मैं प्रातः काल ही नवद्वीप चला गया। वहाँ स्वप्न में आपने मुझे प्रसाद में एक गिलास दूध दिया। मैंने उसे पी लिया और उसके पश्चात् मैं स्वस्थ हो गया।

(५)

एक बार मैं परिवारके सहित हरिद्वार कुम्भमें जानेको तैयार हुआ। उस समय स्वप्नमें आपने मुझे आज्ञा दी कि मत जा। मैं नहीं गया। पीछे मालूम हुआ कि जिस गाड़ी से मैं जानेवाला था

वह पुलसे नीचे गिर गयी है और उस दुर्घटनामें अनेकों यात्री हताहत हुए हैं।

इस प्रकार आपकी अनूठी अनुकम्पाकी सूचक अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जीवन में हुई हैं। उनका कहाँतक वर्णन करें। अब भी यदि कोई समस्या उपस्थित होती है तो आपसे प्रार्थना करके सो जाता हूँ और वे स्वप्न में जैसा आदेश देते हैं वैसा ही करता हूँ। मुझमें क्रोध बहुत अधिक था। आपकी कृपा से उसमें भी बहुत कमी हो गयी है और थोड़ा सन्तोषका भाव भी आगया है। श्रीमहाराजजीको तो मैंने कभी क्रुद्ध नहीं देखा। वे सर्वदा प्रसन्न रहते थे। और उनके पास धनी या निर्धन जो भी आता वही समझता था कि बाबा मेरे अपने हैं और उनकी सबसे अधिक कृपा मुझ पर है।



पं० श्रीप्रभाकर श्रीलाल याज्ञिक, बंबई

प्रातःस्मरणीय पूज्यपादश्री १००८ श्रीउड़ियाबाबाजीकी मेरे ऊपर बाल्यकाल से ही अपार कृपा रही है। मुझे बचपनसेही उनके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य मिला है। अन्य सज्जनोंकी भाँति मैंने यद्यपि उनकी कोई सेवा नहीं की फिर भी उनकी बातें और उपदेश मेरे जीवनकी अमूल्य निधि हैं। आज गुरुपूर्णिमा है उनके पूजन के समय मुझे कुछ बातें स्मरण हो आयीं हैं वे ही मैं लिख रहा हूँ। वैसे तो बाबा में मुझे ऐसी बातें मिलीं जिन्हें आजकलके युगमें कोई मानेंगे भी नहीं, परन्तु जो कुछ भी लिख रहा हूँ वह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है।

(१)

सन् १९२९–३० की बात है। मैं कांग्रेसका कार्य करता था। विद्यार्थी जीवन था, तथापि जेल जानेको तैयार रहता था। मेरे पूज्य पिताजी बहुत मना करते थे, परन्तु मैं आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेता ही था। पिताजी ने पूज्य महाराजजीसे मेरी शिकायत कर दी। पर महाराजजी ने मुझसे कहा, "यदि देश का प्रेम है तो अपनेको देशपर निछावर कर दे। जीवनसे प्रेम मत रख। आवश्यक हो तो अपना बलिदान दे दे।" यह थी उनकी देशभक्ति। मैं जब भी उनके समीप होता वे मुझसे आन्दोलनके हाल–चाल पूछते थे।

(२)

सन् १९३७–३८ में बहुत बीमार पड़ गया। घरवाले मेरे जीवन से निराश हो गये। मेरी स्त्रीने पूज्य श्रीमहाराजजी से मेरे जीवनकी भिक्षा माँगी। हाथरसके एक बगीचेमें उन्होंने उससे कहा कि तू प्रदोषका व्रत

रख तथा दुर्गासप्तशतीका एक श्लोक बतलाकर कहा, "तुम दोनों निरन्तर इसका जप किया करो।" आपकी आज्ञा पालन करने से थोड़े ही दिनों में। मैं स्वस्थ हो गया और श्वास का रोग जिससे कि मैं पीड़ित था, मेरे लिये केवल स्मृतिमात्र रह गया।

(३)

जब मैं धनोपार्जन करने लगा तो प्रयत्न करनेपर भी मुझे सफलता न मिली। मैंने पूज्य श्रीमहाराजजी से कहा तो उन्होंने बनदुर्गाके मन्त्रका उपदेश दिया। उसका कुछ दिन जप करनेसे ही मेरे जीवनका प्रवाह बदल गया। मैं उनकी आज्ञानुसार उसका निरन्तर जप नहीं कर सका। फिर भी जब–जब आर्थिक कष्ट आता है मैं उसी मन्त्रकी शरण लेता हूँ और मेरा कष्टदूर हो जाता है। यदि मैं निरन्तर जप करता रहूँ तो कष्ट आवे ही नहीं।

(४)

एक बार बाबाने मुझसे पूछा कि तू सप्तशती का पाठ करता है या नहीं ? मैंने कहा, 'नहीं मुझे इसकी दीक्षा नहीं मिली है।" उन्होंने कहा, "मैं पढ़ाऊँगां।" परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता था। मैंने एक दिन उन्हें स्मरण कराया। तब कहा, "प्रातःकाल चार बजे तेरे घर पर आकर पढ़ाऊँगा।" दूसरे दिन सबेरे पौने चार बजे अन्धेरे ही में आप मेरे घर पर आ गये और मुझे पाठ पढ़ाया।

(५)

पूज्य श्रीमहाराजजी अनूपशहर में सिकन्दराबादवालोंकी धर्मशाला में ठहरे हुए थे। एकादशीका दिन था आपके साथ पन्द्रह–बीस भक्त और थे। उनके सिवा शहरके भी तीस–चालीस व्यक्ति आपके पास ही प्रसाद पाते थे। उस दिन आपने आज्ञा की कि आज कोई यहाँ भिक्षा नहीं करेगा, शहरमें जाकर मांगकर भिक्षा करो। और दिन तो लोगों के घरों से इतना

सामान आ जाता था कि सबकी भिक्षा हो जाती थी। उस दिन आपकी ऐसी आज्ञा होने के कारण केवल पाँच–सात घरों से आपके लिये ही फलाहार आया। ठीक भिक्षाके समय आपने सबको आज्ञा दे दी कि भोजन करने बैठो। देखते–देखते ही वहाँ तीस–चालीस आदमी बैठ गये। मैं घबड़ाया कि सामान तो कुछ है नहीं और अदमी इतने बैठ गये। भागकर बाजार गया कि कुछ खरबूजे ले आऊँ। परन्तु खरबूजा एक भी न मिला। आकर देखा सब लोग भिक्षा कर रहे हैं। पूज्य बाबा स्वयं सामान देते हैं और दूसरे लोग परोस रहे हैं। उतने सामानमें ही सबकी भिक्षा हो गयी। जिस कमरे में सामान था उसमें किसी को नहीं जाने दिया।

(६)

एक बार एक सज्जन मेरे यहाँ आये। उनकी पूज्यमहाराजजीमें विशेष श्रद्धा नहीं थी। बोले कि वे कुछ चमत्कार दिखावें तब तो हमारी भी श्रद्धा हो सकती है। बात बात में यह तय हुआ कि आज हम बंबई की मोसम्बी माँगेंगे। इसके थोड़ी ही देर बाद बाबाके पास एक आदमी आया। उसने कहा, "महाराजजीने श्रीलाल (मेरे पिताजी) के लिये ये मोसम्बी भेजी हैं।" यह देखकर हम आश्चर्य में रह गये।

ऐसी अनेकों घटनाएँ मैंने देखी हैं। सब लिखने से बहुत विस्तार हो जायगा। आज वे हमारे सामने नहीं हैं किन्तु उनकी सरलता और उनके प्रेम का जब स्मरण करता हूँ तो उन्हें अपने सामने ही पाता हूँ। मेरा विश्वास है कि उनके बताये मार्ग पर चलकर कोई दुःखी नहीं रह सकता।

(गुरुपूर्णिमा, सं० २०१४ वि०)



श्रीगिरीशचन्द्रजी, इटावा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शनोंसे पूर्व मैंने कुछ ऐसी घटनाएँ सुनी थी जिनके कारण उनके श्रीचरणोंके प्रति मेरा आकर्षण हुआ उनमें से कुछ नीचे लिखता हूँ--

(१) मेरे भाई तथा कुछ अन्य परिचित लोग फर्रुखाबाद के संकीर्तनोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। उन्होंने वहाँसे आकर कहा कि श्रीमहाराजजी के दर्शनोंसे उन्हें बड़ी शान्ति मिली। ऐसे उच्च कोटिके संत संसार में विरले ही होंगे।

(२) इलाहाबादके खजानेके डिप्टी (Treasuty officer) श्रीराधेलालजीकी धर्मपत्नी ने नीचे लिखी बातें सुनाते हुए श्रीमहाराजीकी बड़ी प्रसंसा की–

(क) उनका कोई पुत्र जीवित नहीं रहता था। अन्तमें उन्होंने अपने पुत्र बारलोको श्रीमहाराजजीके चरणोंमें डाल दिया। इस समय वह बालक एम० ए० में अध्ययन कर रहा है और पूर्णतया स्वस्थ है।

(ख) एकबार प्रयागकी अर्धकुम्भी के समय श्रीमहाराजजी सहस्रों मनुष्योंके बीच में खड़े थे। इन्हें आपके दर्शन नहीं हो रहे थे। तब ज्योंही इन्होंने उनका संस्मरण किया कि वे इनके सम्मुख आकर पूछने लगे, "बेटा ! क्या बात है।" इन्होंने प्रेमविभोर होकर चरणस्पर्श किया। इससे इन्हें निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजी अन्तर्यामी हैं।

(३) मेरी एक भावज (स्वर्गीय रिखेश्वरी प्रसादजीकी पत्नी) श्रीमहाराजजीकी बहुत कृपापात्र थीं। उन्होंने आपके विषय में कुछ ऐसी घटनाएँ सुनायी थीं जिनसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी। उन्हींमें से एक घटना यह थी जिसे वे अपनी आँखों देखी बताती थीं। एकबार श्रीमहाराजजी बाँध पर अपनी कुटियामें जिस चौकीपर बैठे थे उसीपर एक सर्प आकर फन उठाकर बैठ गया। थोड़ी देर में श्रीमहाराजजीने कहा, बेटा जाओ।' यह सुनते ही वह सर्प लौटकर चला गया।

इन सब घटनाओंको सुनकर श्रीमहाराजजीके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गयी और सन् १९३७ की गुरुपूर्णिमापर कर्णवास में मैंने उनके पहली बार दर्शन किये। उसी समय मुझे उनसे गुरुमन्त्र भी प्राप्त हुआ। श्रीमहाराजजी मेरे कर्णवास पहुँचने से कुछ पीछे पहुँचे थे और पूज्य श्रीहरिबाबाजी पहले आ गये थे। वे इस समय उत्तरकाशीसे पधारे थे और वहाँ उपस्थित भक्तोंको अपना अनुभव सुना रहे थे। उन्होंने कहा कि एक रात पहले ही उन्होंने यह स्वप्न देखा कि बाबा (श्रीमहाराजजी) मुझसे गुरुपूर्णमापर कर्णवास पहुँचनेके लिये कह रहे हैं। अतः मैं तुरन्त मोटर और रेल द्वारा जैसे बना वैसे यहाँ पहुँचा हूँ। वहाँ से चलकर मैंने दाँतौन भी कर्णवासमें ही की है।

इस जीवन में श्रीमहाराजजीके मैंने अनेकों चमत्कार देखें हैं। उनमेंसे कुछ घटनाएँ मैं नीचे लिखता हूँ--

एकबार काजिमाबाद में संकीर्तनोत्सव था। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था। आकाश में वर्षा होनेका कोई लक्षण नहीं था। किन्तु महाराजजी ने कहा, "अभी बड़ेजोर की वर्षा होने वाली है, सब लोग अपने-अपने घर चले जायँ।" किसी ने कोई ध्यान न दिया। थोड़ी देरमें मेरे देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी।



(२)

उसी वर्ष होलीके अवसरपर मेरी एक अँग्रेज से बात हुई। वे माँ श्रीआन्दमयीके साथ रहते थे। उन्होंने बताया कि जब मैं विलायत में था तभी मुझे कुछ योग (आसन–प्रणायामादि) का चाव था। उस समय क्रियामें त्रुटि होनेके कारण मेरे सिरमें दर्द रहने लगा। कुछ मस्तिष्कमें दोष आ गया था। जब मैंने सुना कि श्रीउड़िया बाबाजी बहुत बड़े योगी हैं तो मैं उनके पास आया। उन्होंने मेरी गर्दनपर एक हल्की–सी थपकी दी। उससे मेरा सारा कष्ट निवृत्त हो गया।

उन्होंने दूसरी घटना यह सुनायी कि होलीके अवसर पर मुझे लोगोंने रंगसे बिलकुल सराबोर कर दिया था। मैं सर्दीसे काँपने लगा और इस भयसे कि अब अधिक रंग न डाला जाय शिवजी के मन्दिर के पीछे खड़ा हो गया। मैं सोचने लगा कि यहाँ बड़ा अनर्थ होता है जो एक परदेशी को इस प्रकार तंग किया जाता है। बाबा किसीका कोई ख्याल नहीं रखते। मैं यहाँ से चला जाऊँगा। इतनेमें बाबा मेरे पास आ गये और बोले, "क्या बात है?" इतना कहकर उन्होंने मेरा सिर अपनी नाभिके पास लगा लिया। उनका स्पर्श होते ही मेरे शरीरमें बिजली–सी दौड़ गयी और सारी सर्दी दूर हो गयी।

(३)

हम लोग जब श्रीमहाराजजी के पहले निर्वाणोत्सव पर वृन्दावन गये थे तो दिल्लीवाली धर्मशाला में ठहरे थे। एकरात्रिमें प्रातःकाल उठनेसे पूर्व स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी एक उच्च सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके चारोंओर अनेकों देवगण आसनोंपर बैठे हुए हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया तो वे मुझसे बोले, "बेटा! तुम लोग दुःखी क्यों होते हो? मै कहीं गया थोड़े हूँ। पहले मैं वृन्दाबनमें भगवद्भजन करता था, अब यहाँ प्रेमानन्द में निमग्न

हूँ। तुम निद्रा और आलस्य त्यागकर भगवान् के भजन में लग जाओ। यह मानव देह केवल भजन के लिये ही मिला है। उन्होंने निम्नांकित पद सर्वदा ध्यान में रखने का अदेश दिया—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधनधाम विबुधदुरलभ तनु मोहि कृपा करि दीनों।।
कोटिन मुख कहि जात न प्रभुके एक एक उपकार।
तदपि नाथ कुछ और माँगि हों दीजे परम उदार।। १।।
विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौं विपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक।। २।।
कृपा डोरि बनसी पद-अंकुस परम प्रेम मृदु चारौ।
यहि विधि बेगि हरिय दुख मेरो कौतुक राम तिहारौ।। ३।।
हैं श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह-रजु जो बाँध्यौ सोई छोरै।। ४।।

(४)

सन् १९३७—३८ की बात है मैं, मेरी वृद्धा माताजी और मेरे चाचाजी श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ बवरेला रेलवे स्टेशन (जिला आगरा) गये। जब वहाँसे चलने की आज्ञा चाही तो श्रीमहाराजजी ने हमसे प्रसाद ग्रहण करनेका आग्रह किया। मेरे यह कहने पर कि गाड़ी छूट जायगी आपने कहा, "बेटा! चिन्ता न करो, गाड़ी अवश्य मिलेगी।" हम प्रसाद ग्रहण करके चले। हमें दूरसे ही गाड़ी स्टेशन पर खड़ी दिखायी दी। मेरे चाचाजी दौड़कर स्टेशनपर पहुँच गये और गार्ड से अनुनय—विनय करके थोड़ी देर गाड़ी रोकनेके लिये कहने लगे, जिससे हम भी उसमें चढ़ जावें। गार्डने कहा, 'यह कोई छकड़ा तो है नहीं' और हरी झंडी दिखाकर गाड़ी छोड़ दी। हम स्टेशन की ओर बढ़ रहे थे और

श्रीमहाराजजी के वचनों को स्मरणकरते जाते थे। जब गाड़ी हमारे समीप आयी तो मैं और माताजी पटरी से कुछ हट गये। इतने ही में गार्डने लाल झंडी दिखाकर गाड़ी रोक दी और हमसे कहा, "झटपट गाड़ी में चढ़ जाओ।" हम बैठ गये और गाड़ी हमको लेकर चल दी।" ईदगाह स्टेशन के पास हमारा लोटा चलती गाड़ी में से गिर गया। परन्तु जहाँ हम लोग ठहरे थे वहाँ कोई सज्जन यह कहकर लोटा दे गये कि यह लोटा इटावावाले गिरीश बाबूका है। स्मरण रहे हम लोग यहाँ परेदशी थे।

श्रीमहाराजजीकी ऐसी अनोखी लीला और वाक्यसिद्धि देखकर हम चकित रह गये।

(५)

सन् १९३९ में मैं आगरा कालेज के कार्यालय की नौकरी छोड़ कर अपनी धर्मपत्नीके सहित श्रीवृन्दावन चला आया। कुछ दिन बीतने पर श्रीमहाराजजी ने कहा, "बेटा! अब तेरे पास खर्चा नहीं रहा है, तू घर चला जा। तुझे वहीं अच्छी नौकरी मिल जायगी।" ऐसा कहकर आपने मार्गव्ययके लिये अपने पास से कुछ रुपये दिये, जिनमें से दो अभी तक मेरे पास शेष हैं। इटावे आते ही मुझे वर्तमान नौकरी मिली, जो पहली नौकरीकी अपेक्षा बहुत अच्छी है।

इटावा आते समय हमारे पास श्रीमहाराजजीका दिया हुआ टिकट (लवंगप्रसाद) था। टूंडला स्टेशन पर एक बदमाश हमारा बक्स उठाकर ले गया। उसमें कुछ बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणादि थे। बहुत खोजकी, परन्तु कोई पता न लगा। किन्तु इस नैराश्यके अन्धकारमें भी श्रीमहाराजजी का टिकट मेरे लिये आशा दीपके समान था। मैं उसे लिये हुए दूसरी गाड़ीसे कानपुर गया। वहाँ कानपुरस्टेशनपर अपना बक्स सर्वथा सुरक्षित पाकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

(६)

एकबार श्रीवृन्दावनमें मैंने गाजरके हलुएकाप्रसाद भेंट किया। श्रीमहाराजजीने सबको प्रसाद बाँट दिया। मेरी तो भावना थी कि श्रीमहाराज़जीको भोग लगाकर मैं प्रसाद घर ले जाऊँगा, किन्तु आपने उसे भक्तों में वितरित कर दिया। पर जब मैंने घर आकर कटोरदान खोला तो उसमें हलुआ ज्यों का त्यों था।

(७)

श्रीवृन्दावनमें मैंने सुना था कि एकबार मथुरासे कोई सेठ कार द्वारा आपके दर्शनों के लिये आया। मार्ग में उसने ड्राइवरसे कहा कि मुझे दो–तीन प्रश्न पूछने हैं, परन्तु तुम देखोगे कि श्रीमहाराजजी बिना पूछे ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देदेंगे। ड्राइवर यह देखकर चकित हो गया कि श्रीमहाराजजी के पास पहुँचनेपर वही हुआ जैसा कि सेठजी ने कहा था।

सेठजीने श्रीमहाराजजीसे पूछा कि आपने मेरे मनकी बात कैसे जान ली। इस पर आप बोले, 'एक कमरेकी आमने–सामने की दो दीवारों पर चित्रकारी करने के लिये दो कारीगरों को नियुक्त किया गया। बीच में एक पर्दा डाल दिया गया और कहा कि जिसकी चित्रकारी बढ़िया होगी उसे पुरस्कार दिया जायगा। एक कारीगर ने चित्रकारी आरम्भ कर दी और दूसरे ने दीवार को रगड़कर दर्पण के समान चमकदार बना दिया। जब पर्दा हटाया गया तो चित्रकारी का स्पष्ट प्रतिबिम्ब सामने की दीवार में दिखायी देने लगा। इसी प्रकार जब भगवद्भजनकी रगड़से हृदय स्वच्छ हो जाता है तो उसमें दूसरे मनुष्यके हृदय का संकल्प प्रतिबिम्बत होने लगता है और वह दूसरे की हृदय की बात जान जाता है।

(८)

इटावे में नवलबिहारी टण्डन नामके एक भक्त हैं। एकबार श्रीमहाराजजी के पास जाते समय उन्होंने केवड़ाकी शीशी खरीदी और उसे अपने कोटकी ऊपर की जेब में रख लिया। दैववश वह शीशी उनकी जेब से गिरकर टूट गयी। इत्रकी सुगन्ध सब ओर फैल गयी। इसी समय जहाँ श्रीमहाराजजी थे, वहाँ भी वैसी महक मालूम हुई। महाराजजीने उपस्थित भक्तोंसे कहा 'देखो कैसी अच्छी सुगन्ध है।" जब टण्डन साहब पहुँचे और इन्होंने श्रीमहारजजी के चरणस्पर्श किये तो आप बोले, "बेटा! तेरा केवड़ा बहुत अच्छा था। उसकी सुगन्ध इटावे से उड़कर यहाँ तक आ गयी।" तथा दूसरे भक्तोंसे कहा, "देखो, वह सुगन्ध इस (टण्डन) के ही केवड़े की थी।"

(९)

मेरे कोई सन्तान नहीं थी। स्त्रीगर्भ नष्टहो जाता था। यह बात मेरी भावजने श्रीमहाराजजीसे कही। उन्होंने कह दिया, "इस बार ठीक होगा। यदि कोई गड़बड़ हो तो मेरा स्मरण कर ले।" उनके आशीर्वाद से ठीक ही हुआ। अब उन्हींकी कृपा से दो पुत्र और एक पुत्री हैं। एक विशेष बात यह हुई कि जिस तिथि को वृन्दावनमें पुत्रकी कामना व्यक्त की गयी थी उसी तिथ को पुत्रका जन्म भी हुआ।

इसी प्रकार श्रीमहाराजजीके विषयमें और भी अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएं इन आँखें से देखी हैं। उन्हें लिखकर मैं इस लेखका कलेवर और अधिक नहीं बढ़ाना चाहता। अधिक क्या, मेरा तो सब कुछ उन्हींका कृपाप्रसाद है और वे सदैव मेरी रक्षा करते हैं– ऐसा मेरा विश्वास है।



श्रीमुंशीलालजी, मोहनपुर (एटा)

साधनके पथपर

एकदिन बाबाने मुझसे पूछा, ''तेरा चित्त भगवान्‌श्रीकृष्णकी ओर अधिक खिंचता है या श्रीरामजीकी ओर ?'' मैंने उत्तर दिया, ''श्रीकृष्णकी ओर'' तब उन्होंने भगवान् कृष्णका एक मन्त्र बतलाया और श्रीरामचरितमानसका पाठ करने की आज्ञा दी।

मैं पहले चर्स पिया करता था। बाबा एक दिन बोले, ''तू चर्स पीना छोड़ दे।'' मैंने कहा ''मुझसे चर्स छूटता नहीं है।'' तब बोले, ''उसके बदले में पान खा लिया कर।'' आपकी आज्ञासे मैंने चर्स छोड़ दिया और पान खाने लगा। फिर धीरे–धीरे पान खाना भी छूट गया।

अयाचित कृपा

सन् १९३३ ई० की बात है, एक दिन दोपहरके समय मैं श्रीमहाराजजी को पंखा झल रहा था। एकाएक बाबा बोले, '''तू क्या चाहता है ?'' यद्यपि मेरे मन में अनेकों कामनाएँ उठा करती थीं, तथापि उस समय तो बड़े–बड़े भक्तोंकी तरह मुँहसे यही निकला 'महाराजजी ! मैं तो कुछ नहीं चाहता।'' आप बोले, ''नहीं, मैं जानता हूँ, तुम्हारे मनमें और विशेषतः तुम्हारी स्त्रीके मनमें एक लड़केकी इच्छा है। सो लड़का तो हो जायगा, परन्तु फिर स्त्री नहीं रहेगी।'' मैंने कहा,, ''महाराज ! मैं ऐसा लड़का नहीं चाहता। जब स्त्री ही नहीं रहेगी तो मैं लड़केको गले से बाँधकर कहाँ लटकाये फिरूँगा ?'' इस पर बाबा हँस पड़े।

इसके दूसरे दिन जब मेरी स्त्री लड़की के साथ बाबाका पूजन कर रही थी तब आपने अपनी प्रसादी माला लड़की के गले में डाल दी और स्त्री से कहा, "इसके एक लड़का होगा, और वही तुम्हारे पास रहेगा।" उसके डेढ़वर्ष बाद, जब कि लड़की हमारे घर पर ही थी उसके एक लड़का हुआ। उसके नामकरण संस्कारके दिन बाबा स्वयं घरपर आ गये। मैंने बच्चेको उनके चरणों में डाल दिया। बाबा बोले, 'अरे! उठा, उठा मैंने इसका नाम हरिशंकर रख दिया।" वह बालक अब भी मेरे ही घरपर रहता है।

मांस छुड़ाया

मोहनपुरके कारिन्दा चौधरी अब्दुल मजीब खाँको शिकार का बहुत शौक था। मांस तो खाते ही थे। उनको गुर्दे का दर्द होने लगा। जब दर्द होता तो उनके प्राणोंपर आ बीतती। सैकड़ों रुपये खर्च किये, फिर भी दर्दसे छुटकारा न मिला। बाबामें उनकी श्रद्धा थी। उनके पास आते–जाते और उनका उपदेश सुना करते थे। एकदिन बाबासे प्रार्थनाकी, महाराज! गुर्देका दर्द दूर नहीं होता, क्या करें?" बाबा बोले, "दर्द तो दूर हो जायगा, तुम मांस खाना छोड़ दो।" चौधरी साहबने मांस खाना छोड़ दिया और साथ ही शिकार करना भी। बस, उनका दर्द जाता रहा और फिर कभी नहीं हुआ।

मुसलमानकी भिक्षा

एक मुसलमान भक्त थे हकदाद। बाबामें उनकी अच्छी श्रद्धा–भक्ति थी। हिन्दुओं के घरों में बाबाको भिक्षा पाते देखकर उनके मनमें अपने यहाँ उन्हें भोजन करानेकी इच्छा हुई। एक दिन उन्होंने प्रार्थना की गरीब–परवर! आप सबके घरोंमें दावत खाते हैं,

महरबानी करके एक दिन मेरे घरपर ,भी दावत मंजूर फरमावें। बाबाने कह दिया अच्छा किसी दिन चलेंगे।''

एक दिन जब वे आये तभी बाबाने कह दिया, ''हकदाद ! आज हम तुम्हारे घर चलेंगे।'' फिर हम पाँच–सात आदमियों को लेकर बाबा उनके घर पर गये। उन्होंने एकसुन्दर आसनपर उन्हें बिठाया और अंगूर–सेव आदि फल उनके सामने रखे। बाबाने उनमेंसे एक फल हाथ में उठा लिया और हमें संकेत कर दिया सो शेष सब फल हमलोगोंने उठा लिये। फिर थोड़ी देर ठहरकर उनसे बात–चीत करके उन्हें सन्तुष्ट करते हुए बाबा बोले, 'अबतो तुम्हारी इच्छा पूरी हो गयी ?'' हकदाद बोले, ''हाँ हुजूर !'' तब बाबा वहाँसे चल दिये और हम लोगोंने वे फल आपस में बाँटकर खा लिये।

लड़का लौटा

एक बार मौजीराम कायस्थका लड़का जगदीश आगरेसे लापता होगया। बड़ी ढूँढ–खोज की गयी, परन्तु कहीं पता न लगा। बड़े परेशान हुए। तब मैंने और पुत्तूलालने मौजीरामसे कहा कि तुम श्रीमहाराजजी के पास चले जाओ। उनके साथ हम लोग भी वृन्दावन गये और बाबासे उनका दु:ख निवेदन किया। उन्हें दया आ गयी और वे चुपचाप गुफामें चले गये। प्राय: पौन घंटेमें वहाँ से लौटे और शान्तिपूर्वक बोले, ''जाओ, तीन चार दिनोंमें लड़का आ जायगा।'' हम लोग दूसरे दिन प्रात:काल ही चले आये। चौथे दिन लड़का स्वयं ही आगया। हम सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उससे सब हाल पूछा तो उसने बताया कि एकाएक मेरे मन में उचाट हो गया। कहीं मेरा मन लगता ही नहीं था। यहाँ आये बिना चित्त बेचैन रहने लगा। उसीसे चला आया। हमारा

विश्वास है कि उसदिन बाबाने दूरदृष्टिसे लड़के को देख लिया था और अपने संकल्प द्वारा उसके चित्त में उचाट पैदा कर दिया था। इसीसे वह लौट आया।

साँपकी भक्ति

कई बार ऐसा देखा गया कि बाबा चटाईपर बैठे होते और हम सब भी उनके आस–पास ही होते तो भी एक सर्प आता और उनके चारों ओर घूम कर चला जाता। ऐसा लगता मानों वह बाबाकी परिक्रमा करता हो। वह कभी फन उठाता और कभी नीचा कर लेता। बाबाकी हमें आज्ञा थी कि खबरदार! कोई उसे मारे नहीं।

ऐसी ही बाबाकी अनेकों अद्‌भुत लीलाएँ हैं। उनका कहा तक वर्णन किया जाय?

मोहनपुरके भक्त

प्रथम पदार्पण

सन् १६१५ ई० की बात है, श्रीमहाराजजी शहबाजपुरके पास सुनगढ़ी में श्रीगंगाजी के तटपर पं० मोतीरामजीकी पाठशाला में ठहरे हुए थे। वहाँ जो विद्यार्थी पढ़ते थे उन्हें आप भी सारस्वतचन्द्रिका पढ़ा दिया करते थे। मोहनपुर के कुछ प्रेमी प्रत्येक पूर्णिमापर गंगास्नानके लिये शहवाजपुर जाया करते थे। सौभाग्यवश उन्हें बाबा के दर्शन हो गये। उन दिनों आपकी बालवत् चेष्टा रहती थी। उस समय आप बालकों को कुछ उपदेश कर रहे थे। आपके दर्शन करके और उपदेश सुनकर मोहनपुर के भक्त मुग्ध हो गये और आपसे मोहनपुर चलने का आग्रह करने लगे। बाबाने उन प्रेमियोंकी प्रार्थना स्वीकार करली और चैत्रकी पूर्णिमा के दिन मोहनपुर पधारे। गाँव के दक्षिण ओर बाबा बालकदासकी एक पुरानी समाधि है, आपने वही स्थान पसंद किया। वहीं एक बिल्व वृक्षके नीचे फूसकी कुटिया बना दी गयी, उसमें आपने आसन लगाया। उनदिनों आपके पास एक काष्ठपात्र एक खद्दरका चादरा, एक बगलबन्दी और कोपीन–इतना ही सामान था। इससे अधिक वस्त्र आपने स्वीकार नहीं किया। साथ ही एक ताड़पत्रकी कापी और उस पर लिखने के लिये लोहे की कील भी थी। उस कापी में आपने उड़िया अक्षरों में कुछ लिखरखा था और यदा--कदा लिखते भी रहते थे। भिक्षाका ऐसा नियम था कि या तो दो चार घरोंसे माधूकरी भिक्षा ले आते थे या कुछ घरों में से किसी एक में ही बैठकर पा लेते थे। जैसी आपकी मौज होती वैसा कर लेते।

ध्यानस्थिति

उन दिनों ध्यानाभ्यास में आपकी स्थिति बहुत बढ़ी--चढ़ी हुई थी। आप कभी–कभी तो सारी रात सिद्धासन से बैठे रहते थे। चौबीसों घंटे पहरा लगाने पर भी आपको कभी सोते नहीं देखा गया। ध्यानकालमें यदि मुँह खुला होता तो उसमें मक्खियाँ जाती–आती रहती थीं। पर आपको उनका कोई भान नहीं होता था। किसीने मुँहमें भोजनका ग्रास दिया और उसी समय आप ध्यानस्थ हो गये तो वह ग्रास घंटों मुँहमें ही पड़ा रहता था। उसे चबानेकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

ग्रामवासियोंकी प्रीति

मोहनपुरके भक्त विशेष पढ़े–लिखे तो थे नहीं, परन्तु उनपर आपका प्रेम बहुत था और वे भी आपसे बहुत प्रेम करते थे। वहाँके बालकों के प्रति भी आपका अत्यन्त स्नेह था। आप नये–नये दृष्टान्त देकर उन्हें उपदेश भी किया करते थे। आपके पास हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आर्यसमाजी आदि सभी विचारोंके लोग आते थे और सभीकी आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। आप सभी को भगवन्नामकीर्तन और अतिथिसेवा का उपेदश करते थे और सभी लोग आपके उपदेश को बड़े चाव से सुनते एवं यथासम्भव कार्यान्वित भी करते थे।

एक बार कुछ लोगों को आपके विषय में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और वे आपकी परीक्षा करने के लिये कुटीपर पहुँचे परन्तु वे जो–जो प्रश्न आपसे पूछना चाहते थे उन सबके उत्तर आपने बिना पूछे ही उन्हें समझा दिये। इससे वे लोग आपके अत्यन्त प्रेमी बन गये। इस प्रकार आपके प्रेमियोंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती गयी। आपके पास लोग जो फल, फूल और मिष्ठान्न आदि लाते थे उन्हें आप बाँट दिया करते थे। आपके पास थोड़ा प्रसाद भी बहुत हो जाता था। एकदिन

तीनचार व्यक्ति एक पुड़ियामें थोड़ी इलायची लेकर इसी उद्देश्य से आपके पास गये कि देखें, इतनी इलायचियाँ आप इतने जन–समूह को कैसे बाँटेंगे। परन्तु स्वामीजी ने उन्हींमें से एक व्यक्तिके हाथमें वह पुड़िया देकर कहा कि सबको बाँट दे। वे महाशय घबड़ाये कि इतनी थोड़ी इलायचियाँ इतने विशाल जनसमूह को कैसे बाँटी जायँगी। उन्हें दुविधामें पड़े देखकर आप दुबारा बोले, "सोचता क्या है? दो दो इलायची सबको दे डाल।" उन्होंने वैसा ही किया और सबको दे चुकने पर भी जब पुड़िया में देखा तो उसमें कुछ इलायचियाँ बची थीं। यह आश्चर्य देखकर उन सबकी भी आपके प्रति अटूट श्रद्धा–भक्ति हो गयी।

कुटिया पर हर समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती थी। महाराजजीके कृपाकटाक्षसे बहुत–से निर्धन धनी हो गये, पुत्रहीनों को पुत्र प्राप्त हुए और रोगी नीरोग हो गये। आप किसी को भी दुःखी नहीं देख सकते थे और दूसरोंके मनकी छिपी बातों को भी जान लेते थे। आपसे किसी के मन की बात छिपी नहीं रह सकती थी। रामायणमें प्रसंग आया है कि श्रीलक्ष्मणजी के जब शक्ति लगी तो रावण के सहस्रों योद्धा भी उन्हें उठाने में समर्थ न हुए। कभी–कभी आप भी ऐसा ही खेल किया करते थे। आप लेट जाते और कहते कि हमें उठाओ। तब बहुत–से आदमी मिलकर भी आपको पृथ्वीसे तिलमात्र नहीं उठा पाते थे, यद्यपि उन दिनों आपका शरीर बहुत ही दुबला पतला था।

पञ्च कन्याएँ

मोहनपुरका पुरुषसमाज तो महाराजजी में श्रद्धा–भक्ति रखता ही था, प्रत्युत माताओं की भी आपमें अटूट श्रद्धा थी। किसी किसी का तो आप के प्रति पुत्रवत् वात्सल्य था। आप उनकी गोद में सिर रखकर लेट जाते और वे जब मुँहमें ग्रास देतीं तो लेटे लेटे ही खाते रहते। उनमें से कुछ गीत

गा–गाकर आपको सुनाती थीं। उन माताओं में से पाँच बाल–बिधवा थीं। वे पाँचों ही ब्राह्मणी थीं और उनकी आयु भी अधिक थी। आपने उनका नाम 'पञ्चकन्या' रख दिया था। उनके नाम थे जानकी, गीता, पार्वती, यमुना और जयदेवी। इनमें जानकी बहुत अच्छा गाती थी और गीता ढोलक बजाने में निपुण थी। शेष तीनों मँजीरा बजाती थीं। जबतक आप मोहनपुर में रहे पञ्चकन्याएँ मध्यान्होत्तर तीन बजे के लगभग कुटीपर जातीं और आपको अपने बीच में बैठाकर तुलसीदास सूरदास, मीराबाई एवं नरसी आदि भक्तोंके पद गाकर सुनाया करतीं। यह उनका नियम था। आप उनके पदों को बड़े प्रेमसे सुना करते थे।

बालवत् क्रीड़ा

इस समय यद्यपि श्रीस्वामीजीकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थी, तथापि वे अनेकों बालवत् क्रीड़ाएँ किया करते थे। मोहनपुरनिवासियों को उनकी जैसी बाल लीलाओं को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे दूसरोंके लिये दुर्लभ ही रही हैं। इसे चाहे तो मोहनपुरवालोंके पूर्व सुकृतोंका परिणाम कहो, चाहे श्रीस्वामीजी महाराज की अहैतुकी कृपा। श्रीस्वामीजी महाराज जिन घरों में मध्याह्न के समय भिक्षा करते थे, त्यौहार आदि विशेष अवसरों पर उन सभी में जा–जाकर थोड़ा–थोड़ा प्रसाद पाते थे। रात्रिमें वे कुछ भी खाना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु फिर भी भक्तजन पराँवठे या दूध ले ही आते थे और उन्हें खिलाकर ही लौटते थे। उस समयके भोजनकी भी अनोखी पद्धति थी। एक भक्त कुछ ले आता तो आप कहते, "मैं नहीं खाऊँगा, मुझे अफरा हो रहा है।" वह पहले तो निहोरा करता। परन्तु जब आग्रहसे काम न चलता तो हाथ पकड़ लेता और जबरदस्ती मुँह में ठूँसता। अब तो आपको मुँह चलाना ही पड़ता। इस प्रकार

जैसे–तैसे वह खिलाकर जाता कि दूसरा भक्त भी कुछ लेकर पहुँच जाता। वह कहता "बाबा! भोजन कर लो।" परन्तु आपका तो वही पेटेण्ट उत्तर होता–"मैं नहीं खाऊँगा, मुझे अफरा हो रहा है।" वह कहता "अफरा हो रहा है तो उसका कैसे खा लिया? जैसे उसका खाया वैसे मेरा भी खाओ।" जब इस प्रकार आप न मानते तो वह भी उसी उपाय का आश्रय लेता। हाथ पकड़ लेता और जबरदस्ती मुँहमें ठूँसने लगता। तब आपको उसका अन्न भी खाना पड़ता। इस प्रकार कई लोग आपको जबरदस्ती खिला पिला जाते। भक्तोंका उनपर प्रेम था और उनकी भक्तोंपर कृपा थी। अतः वे उनके प्रेमपूर्ण आग्रहको टाल नहीं सकते थे।

रात्रिमें बाबाकी कुटियापर दूध भी पर्याप्त मात्रामें आता था। पर आप एक बूँद भी दूध नहीं पीते थे। जब कोई भक्त जबरदस्ती पिलानेका प्रयत्न करता तो आप बड़े जोर से चिल्लाने लगते, "अरे रामदास! चल–चल, मिश्री ने मुझे मार डाला।" रामदास आपका बड़ा प्रेमी भक्त था। जब ऐसे काम न चलता तो दो आदमी आपके हाथ पकड़ लेते और तीसरा मुँह में दूध उड़लने लगता। अब तो आपको दूध पीना ही पड़ता। ऐसी थी आपकी वह बालहट मयी विचित्र लीला।

आपके पास चाहे कितना ही प्रसाद आ जाय जबतक आप स्वयं उठाकर न देते अथवा किसीको आज्ञा न करते तबतक कोई भी व्यक्ति प्रसादसे हाथ नहीं लगा सकता था और न किसी को उसमेंसे दे ही सकता था। जब दर्शनार्थियों की भीड़ अधिक तंग करने लगती तो प्रेमी लोग बाबा को ताले में बंद कर देते, जिससे लोग समझते की बाबा कहीं बाहर गये हुए हैं। उन दिनों आपका ऐसा स्वभाव था कि यदि कहीं जाना होता तो बिना किसीसे कुछ कहे–सुने चुपचाप चल देते थे, इसलिये यदि भक्तोंको तनिक भी ऐसा सन्देह होता कि आप जाना चाहते हैं तो

कुटिया में बंद करके ताला लगा देते, जिससे कहीं चले न जायँ। यद्यपि लोग आपका चरणामृत लेते, चन्दन लगाते, पूजा करते तथा महाप्रसाद भी लेते थे, तथापि प्रेम की ऐसी अटपटी चाल ही है कि ये आपके साथ जबरदस्ती करनेसे नहीं चूकते थे। आप भी भक्तों की ऐसी चेष्टाओं से बुरा नहीं मानते थे। कई बार तो ऐसा भी देखा गया कि रात्रिमें भक्तजन आपको ताले में बंद करके आये और सबेरे वहाँ जानेपर आपको बाहर टहलते पाया।

लोग जिसे 'बूआ' कहते उसे आप भी 'बूआ' कहते और जिसे "चाचा" कहते उससे आप भी 'चाचा' कहकर बोलते। मोहनपुर के भक्तोंने वास्तव में बाबा के महत्वको नहीं जाना। हम लोग तो उनके साथ ग्वालबालोंकी तरह खिलवाड़ करते रहे। वे हमारे घरोंकी सास–बहुओं के झगड़े भी निपटाया करते थे और जब भिक्षामें देरी होती तो घरका काम–काज भी कर दिया करते थे।

स्वामीजी को बम्बामें स्नान करना बहुत पसन्द था। बालकों पर भी उनका बहुत स्नेह था। बालक उन्हें जबरदस्ती खिलाते पिलाते भी थे। जब आप बम्बामें स्नान करने जाते तो साथ में बालमण्डली भी लग जाती। रास्ता चलते समय यदि वे किसी के कंधेपर चढ़ जाते तो कभी कोई बालक उनकेकधे पर चढ़ बैठता। जलमें घुसकर सबके साथ खूब जलक्रीड़ा होती। वे दूसरों पर जल उलीचते और दूसरे उनपर जल उलीचते। कभी स्वामीजी भैंसा बन जाते और तीन–चार बालकों को अपनी पीठपर चढ़ा लेते और फिर सबको लिये जलमें गोता लगा जाते। तब बालक कूद–कूदकर भागने लगते। कभी 'लालबहू' का खेल खेलते। एक लाल ईंट लेते उसी का नाम होता लाल बहू। उस बम्बा के जल में फेंककर पूछते, "लाल बहू किसकी ?" सब कहते, "मेरी।" अच्छा तो सब ढूँढ़ो। सब ढूँढ़ते और जिसे वह मिल जाती

उसकी लाल बहू मानी जाती। कभी आप जल में डुबकी लगाकर भीतर ही भीतर मगर की तरह किसी बालक का पैर खींचते और कभी कोई बालक आपका पैर पकड़कर खींचता। इसी प्रकार कभी दो बालकों की बाहें आपस में मिलाकर आप बीच में उन्हें पकड़कर लटक जाते। इस तरह अनेकों क्रीड़ाएँ हुआ करतीं।

एक बात कहते हुए तो हमें बड़ी लज्जा आती है। वह यह कि हम उनसे डेल फुड़वाया करते थे। और वे अपनी महत्ताको छिपाये चुपचाप डेल फोड़ा करते थें। जैसे समुद्र में रहते समय अमृतमय चन्द्रमा को मछलियाँ नहीं जान सकीं और जिस प्रकार सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाको यदुवंशी नहीं जान सके, उसी प्रकार हम अज्ञानी जीव बाबाकी महिमा को न जानकर उन से ग्वालबालों की भाँति खेल–कूद करने में अपना समय बिताते रहे। उनका ऊँचा तत्त्वज्ञान हम कुछ नहीं समझ पाते थे। केवल इतना ही समझते थे कि हमपर उनकी अपार कृपा है। हमारा पूजा–पाठ भी यही था कि हरसमय उनकी सेवामें उपस्थित रहें। कभी–कभी हम लोग बाबाकी सवारी भी निकालते थे। एकबार आपको सिंहासनपर बिठाकर फूलोंकी वर्षा करते हुए सारी बस्तीमें जलूस निकाला गया। जगह–जगह आरती उतारी गयी और सर्वत्र जय–जयकार हुआ। दो बार पाँवडे डालते हुए बस्ती में ले गये। किन्तु पीछे आपने मना कर दिया।

प्रस्थान



यह हमारा सौभाग्य था और उनकी अहैतुकी कृपा, जो हम उनके साथ इस प्रकार खेलते रहे। परन्तु किसी ने ठीक ही कहा है–'रमता योगी बहता पानी इनको कौन सके विरमाय ?' हम अपने सौभाग्यातिशयसे गर्वित हो उठे। हम समझने लगे कि अब बाबा कहीं जा नहीं सकते। एक दिन आपने किसी माताके मुँहसे यह गर्वोक्ति भी सुन ली कि अब

बाबा हमें छोड़कर कहीं जा नहीं सकते। बस, उसी समय आपने मन ही मन मोहनपुरसे जानेका संकल्प कर लिया। अत्यन्त दयालु तो थे ही इसलिये यह मनका भाव किसी को बताया नहीं। एक दिन चुपचाप आप मोहनपुर छोड़कर चले गये। पीछे भी दो–चार बार आपका शुभागमन तो हुआ परन्तु वह तो एक जोगी की फेरी ही थी। दस–बीस दिन ठहरे और चल दिये। हम लोग उत्सवों पर जहाँ तहाँ जाकर उनके दर्शन करते रहे, किन्तु अब वह सुख कहाँ था अन्तमें जब हमारे पुण्य क्षीण हो गये तो आपने अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली। हम हाथ मलते, पछताते और अपने भाग्य को कोसते रह गये। अपने हाथ आये महामूल्यमय रत्नको हमने खो दिया। अब, इस जीवन में आशा की किरण इतनी ही है कि वे हमें अपना समझते थे और हम पर अहैतुकी कृपादृष्टि रखते थे और उनकी वह कृपादृष्टि अब भी कहीं गयी नहीं है, ज्यों कि त्यों बनी हुई है। अतः उनके सहारे हमारी जीवन–नौका इस भवसागर से पार लग ही जायगी।





ब्रह्मचारी श्रीशिवानन्दजी (श्रीआञ्जनेयजी)

प्रथम दर्शन

संत चरित सुभ सरिस कपासू। बिरस बिसद गुनमय फल जासू ।।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहिं जग जस पावा ।।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।

भगवान् श्यामसुन्दर और सन्त श्रीदासशेष स्वामी की अनूठी अनुकम्पा से मैंने प्रभुप्राप्तिके लिये गृहस्थाश्रम का त्याग किया और किन्हीं सच्चे संत की खोज में मैं प्रयाग पहुँचा। परन्तु मुझे किन्हीं ऐसे भगवत्प्राण मधुमय महापुरुष के दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त न हुआ जो मेरे जीवन को निर्विकार और मधुर बनाकर उसे मानवमात्रके लिये उपयोगी बनादे। प्रयाग में ही सबसे पहले श्रीसीताराम बाबा और आन्नद ब्रह्मचारीजी के मुख से मैंने पूज्यपाद श्री उड़ियाबाबाजी और श्री हरिबाबाजी के शुभ नाम सुने। वहाँसे मैं वृन्दावन होता बाँध पर पहुँचा। वह बाँध भगवान्नाम का प्रतीक ही है और इस रूपमें मानों पूज्यपाद श्री हरिबाबाजी की करुणा एवं दीनवत्सलता ही मूर्तिमती हुई है। मैं सत्संग भवन में गया और वहाँ दोनों महापुरुषों को विराजमान देखा। उनमें एक बड़ी शान्त और गम्भीर मुद्रा में सिर नीचा किये बैठे थे और दूसरे अवधूतशिरोमणि ध्यानमग्न अवस्था में सिद्धासनसे विराजमान थे। उनके रोम रोम से प्रसन्नता एवं आनन्द का झरना झर रहा था। यही थी उनकी शाश्वती सहज स्थिति।

कथा सम्पूर्ण होनेपर मैंने देखा कि सभी के साथ मिलने जुलने और बातचीत करने में भी उनके मंगलमय वदनारविन्द से प्रेम और प्रसन्नता की वह सुशीतल एवं स्निग्ध धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। मैंने आरम्भ से ही देखा कि अपने संसर्ग में आनेवाले लोगों की लौकिक पारलौकिक एवं पारमार्थिक सभी प्रकार की समस्याओं और उलझनों को वे बड़ी आत्मीयता और सहानुभूति से सुलझाते हैं। उन्होंने मानों सम्पूर्ण प्राणियों के हित के लिये अपने को उत्सर्ग किया हुआ था। उनके जीवन में मुझे उदारता के सौन्दर्य, त्याग के आनन्द और सरलता एवं समता के महत्व की झाँकी हुई। मैंने देखा कि सचमुच वे दीन–हीनों के लिये, उग्र प्रकृतिवालों के लिये, विषयासक्तों के लिये और हठपूर्वक अपना अपराध स्वीकार न करनेवालों के लिये भी पूर्णकृपामय थे। उन दिनों मैंने अपने एक मित्र को लिखा था कि आजकल मैं जिन महापुरुष के पास रहता हूँ उनमें कविकुलचूड़ामणि श्रीभवभूति के कहे सन्त के सभी लक्षण चरितार्थ होते हैं–

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी गतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासित रसं,
रहस्यं साधूनां निरुपधिविशुद्धं विजयते।। *

---

* महापुरुषों के विशुद्ध एवं निष्कपट जीवन का रहस्य यही है कि उनकी रनही प्रायः सबको प्रिय लगती है। उसमें विनय की निरभिमानता की मिठास भरी रहती है, उनकी वाणी से नियम होता है। उनकी बुद्धि सहज स्वभाव से ही सबका कल्याण चाहती है।



साधननिर्देश

श्रीमहाराजजी की शरण में आने के पश्चात् प्रथम दिवस से ही मैंने देखा कि मुझ पर उनका पूर्ण वात्सल्य है। उन्होंने मेरे साधन का निश्चय किया। अपने बालक की तरह वे मुझे रखते थे और कभी जाने के लिये नहीं कहते थे, यद्यपि मेरा स्वभाव असंयत, व्यवहार शिष्टाचाारशून्य और ज़ीवन साधनही न था। उन्हेंने मुझे गीताके इस श्लोक पर ध्यान देने और इसके तात्पर्य का अनुसरण करने की आाज्ञ दी थी–

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।• (१२।८)

मैंने इसका तात्पर्य यही समझा कि मुझे निरन्तर गुरुदेव का ध्यान और गुरुमन्त्र का जप करना चाहिये–गुरुमूर्तेः सदाध्यानं गुरुमन्त्रं सदा जपेत्।'

एक दिन गंगास्नान के लिये जाते समय आपने मेरी ओर संकेत करके कहा था–'इस लड़के को राग नहीं है।" इस पर रामेश्वर जीने कहा, "यह तो अच्छी बात है।" तब आप बोले, "नही राग बिना वैराग्य भी नहीं होता।"

श्रीमहाराज जी की यह उक्ति आज मुझे सर्वथा सत्य जान पड़ती है। गुरुदेव और उनकी दी हुई साधनामें राग न होने के कारण मेरी साधना में वैसा विकास नहीं हो रहा है जैसा होना चाहिए था।

उनके आस–पास के लोग भी निन्दित आचरण से मुक्त हो जाते हैं। प्रथम मिलन में अथवा अन्तिम मिलन में कभी भी उनके स्नेहरस में कटुता नहीं आती। सच पूछें तो यह महापुरुषों का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है।

• मेरे ही में मन लगाओ, मेरे ही में बुद्धि स्थिर करो। ऐसा करने से अन्त में तुम निःसन्देह मेरे में ही निवास करोगे।

गुरु और गोविन्द एक हैं

अब मेरा जीवन उनके चरणकमलों की छत्रछाया में व्यतीत होने लगा। बीच–बीच में मुझे कई बार उनकी अन्तर्यामिता के विषय में अनुभव हुए एक बार उनसे बिना पूछे मैंने अपने घरवालों को अपनी वियोगव्यथा के लिये सान्त्वना देने के उद्देश्य से पत्र लिखा। परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि मैं स्वयं एक प्रकार की मानसिक उलझन में पड़ गया। एक दिन कर्णवास में प्रसाद पाकर मैं अपनी गुफा में गया। वहाँ बैठे–बैठे मुझे एक दिव्य प्रकाश दिखायी दिया। उससे मेरा चित्त बड़ा समाहित हो गया। उस प्रकाश से मुझे मुरली हीन भगवान् मुरलीमनोहर की भुवनमोहिनी मधुर मूर्ति के दर्शन हुए। वे द्वार में से भीतर की ओर झाँक रहे थे। उनके साथ श्रीमहाराजजी के भी दर्शन हुए। परन्तु उनका शरीर श्रीश्यामसुन्दर की ही तरह नीलोज्वल था। वे ध्यानमुद्रा में विराजमान थे। श्रीश्यामसुन्दर ने महाराजजी की ओर संकेत किया और अन्तर्हित हो गये। उसके पश्चात् श्रीमहाराज जी भी अन्तर्धान हो गये।

इसका तात्पर्य मैंने यही समझा कि जिन भगवान् श्याम सुन्दर ने मुझे घर से निकाला था वे ही अब संकेत करके बता रहे हैं कि श्रीमहाराजजी मेरे ही वर्तमान विग्रह हैं। उनके रूप में स्वयं मैं। ही तुम्हारा गुरु, पथप्रदर्शक और संरक्षक हूँ। कहा भी है–

'अचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।। •

(भाग० ११। १७। २७)

• आचार्य को स्वयं मेरा ही स्वरूप समझे, कभी उनका अपमान

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्येते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः।। x

इस प्रकार उन्होंने मुझे मानों गोविन्दके साथ वर्ण स्वभाव, आचरण और उपदेश में गुरुदेवकी एकता सूचित कर दी। इससे मेरी मानसिक उलझन निवृत्त हो गयी।

शत्रु पर भी प्यार

एक दिन कर्णवास में आप कुछ भक्तोंके साथ जा रहे थे। अकस्मात् सामनेसे एक आदमी दौड़ता हुआ आया और उसने उछलकर आपकी गर्दन पकड़ ली। आप गिरते–गिरते बचे। भक्तों ने उसे पकड़ लिया और पीटने लगे। पर आपने सबको डाँटते हुए कहा, "यह तो बावला है, इसे मारो मत" फिर उसे चाय पिलायी, मिठाई खिलायी व कपड़ा दिया ऐसी थी उनकी सहृदयता। आप कहा करते थे। "साधु वही है जो शत्रुको भी हृदयसे लगाता है।"

'क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्ट कुशलं वदेत् ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।।
"अड़तेसे टलते रहो जलते से जल होय । ✱
ऐसा साधु कबीर का मार सके नहिं कोय ।।"

न करे और न मानव–बुद्धि करके उनका तिरस्कार ही करे, क्योंकि गुरुदेव सर्वदेवमय होते हैं।

x जिसकी भगवानें अत्यन्त भक्ति है और जैसी भक्ति भगवान् में हैं वैसी ही गुरुदेव में भी है उस महात्माको ही इन बताये हुए रहस्यों का अनुभव होगा।

✱ क्रोध करनेवालोंके प्रति क्रोध न करे, कोई बुरा कहे तो भी मिष्टभाषण करे, निन्दा को सहन करे और किसी का अपमान न करे।



उनकी रहनी

पूज्य श्रीमहाराजजी की रहनी–सहनी पूर्णतया एक जीवनमुक्त महापुरुष की रहनी थी। उनमें भगवान् शंकराचार्य की यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती थी।

''मौने मौनी गुणि न गुणवान् पण्डिते पण्डितश्च
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः।
मूर्खे मूर्खो युवतिषु युवा वाग्मिनि प्रौढवाग्मी
धन्य कोऽपि त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः। ●

(जीवन्मुक्तानन्दलहरी १८)

वे नित्य उत्सवस्वरूप थे। कहीं भी रहते वहीं एक उत्सव सा हो जाता था। उनके पास जाने–आने की हर समय सबके लिये छूट थी। अपने दैनिक जीवनमें, औरों की तो क्या, जो प्रतिकूल प्रकृति के लोग होते थे वे उनकी भी प्रीति और रुचि रख देते थे–'शठ सेवककी प्रीति रुचि राखहिं राम कृपालु।' वे पूर्णतया अदोषदर्शी थे।

आश्रितरक्षा

श्रीचेतनदेवजी आपके एक अनन्यनिष्ठ सेवक थे। वे बीमार पड़े। उन्हें आन्त्रिक क्षय और राज्यक्ष्मा दोनों ही रोग थे। ऐसे संक्रामक रोगों से

● जो मौनियोंमें मौनी, गुणियोंमें गुणवान्, पण्डितों में पण्डित दीनों में दीन, सुखियों में सुखी और भोगियों में भोगी जान पड़ता है तथा मूर्खो में मूर्ख, युवतियों में युवा, बोलनेबालों में अत्यन्त वाक्पटु और अवधूतों में अवधूत है अपने स्वचानुभववैभव से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करनेवाला वह महापुरुष धन्य है।

सभी लोग भय मानते हैं। अतः आश्रमवालोंने उन्हें एक प्रकार से त्याग ही दिया। बाबा रामदासजी के सिवा और कोई उनके पास तक नहीं जाता था। हम लोग उन्हें परमहंस आश्रममें ले गये। आश्रम छोड़ते समय उन्हें बहुत दुःख हुआ। कहने लगे, "मैंने एक–एक ईंट ढोकर आश्रम बनाने में सहयोग दिया था।" लोग उनके पास जाने से श्रीमहाराजजीको भी रोकते थे। परन्तु वे चुपचाप रातमें हो आते थे। उस समय वे उन्हें आश्वासन देते और अपनी कृपादृष्टिसे उनके दुःखको हल्का करते थे। प्यारपूर्वक उनके सिरपर हाथ फेरते थे और उन्हें जल पिलाते थे। उनसे कहते कि कोई नहीं देखता तो न सही मैं तो तुम्हारे साथ हूँ। एक बार श्रीविशारदजी ने आपको अकेले उनके पास जाते देखा तो वे साथ हो लिये। उनसे आप आँखों में आँसू भरकर बोले, "चिरञ्जी ! ये लोग कैसे हैं ? यदि यह रोग मुझे हो जाता तो मुझे भी ये आश्रममें न रहने देते।" एक बार चेतनदेवजीकी बहिन उन्हें देखनेके लिये आयीं। उसने उन्हें स्पर्शतक नहीं किया और न कोई आर्थिक सहायता ही दी। श्रीमहाराजजी कहने लगे, देखो, यह संसार कैसा है। यहाँ कौन किसका भाई और कौन किसकी बहिन ? यह सब कुछ इस बहिन को ही दे आया था।"

एक बार उन्हें भयंकर दस्त हुए। वह वेदना सहन न कर सकने के कारण वे रोने लगे। तब आप बोले, "अच्छा मैं तुम्हारे लिये कीर्तन कराऊँगा, तुम ठीक हो जाओगे।" परन्तु कीर्तन मण्डली के आने से पूर्व ही वे ठीक हो गये और फिर प्राणान्तपर्यन्त उन्हें कोई असह्य वेदना नहीं हुई।

मुझे श्रीमहाराजजी ने उनकी सेवा सौंपी थी। कहा करते थे, मैंने इसे सूली पर चढ़ाया है।, परन्तु मैं तो केवल निमित्त मात्र था। करते–धरते तो सब कुछ वे ही थे। जिस दिन उनका शरीर शान्त

हुआ उसके दूसरे ही दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में मैंने देखा कि श्रीमहाराजजीका बालसूर्य के समान एक तेजोमय विग्रह मेरे शरीरसे निकलकर अन्तरिक्ष में अन्तर्धान हो गया मैं बहुत रोया। मैंने अनुभव किया कि यह सारी सेवा तो आपने ही मेरे भीतर रह कर की थी। मुझे केवल झूठी प्रतिष्ठा दिलायी। सच है–

उमा दारु योषित की नाई। सबहिं नचावत राम गुसाई।'

उन दिनों मेरे दिल, दिमाग और ओज सभी अलौकिक थे। अब मैं कंगाल हूँ। उसके पश्चात् आप मुझे कुटिया के ऊपर ले गये और बोले, जैसे यह सब इदम् (दृश्य) है वैसे ही इस शरीरको भी दृश्यरूप देखो। मस्त रहो। याद रखो–आँख बन्द करने पर नेह नानास्ति किञ्चन है और आँख खोलने पर सर्व खल्विदं ब्रह्म है।

उनकी कुछ बातें

आप प्रायः कहा करते थे–'इस एक श्रुति से ही ज्ञान हो सकता है 'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशद्वायः।' यहाँ आकाश' का अर्थ है कुछ नहीं' अर्थात् आत्मासे कुछ नहीं हुआ।

अभ्यासपर आपका सर्वदा जोर रहता था। और अधिक पढ़ने–लिखने का निषेध करते थे। कहा करते थे कि पहले बहुत टीकाएँ कहाँ थीं। अपने मरने के लिये तो एक सूई काफी है। 'नानुध्यायाद्बहून्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्। आपको यह श्लोक बहुत प्रिय था–

'सन्त्यज्य शास्त्रजातं संव्यवहारं च सर्वतस्त्यक्त्वा।
आश्रित्य पूर्णपदवीमास्ते निष्कम्पदीपवद्योगी।। *

---

* शास्त्रसमुदायको त्यागकर और सम्पूर्ण व्यवहारको भी सब प्रकार छोड़कर योगी को पूर्ण पदका आश्रय ले निष्कम्प दीपक के समान स्थिर रहना चाहिये।

(२)

एक बार आप वायुसेवनके लिये जा रहे थे। हम लोग साथ थे। उस समय मनोहरजी ने पूछा, "आपका सिद्धान्त क्या है?" आप बोले–

'ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः।।' *

फिर एक रिटायर्ड जजने, जो उनदिनों विरक्तजीवन व्यतीत करते थे और एक आश्रमके ट्रस्टी थे, पूछा, "मुझे लोग आश्रमके ट्रस्ट का प्रधान बनाना चाहते हैं। आप महान् पुरुष हैं, अपने अनुभव बताइये, मुझे यह पद स्वीकार करना चाहिये या नहीं?"

आप बोले, 'महन्त होना महापाप है। पुण्यवान् तो वही है जो व्रजवासियोंके टुकड़े खाकर 'जय जय कुञ्जबिहारी' रटे और वृक्षों के तले पड़ा रहे।"

(३)

आगरे यात्रामें आपने कहा था–"गुरु वही है जो सबसे राग छुड़ाता है और अपनेमें भी मोह नहीं करता।"

एक बार चम्बलके किनारे आपने प्रसन्नतापूर्वक कहा था–"हमारा सब परिकर सुखी है।" फिर बोले "जो मेरे दिये मन्त्र का अभ्यास करेगा उसे प्रेतादिकी बाधा नहीं होगी और वह सदा सुखी रहेगा।" आपकी इस उक्तिकी सत्यता अनेकों साधकों ने अनुभव की है।

(४)

श्रीवृन्दावनमें माता सरोजिनी नामकी एक बंगदेशीया महिला थीं। वे बड़ी भगवद्भक्त विदुषी और साधु प्रकृतिकी थीं। पूर्वाश्रममें

* ज्ञाननिष्ठ विरक्त अथवा मेरा निष्काम भक्त होकर सम्पूर्ण आश्रमों को उनके लिंगों के सहित त्याग कर विधि–विधानके अधीन न रहकर व्यवहार करे।

श्रीअरविन्द घोषसे भी उनका सम्पर्क रहा था। श्रीमहाराजजीमें उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे उन्हें 'गोपालजी' कहा करती थीं। जब वे बीमार हुईं तो श्रीमहाराजजी ने मुझे उनकी सेवा में रखा। एक दिन प्राःकाल वे मुझसे बोलीं, 'आज रात में मुझे बड़ी असह्य वेदना हुई। उस समय गोपालजी दिव्य देहसे मेरे पास आये और मेरा दुःख शमन करके चले गये।''

उनका अन्तकाल उपस्थित होनेसे पूर्व श्रीमहाराजजी उनके पास आये और उनसे पूछा, यदि तुम्हारे सामने हजारों कृष्ण नाँच रहे हों तो भी क्या तुम्हें ऐसा अनुभव होगा कि ये केवल प्रतीतिमात्र और सत्ताशून्य हैं ?''

माँ ने कहा, 'गोपालजी ! यदि आपकी कृपा होगी तो हो जायगा।''

(५)

महानिर्वाणके दो दिन पूर्व आपने भगवान् शंकराचार्यकी योगतारावलीके इन श्लोकों कोंलाल पैंसिलसे रेखाकिंत किया था–

'नेत्रे ययोन्मेषनिमेषशून्ये वायुर्यया वर्जितरेचपूरः।
मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम।।
उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्नुमपाःयमेकं तव निर्दिशामः।
पश्यन्नुदासीनतया प्रपञ्चं संकल्पमुन्मूलय सावधानः।। *

(१७ । १६)

* जिसके द्वारा नेत्र निमेष–उन्मेष रहित हो जाते हैं प्राण आने–जाने से रुक जाता है और मन संकल्प–विकल्पहीन हो जाता है वह

(६)

हम लोगों से कहा करते थे कि किसी में राग द्वेष मत करो। यह प्रपञ्च आत्मदृष्टि से आत्मा है, भगवद्दृष्टि से भगवान् है और मायिकदृष्टिसे माया है। अतः इसमें राग–द्वेष के लिये कोई अवकाश नहीं है।

एक बार बाबा रामदासजी पटना गये थे। वहाँ उनका अच्छा मान हुआ। जब वे लौट कर आये तब आपने उनसे कहा, "बेटा! मान हज्म करना कठिन है। देखो–

'तृणतुलिताखिलजगतां करतलकलिताखिलरहस्यानाम्।
श्लाघावारवधूटीघटदासत्वं सुदुर्निरसम्।।' *

आपके लिये तो मानापमान का कोई अर्थ ही नहीं था। कहा करते थे–निन्दा स्तुतिको चिड़ियों के शब्द के समान समझो।'

निर्वाण के समय भी आपने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि 'छद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेत। उपल इव तिष्ठासेत्। आकाशमिव तिष्ठासेत्।' अर्थात् शरीरका छेदन होनेपर भी न तो क्रोध करे और न काँपे ही। पत्थर की तरह निश्चल रहे तथा आकाश की तरह निर्विकार रहे।

मनकी उन्मनी अवस्था मुझे प्राप्त हो। हे विद्वन्! उन्मनी अवस्थाकी प्राप्तिके लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। इस प्रपञ्चको उदासीन दृष्टिसे देखते हुए तुम सावधानी से संकल्पको निःशेष करो।

* जिन लोगोंने सम्पूर्णजगतको तृण के समान समझ रखा है और इसका सम्पूर्ण रहस्य जिनकी मुट्ठी में है उनके लिये भी प्रशंसा रूपी वेश्याकी गुलामी को त्यागना अत्यन्त कठिन है।

आज हम अकुलाते हैं वे माधुर्य और दयासे पूर्ण वह मधुर मूर्ति अब कब और कहाँ मिलेगी ?

उपसंहार

धर्म, विज्ञान और जीवनकी शोध करनेवाले व्यक्ति को श्रीमहाराजजी के जीवनद्वारा पता लगता है कि पूर्णताकी प्राप्ति केवल मनोजय, धैर्य और तपस्याके द्वारा ही हो सकती है। अतः जो महापुरुष सभी के अन्तरात्मरूपसे सभी के साथ अभिन्न होकर रहता है वही पूर्णता प्राप्त कर सकता है। जो दूसरों के लिये उदार और स्वयं संयमशील है वही समाज में सबके लिये आदर्शस्वरूप हो जाता है। भारतवर्ष में त्याग ही शक्तिका स्रोत है। उन्होंने हमें सिखाया कि सर्वस्व खोकर भी अपने स्वरूप को सुरक्षित रखो। मुक्तात्माके प्रेमकी कोई सीमा नहीं होती। सभी में वे अपने चिन्मय दिव्य स्वरूप की झाँकी करते हैं और अपने व्यक्तित्वका सर्वभूतहितके लिये बलिदान कर देते हैं।



श्रीऋषिजी ब्रह्मचारी, कर्णवास

जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में जब मेरे हृदय में कुछ वैराग्यकी भावना का उदय हुआ तो मैं भगवत्प्राप्ति की लालसा से किसी अच्छे महात्मा की खोज करने लगा। मैं किन्हीं ऐसे महापुरुष की शरण लेना चाहता था जो पूर्णतया विरक्त और सिद्ध हों। इसी अन्वेषण में मैं पर्वतों में विचर रहा था। मेरे पूर्व पुण्य का उदय हुआ। श्री भगवान् की कृपा से वहाँ मुझको एक सत्पुरुष मिले। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से समझाया कि जिस प्रकार के महापुरुष की खोज में तुम पहाड़ों में भ्रमण कर रहे हो वैसे तो तुम्हारे ही प्रान्त में विद्यमान हैं। वे हैं श्रीउड़िया बाबाजी महाराज। तुम जाकर उनकी शरण ग्रहण करो।

उनकी बात सुनकर मैं वहाँ से चला आया। सौभाग्य से उन दिनों बाबा समीप ही शिवपुरी में विराजमान थे। मैंने वहीं जाकर उनके दर्शन किये और गुरुभाव से चरणों में प्रणाम किया। बाबाने पूछा, "भैया! तुम कौन हो और कहाँ से आये हो?" मैंने अपना परिचय देते हुए कहा; "महाराजजी! मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिये। इसी निमित्तसे मैं आपकी सेवा में आया हूँ।" इस पर बाबा बोले, "मैं जो कुछ कहता हूँ उसे मानो। तीन वर्ष तक गायत्रीका पुरश्चरण करो।" मैंने स्थान के विषय में पूछा तो उन्होंने श्रीगंगातट पर नरवर में रहकर अनुष्ठान करने की आज्ञा दी। इस प्रकार मुझे पूज्य बाबा के चरणों का आश्रय मिला। उसके पश्चात् उनकी आज्ञानुसार नरवर जाकर मैंने गायत्री का एक पुरश्चरण किया। फिर कर्णवास में मैंने बाबा के दर्शन किये इस बार उन्होंने दूसरा अनुष्ठान करने की आज्ञा दी।

बाबाकी आज्ञानुसार मैंने दूसरा पुरश्चरण भी पूरा किया। उसकी समाप्ति पर एक यज्ञ करने की मेरी इच्छा हुई। भगवत्कृपा से एक श्रद्धालु भक्तने यज्ञ की सब सामग्री जुटा देने का वचन दे दिया। परन्तु यज्ञारम्भ का एक दिन शेष रह जानेपर भी सामग्री नहीं पहुँची। मैं घबड़ाकर बाबाके पास गया और उन्हें अपनी चिन्ता सुनायी। उन्होंने कहा, 'अच्छा एक दिन और प्रतीक्षा करो।" बस उसी दिन वह भक्त सब सामग्री लेकर पहुँच गया। ब्राह्मण पहिले से निमन्त्रित थे ही। अतः श्रीमहाराजजी की सन्निधि में बड़े आनन्द से यज्ञ सम्पन्न हो गया। वहाँ से बाबा बाँध पर चले गये।

जब मैं बाँध पर आपकी सेवा में पहुँचा तो आपने मुझे तीसरा पुरश्चरण और करने की आज्ञा दी। उस समय मेरी इच्छा सन्यास ग्रहण करने की हो रही थी। मैंने बाबाके आगे अपना संकल्प प्रकट किया तो वे बोले, "अभी तुम्हारी संन्यास ग्रहण करने की अवस्था नहीं हुई है। यदि तुम संन्यास ले लोगे तो फिर तुम्हारा मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा।" बाबाकी यह आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने संन्यास का संकल्प त्याग दिया और कर्णवास जाकर तीसरा पुरश्चरण किया।

एक बार मेरे सामने इष्टदर्शन की चर्चा चल रही थी। उस वार्तालाप का मेरे चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं बहुत ही दुःखी हुआ। मन ही मन सोचने लगा कि अनेकों महात्माओं को अपने इष्टदेव का दर्शन हुआ है, परन्तु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूँ कि तीन पुरश्चरण करने पर भी मुझे दर्शन नहीं हुआ। इस प्रकार दुःखित चित्तसे विचार करता मैं रात्रि को सो गया। रात्रि के अन्त में मुझे स्वप्नावस्था में श्री गायत्रीदेवीने दर्शन दिया तथापि जाग्रत् अवस्था में दर्शन न होने के कारण मेरा मानसिक खेद बना ही रहा। तब मैंने बाबा

के पास जाकर अपने मन की बात कही। वे बोले, "भैया! कलियुग में स्वप्नदर्शन भी बहुत है। इसमें दुःख मानने की कोई बात नहीं है। और युगों की अपेक्षा कलियुग में चतुर्गुण अनुष्ठान करने का नियम है। इसलिये अभी तुम जाकर एक अनुष्ठान और करो। मेरा विश्वास है कि मुझे यह गायत्रीदर्शन पूज्य बाबा के संकल्प से ही हुआ था।

इसी प्रकार एकबार स्वप्न में ही मुझे ज्योतिर्मय प्रकाशपुञ्ज के रूप में कैलाश का दर्शन हुआ। उस समय स्वप्न में ही कोई महापुरुष बता रहे थे—यह कैलाश है।" मैं समझता हूँ यह चमत्कार भी पूज्य बाबाकी कृपाका ही परिणाम था, क्योंकि जीवन में मैंने तो कभी कैलाश के दर्शन किये नहीं हैं।

एक बार श्रीमहाराजजी हाथरस का उत्सव समाप्त करके श्रीवृन्दावन जा रहे थे। साथ में अन्य कई भक्तों के सहित मैं भी था। एकादशी तिथि थी। मैंने सोचा कि लोग बाबाको सिद्ध पुरुष बताते हैं। यहाँ न तो आस–पास कोई गाँव है और न इनके साथ ही कोई खाद्य पदार्थ हैं। यदि यहाँ सबके लिये फलाहार आ जाय तो मैं भी समझूँगा कि बाबा सिद्ध पुरुष हैं। बस, थोड़ी ही देर में एक अपरिचित व्यक्ति आया। वह अपने साथ मेवा, फल आदि बहुत सा फलाहारी सामान लिये हुए था। वह सब सामग्री उसने बाबाको भेंट कर दी। इससे मुझे विश्वास हो गया कि बाबा अवश्य सिद्ध हैं। इसके बाद भी ऐसा कई बार हुआ है कि मेरे कुछ न कहने पर भी बाबा ने मेरी इच्छा जान कर मुझे खाने–पीने की वस्तुएँ और वस्त्रादि दिये हैं। इससे मुझे निश्चय है कि बाबा में दूसरे के मन की बातों को जान लेने का सामर्थ्य था।



पं० किशोरीलालजी, कर्णवास

प्रथम दर्शन

पूज्यबाबा सबसे पहले सन् १६१६ में कर्णवास पधारे थे। उन दिनों आप अहर्निश झाड़ीमें ही रहते थे। केवल मध्यान्ह् में पक्के घाटपर आते और ब्रह्मचारी शम्भुदत्त तथा बालब्रह्मचारिणी जमुना बाई से माधूकरी भिक्षा लेकर पुनः झाड़ी में ही चले जाते थे। मुझे उन्हीं दिनों श्रीहनुमानजी के मन्दिर पर पहली बार आपका दर्शन हुआ। इस प्रकार प्रायः चार मास ठहरकर आप भेरिया चले गये। वहीं श्रीअच्युतमुनि जी, श्रीबंगाली बाबाजी, श्रीहरिबाबाजी और स्वामी शास्त्रानन्दजी आदि महापुरुषों से आपकी भेंट हुई।

दूसरी बार

दूसरी बार सन् १६१८ में अषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन बाबा आये और हनुमानजी के सामनेवाले अट्टेपर ठहरे। इस कुटीमें पहले गंगाराम सनम नामके एक ब्रह्मचारी रहते थे। यहाँ रात्रिमें जब आप ध्यान करनेके लिये बैठते तो एक छायामूर्त्ति आपके सामने आकर बैठ जाती। वह करती कुछ नहीं थी किन्तु बाबाके मनमें उसके सम्बन्ध में विचार होने लगता था। एकदिन आपने उससे पूछा, 'तुम कौन हो ?" उत्तर मिला, मैं ब्रह्मराक्षस हूँ और इस कुटी में रहता हूँ आप यहाँ मत रहो।" आपने उसकी

बात मान ली और हनुमानजी के पूर्ववाली कुटीमें चले गये। दिनमें पता लगानेपर मालूम हुआ कि इस कुटीमें पहले गंगाराम सनम नामक के एक ब्रह्मचारी रहते थे। उनके पास रुपया-पैसा भी रहता था। इसलिये लोभवश चोरों ने उन्हें मार दिया था।

बाग में प्रथम बार

इसके पश्चात् एकबार जब आप कर्णवास पधारे तो अपने बगीचेमें ही ठहरे। जिस समय आप आये वहाँ एक साँड़ बैठा था। आते ही वह उठा और गोबर करके चल दिया मानों बाबा के आगमन को शुभ सूचित करके वह स्थान खाली करके चल दिया। स्वयं बाबाने भी इसे एक शुभ शकुन बतलाया था। सचमुच इसका परिणाम बड़ा अद्‌भुत हुआ। आगे चलकर उस बगीचे का सौभाग्य जगा और वह एक तीर्थस्थान ही बन गया। इसके पश्चात् आप प्रायः प्रति तीसरे वर्ष कर्णवास पधारते और इसी बगीचे में ठहरते थे। आपके कारण श्रीगुरुपूर्णिमा, चातुर्मास्य, यज्ञ, पुरश्चरण एवं अनुष्ठानादिके अवसरों पर यहाँ जैसे जैसे उत्सव हुए और उनके कारण इस बगीचेकी जैसी सौभाग्य श्री देखी गयी वैसी सोभा सहस्रों उद्यानों में से किसी एक ही कि देखी जाती है। इस बगीचे में जिरौलीवाले कुँवर नेत्रपालसिंह और उनके भाईयों ने जो कुटिया बनवायी वह भी बड़ी सौभांग्यशालिनी रही। उसे बनवाने वालों का सारा परिवार ही श्रीमहाराजजी का अनन्य भक्त हो गया।

उस समय बाबाके पास भक्तोंका विशेष जमघट नहीं रहता था। देवीजीके चन्दीपंडा, गौशालाका सोहना रसोइया और रामस्वरूप नामका एक बढ़ई का लड़का—बस ये ही तीनभक्त अधिकतर आते थे। इनमें से रामस्वरूपने आपके लिये एक छः फुट लम्बी, दो फुट चौड़ी और

एक फुट ऊँची चौकी बना दी थी, जिसमें दो–दो अंगुल पर पट्टियाँ लगी थीं। बाबा उसीपर गुदड़ी डालकर सोते थे। वह चौकी अब भी मौजूद है। उसे देखकर आश्चर्य होता है। कि उसपर उन्हें कैसे नींद आती होगी। जिस कुटी में बाबा सोते थे उसमें प्रकाश या वायुके लिये एक भी छिद्र नहीं था और किवाड़ों पर भी टीन जड़ा हुआ था। रात को जब हम आते तो बाबा लेटे–लेटे रामस्वरूप का सिर अपनी छाती पर रखकर थपकी लगाने लगते। वह एक मिनट में ही सो जाता और फिर घंटो सोता रहता। बाबा हम बालकों के साथ बातें करते हुए बाल वत् खिलवाड़ किया करते थे। साथ ही हमारी दैनिक चर्चा पूछते और हमारे हृदयों में शुभ–संस्कार डालनेका प्रयत्न करते थे।

हमारे पथ प्रदर्शक

एक दिन मैंने कहा, "बाबा! हनुमानजी बड़े अच्छे हैं आज मदरसे में मेरी दवात खो गयी थी। मैंने उसके लिये एक पैसे का प्रसाद बोला, तो वह तुरन्त मिल गयी।" इस पर आप बोले, भैया! हनुमान बाबा तो ऐसे ही हैं। पर तुम्हें उनसे ऐसी ओछी बात नहीं कहनी चाहिये। देखो, जो एक सेठका नौकर है, वह क्या अपने मालिकसे एक लोटा जल लाने के लिये कह सकता है? कदापि नहीं कह सकता। परन्तु यदि वह बीमार पड़ जाय तो सेठ स्वयं ही उसके लिये जल गरम करायेगा, डाक्टर–वैद्य बुलवायेगा और उसे जल्दी अच्छा करनेका प्रयत्न करेगा। जब कोई नौकर एक साधारण सेठ पर हुकूमत नहीं कर सकता तो जो सारी सृष्टिका स्वामी है उसके ऊपर तुम कैसे हुक्म चला सकते हो? भैया! वह सेवक नहीं जो अपने स्वामी पर हुक्म चलाता है और वह स्वामी सच्चा स्वामी नही जो अपने सेवककी

आवश्यकता का ध्यान नहीं रखता। इसलिये तुम्हें अपने इष्टदेवसे कभी--किसी कष्टकी बात नहीं कहनी चाहिये। वे तो तुम्हें हर समय देखते ही रहते हैं। इसके सिवा किसी से कुछ मांगना– यह ब्राह्मण का काम नहीं है। किसी ब्राह्मणको माँगते देखकर मुझे तो बड़ा कष्ट होता है। कष्ट पड़े तब भी किसी के आगे दीन नहीं होना चाहिये। यदि दीन बनना ही है तो दीनानाथ के सामने ही बनोः–

'जग जाँचिये कोउ न जाँचिये तो जिय जाँचिय जानकि जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाय, जो जारत जोर जहानहिं रे।।'

इसी प्रकार आप हम बालकोंको अनेक प्रकारसे सदुपदेश दिया करते थे। मानों आपने स्वयं ही हमारे जीवननिर्माण का उत्तरदायित्व ले लिया हो और हुआ भी ऐसा ही। जीवनभर हमारे सिरपर आपका वरद हस्त रहा और हमें आपके संरक्षण में विपत्तिसम्पत्तिका कोई भेद ही नहीं मालूम हुआ। क्या–क्या लिखा जाय? उनकी एक दिन की बातें भी पूरी तरहसे नहीं लिखी जा सकतीं। हम तो केवल इतना ही जानते हैं कि हमारा सारा जीवन उनकी छत्रछायामें ही बीता है और आगे भी बीतेगा, क्योंकि आप कहा करते थे कि जिसे मैं एकबार पकड़ लेता हूँ उसे कभी नहीं छोड़ता। कहा भी है–'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।' अतः हमें तो उनके इस आवश्वासनका ही भरोसा है और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इस तथ्य का अनुभव भी करते हैं।

आज किस प्रकार वे हमारा पथप्रदर्शन करते हैं इस विषय में यहाँ एक प्रसंग का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। बाबाके लीलासंवरणके चार–पाँच साल पश्चात् एकदिन मेरे पुत्र ऊँप्रकाश ने स्वप्न में देखा कि वृन्दावन–आश्रम के कथामण्डपमें श्रोता लोग बैठे हुए हैं और बीचमें खड़े हुए श्रीहरिबाबाजी उन्हें उपदेश कर

रहे हैं। परन्तु उनका सब शरीर तो अपना है, पर मुँह श्रीमहाराजजी का है। ठीक यही स्वप्न एकबार आपने मुझे भी दिखलाया था। इसका अभिप्राय यही है कि श्रीहरिबाबाजी के मुखसे मैं ही बोल रहा हूँ। अतः उनके कहे हुए बचनोंको तुम केवल उन्हीं के नहीं मेरे भी वचन समझो। वास्तव में बाबामें दूसरोंके मुँहसे बोलनेकी सिद्धि भी थी। अतः श्रीहरिबाबाजी हमें यदि कोई आदेश देते हैं तो वह हमें श्रीमहाराजजी की ही आज्ञा जान पड़ती है।

यज्ञानुष्ठान एवं उत्सव

पूज्य श्रीमहाराजजी जहाँ–कहीं भी रहते थे वहाँ बड़े–बड़े उत्सव और यज्ञानुष्ठानादि भी होते रहते थे। कर्णवास में भी आपकी सन्निधि में अनेकों उत्सव हुए। उनमेंसे कुछ तो ऐसे विलक्षण थे कि जिनकी स्मृति जीवनभर हमारे हृदयपटलसे नहीं जा सकती। यहाँ हम उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं–

गायत्री पुरश्चरण–यह पुरश्चरण सं० १९८४ वि० में गोशालाके बाहर श्रीविश्वेश्वरदयालकी धर्मशालापर हुआ था। इसके यजमान थे हाथरसवाले ला० गनेशीलालजी और आचार्य थे काशीके प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पं० मोतीदत्तजी। इसमें चौबीस विद्वान् ब्राह्मण जापक थे और प्रत्येक जापक नित्य–प्रति तीन सहस्र गायत्रीका जप करते थे। श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंसे पूछकर उनकी रुचि के अनुसार यथेष्ट भोजन कराया जाता था। इस अवसर पर श्रीमहाराजजी का सम्पूर्ण भक्तपरिकर भी एकत्रित हुआ था और कुटी से लेकर पक्के घाटतक सब लोग ठहरे हुए थे। परन्तु उन दिनों यहाँ का वातावरण ऐसा सात्त्विक था कि किसीकी कोईचीज नहीं खोई। यदि किसी को कोई वस्तु मिली तो वह उसे

कार्यकारिणी समितिके पास जमा करा देता था। और वहाँ से वह उसके स्वामी को मिल जाती थी। उत्सवकी समाप्तिपर पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी और पं० श्रीजीवनदत्तजी आदि अनेकों महापुरुष भी पधारे और एक वृहद् भण्डारे के साथ वह पुरश्चरण सानन्द समाप्त हुआ।'

श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा – श्रीलम्बेनारायणस्वामी एक विरक्त परमहंस थे। पूज्य बाबा से उनकी बड़ी प्रीति थी। जिस समय कर्णवासमें वे ब्रह्मलीन हुए बाबा उस समय दिल्ली में थे। स्वामी श्रीनिर्मलानन्दजी ने उनके निमित्त से एक वृहद् भण्डारे की योजना की और मुझे आज्ञा दी कि जबतक बाबा नहीं आयेंगे भण्डारा नहीं होगा। मैं पता लगाता यमुनातटपर छायसा पहुँचा और बाबा से कर्णवास पधारने की प्रार्थना की तथा उनकी स्वीकृति मिलनेपर फाल्गुनके कृष्णपक्ष में यह उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर खेराके पं० चतुर्भुजजी ने श्रीमद्भागवतका सप्ताह कहा तथा निरन्तर अखण्ड संकीर्तन होता रहा। इस संकीर्तन में अन्य कीर्तनमण्डलियोंके अतिरिक्त एक विरक्तोंकी भी मण्डली थी, जिसमें श्रीपल्टू बाबा, रामदासजी और दण्डिस्वामी सियाराम आदि थे। शिवरात्रिको बड़े समारोहसे रुद्राभिषेक और जागरण हुआ। इसी अवसर पर ब्रह्मलीन स्वामीजी के सेवक ब्रह्मचारी जयजयरामजी ने पण्डित श्री विश्वेश्वराश्रमजी से दण्डग्रहण किया और वे श्रीनारायणाश्रम नामसे विख्यात हुए। अन्तिम दिन विशाल भण्डारा हुआ जिसमें ढाई–तीन हजार व्यक्तियों ने प्रसाद पाया।

महारुद्रयाग – पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के तत्त्वधान में यह महायज्ञ हाथरसवाले सेठ गणेशीलालजी ने माघमास में वसन्त पंचमी से पूर्णिमातक किया था। इसके व्यवस्थापक थे पं० श्रीजीवनदत्तजी,

अध्यक्ष थे दण्डिस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी, आचार्य थे काशी के सुप्रसिद्ध वैदिक महामहोपाध्याय पं० विद्याधरजी और ब्रह्मा थे ऋषिकेशके प्रख्यात वेदपाठी पं० बालकरामजी अग्निहोत्री। इनके अतिरिक्त काशी, ऋषिकेश नरवर आदि कई स्थानों के प्रायः पचास विद्वान् इस महायज्ञ के ऋत्विक् थे। इस महोत्सव में श्रीहरि बाबाजी एवं ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी आदि और कई महापुरुष पधारे थे और सभीके यथोचित सत्कार की बड़ी सुन्दर सुव्यवस्था थी। नित्यप्रति प्रायः एक सहस्र व्यक्तियोंका भोजन होता था। तथा कीर्तन और सत्संगका भी सुन्दर कार्यक्रम रहता था। अन्तिम दिन वृहद् ब्रह्मभोज हुआ, जिसमें आस–पास के कई ग्रामों के सभी ब्राह्मण निमन्त्रित थे। उस दिन प्रायः दस सहस्र व्यक्तियों ने भोजन किया था। इस महायज्ञ की स्मृतिरूप एक पक्की यज्ञशाला बनायी गयी, जो पक्के घाटपर ठीक उसी स्थान पर है जहाँ यह यज्ञ हुआ था।

अभिषेकात्मक रुद्रयाग – सं०१९९८ में बाबाका चातुर्मास्य कर्णवास में हुआ। उसी समय गुरुपूर्णिमा से जन्माष्टमीपर्यन्त श्रीगणेशीलालजी की ओर से अभिषेकात्मक रुद्रयाग हुआ। इस यज्ञमें विभिन्न स्थानोंके अनेक विद्वान् ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे। और आचार्य थे काशीवासी पं० मोतीलालजी। भगवान् शंकरपर नित्यप्रति कई सहस्र विल्पत्र राम नाम लिखकर चढ़ाये जाते थे, जो कुल मिलाकर सवा लक्षकी संख्यामें पूर्ण हुए तथा वेदमन्त्रों द्वारा भगवान् का अभिषेक किया जाता था। इस यज्ञ में भी नित्यप्रति पूछ–पूछकर ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार भोजन कराया जाता था। अन्त में उन्हें पुष्कल दान–दक्षिणासे सन्तुष्ट किया गया और भाद्रपद कृ० १० को वृहद् भण्डारा हुआ।

विविध उत्सव – पूज्य बाबाके तत्त्वावधानमें कर्णवास में और भी अनेकों उत्सव हुए। गुरुपूर्णिमा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, शरत्पूर्णिमा, दीपावली और अन्नकूट आदि पर्वदिन पड़नेपर स्वतः ही एक विशिष्ट उत्सव हो जाता था। शरत्पूर्णिमापर यों तो प्रति वर्ष कई मन दूध की खीर का भोग लगता और सभी नर–नारियोंको भर पेट प्रसाद मिलता था, तथापि एक बार तो पैंसठ मन दूध की खीर बनायी गयी थी। कई बार श्रीमद्भागवत्के सप्ताह हुए। सं० १९९३ में विरौलीवाले बौहरे देवीसहायजी की ओर से एक सप्ताह हुआ था, जिसका प्रवचन पं० जर्नादनजी चौबेने किया था। और सं० १९९८ में एक विरक्त सप्ताह श्रीमुनिलालजी की ओर से हुआ, जिसके वक्ता थे स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती। इसी प्रकार जब कभी बाबा पधारते थे तब समय–समयपर श्रीगणेशीलालजी ठाकुर कंचनसिंहजी तथा बौहरे श्रीदेवीसहायजी आदि भक्तोंकी ओर से मनों दूध श्रीगंगा मैया को चढ़ाया जाता था उस समय भक्तमण्डल नावों में बैठकर 'कलि–मल हारिणी गंगे ! पतितपावनी गंगे !' का कीर्तन करते हुए बड़े भावसे दुग्धकी धार छोड़ते थे। वह दृश्य भी देखने योग्य होता थां

बाबाकी समाधि-अवस्था

सं० १९९२ की बात है। एक दिन नित्य–नियमानुसार सायं काल में समष्टि कीर्तन हुआ। उसके पश्चात् पद्गायन के समय सिरसावाले पं० खूबीरामजीने 'मोहन बसि गयो इन नयननमें' यह प्रसिद्ध पद गाया। उसे सुनते सुनते अकस्मात् बाबा समाधिस्थ हो गये। एक घंटा बीत जानेपर भी उत्थान न हुआ। तब तो भक्तजन बहुत घबड़ाये। मैं स्वामी श्रीनिर्मलानन्दजी के पास गया। उन्होंने

आकर उनकी दशा देखी और व्युत्थान करानेके लिये पैरका अँगूठा मलनेकी आज्ञा दी। इससे बाबा पुनः प्रकृतिस्थ हो गये।

उनकी कृपा

मैं बाबाके स्नेह और कृपालुताकी बात क्या कहूँ। जब उनकी स्मृति होती है हृदय गद्गद हो जाता है उनके जैसा प्रेम और कृपा करनेवाले कोई संत अभीतक मेरी दृष्टिमें तो नहीं आये। बाबाने मुझे बालक की तरह पाला। उनके सामने मैं बालक था, युवा हुआ और फिर वृद्ध भी हो गया। परन्तु उनका प्रेम सदैव एक–सा रहा। आज भी केवल उनका स्थूल शरीर ही मेरे सामने नहीं है, शेष सारी बातें तो ज्यों की त्यों चल रही हैं। जब कोई समस्या उपस्थित होती है, दुःखके अवसर आकर घेर लेते हैं तो वे स्वयं ही कृपा करके मार्ग बताते हैं परन्तु यह बात कहनेकी नहीं हैं। इस रसको तो गूँगेके गुडास्वादनकी तरह वही जानता है जो भोगता है। उनकी कृपालुताकी यह अनुभूति कहने मे आ भी नहीं सकती। कहनेपर भी विश्वास तो उसीको होगा जो स्वयं भी ऐसा अनुभव कर रहा होगा, अन्य पुरुषोंको उसमें विश्वास नहीं हो सकता। भक्त अर्जुनके लिये भगवान् श्रीकृष्ण परात्पर ब्रह्म थे, परन्तु अभक्तों की दृष्टिमें तो वे ग्वारिया ही बने रहे। अतः इस विषय में और अधिक न लिखकर उनके पादपद्मोंमे अपनी तुच्छ श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ।



पं० प्यारेलालजी वैद्यशास्त्री, रामघाट

रामघाटमें पदार्पण

प्रातः स्मरणीय पूज्य श्रीगुरुदेव सबसे पहले सन् १९१६-१७ के लगभग रामघाट पधारे थे और बनखण्डेश्वर महादेवके समीप इमलीवाली कुटीमें विराजे थे। पास ही एक तिदरीमें मेरे दीक्षागुरु परमविद्वान् गायत्रीजापक वेदपाठी ब्रह्मचारी श्रीहीरानन्दजी महाराज रहते थे। मैं प्रायः नित्य ही श्रीशंकरजी एवं ब्रह्मचारीजी के दर्शनार्थ वहाँ जाया करता था। ब्रह्मचारीजीकी कृपासे ही मुझे पूज्य बाबाका दर्शन और परिचय प्राप्त हुआ। संस्कारवश स्वाभाविक ही बाबाके श्रीचरणोंमें मेरा स्नेह बढ़ता गया और उनके नित्यदर्शन किये बिना मुझे चैन नहीं पड़ता था। उस समय आपके पास एक पीतल का कमण्डलु था, जिसे किसी ने चुरा लिया। अतः तबसे आप एक छोटी–सी तूँबी रखने लगे।

उन दिनों आपका साधन बहुत बढ़ा–चढ़ा था। आप दिन भर सिद्धासन लगाये बैठे रहते थे। रात्रि में भी आसनपर ही विश्राम कर लेते थे, लेटते नहीं थे। स्त्रियों को पास नहीं आने देते थे। उस समय आपके पास आने–जानेवाले भक्तोंमें पं० वंशीधर, पं० बाबूराम बगीचीवाले, पं० जयगोपाल, पं० शिवनारायण और पं० गंगासहाय रावजी आदि मुख्य थे। इनमें पं० वंशीधरका प्रेम और उनकी सेवा विशेष प्रशंसनीय थी। वे नित्यप्रति रातकों लौटते समय बाबाकी आरती उतारते, धूप करते और उन्हें सुलाकर घर आते थे। फिर प्रातः काल ही उन्हें चाय पिला आते थे।

धीरे–धीरे बाबाकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी औ उसी अनुपातसे उनके भक्तोंकी संख्या भी बढ़ी। फिर विधिवत् उनका पूजन भी होने लगा, जो अन्ततक होता रहा। उनके पास जो भी आता 'रिक्तहस्ते न गन्तव्यं राजानं देवतां गुरुम्' इस उक्तिके अनुसार कुछ न कुछ पत्र पुष्प भेंटके लिये अवश्य लाता। इस प्रकार फिर आगुन्तुकोंके लिये बाबाके पास प्रसाद की बहुलता भी रहने लगी।

उनकी गुणगरिमा

बाबा में एक प्रकारकी विचित्र आकर्षणशक्ति थी। भले ही विरोधी विचारोंबाला व्यक्ति हो, तथापि जो भी उनके पास जाता था उन्हींका हो जाता था। उनके पास सभी वर्ग और सभी श्रेणियोंके व्यक्ति आते थे। हिन्दू, मुसलमान भंगी, चमार, धनी, निर्धन, विद्वान्–मूर्ख सभीके लिये आपका दरबार खुला हुआ था। सब यही समझते थे कि बाबा सबसे अधिक प्रेम मुझसे ही करते हैं। प्रत्येक प्राणी बाबाके प्रेमका पात्र था। उनके भण्डार से कुत्ते को भी प्रसाद मिलता था।

बाबाका व्यक्तित्व महान् था। उनकी प्रतिभा चमत्कारिणी थी। सत्संगके समय अनेकों प्रकार के जिज्ञासु बड़े विकट तर्क उपस्थित करते, परन्तु वे सभी उनका यथोचित समाधान पाकर सन्तुष्ट हो जाते थे। अपने पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिकी वे निरन्तर सुधि लेते रहते थे। उसे किसी प्रकारका कष्ट न हो इसका उन्हें सदा ध्यान रहता था उनकी स्मरणशक्ति भी बड़ी अद्भुत थी। जिसे एक बार देख लेते थे, फिर जीवनभर नहीं भलूते थे।

उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र अथवा धन आदि में उनकी बिलकुल आसक्ति नहीं थी। वे श्रीगीताजी के पद्मपत्रमिवाम्भसा' के प्रत्यक्ष उदाहरण थे। चारों ओरसे सब प्रकारकी सामग्रियोंसे घिरे रहने पर भी वे सर्वथा

निर्लिप्त रहते थे। उनका भोजन अत्यन्त सादा और अल्प होता था। दिनमें केवल एक बार ही भिक्षा करते थे। फल और दूधमें भी उनकी कोई रुचि नहीं थी। बहुत आग्रह करने पर ही थोड़ा ले लेते थे।

उनके उपदेश का प्रभाव

बाबा अपने उपदेश में तम्बाकूके त्यागपर बहुत जोर देते थे। वे इसे वीर्यका घोर शत्रु बताते थे। मुझे और मेरे साथियों को तम्बाकू खानेका व्यसन था! बाबाके उपदेश से चित्तछोड़ना तो चाहता था किन्तु अभ्यासवश छूट नहीं पाता था। आखिर एक दिन मैंने प्रतिज्ञा की कि आज से तम्बाकू खाना मेरे लिये गोमांसभक्षण के समान होगा। बस उसीदिन से यह दुर्व्यसन छूट गया। इससे मेरे स्वास्थको भी लाभ हुआ। यदि कभी स्वप्नमें कोई पान में तम्बाकू खिला देता है तो मुझे अपना मुँह कड़वा लगने लगता है और मैं थूकने लगता हूँ। उस प्रतिज्ञाका हृदयपर इतना प्रभाव है।

बाबाकी आज्ञासे मैं नित्यप्रति गायत्रीका जप तथा रामायण और गीता का पाठ करता हूँ। इससे दुःखके अवसरोंपर भी चित्त में शान्ति बनी रहती है।

उनकी योगशक्ति

एक बार हाथरसके वैद्यराज पं० भूदेव शर्मा अपने साथ पं० देवशर्मानामक एक सुप्रसिद्ध हठयोगी सज्जनको लेकर बाबा के दर्शनार्थ आये। देवशर्माजीकी हठयोग में अच्छी प्रगति थी। उन्होंने हाथरस में कई जगह अपने योगका प्रदर्शन भी किया था बाबाके पास भी उन्होंने योगका प्रदर्शन करने की इच्छा प्रकट की। अतः श्रीमहाराजजी की कुअीपर दोपहर को दो बजे सैकड़ों मनुष्य एकत्रित हो गये। सबसे पहले उन्होंने एक लड़केका माध्यम चुना और उस पर अपनी शक्ति

का प्रयोग आरम्भ किया परन्तु डेढ़ घण्टे तक सिर तोड़ परिश्रम करनेपर भी वे उस बालकपर कोई प्रभाव नहीं डाल सके। बाबा यह सब देखकर मुसकरा रहे थे। फिर और भी कई पात्र बदले गये। परन्तु उनपर भी उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार बाबाके सामने वे अपना चमत्कार दिखाने में सर्वथा असमर्थ रहे। यह सब बाबाकी योग शक्तिका ही प्रभाव था। यहाँ उससे उनकी शक्ति कुण्ठित हो गयी थी। अन्यत्र तो वे अपनी शक्तिका प्रदर्शन करते ही थे।

दूसरे दिन वे ब्रह्मचारी श्रीजीवनदत्तजी तथा उनकी पाठशालाको देखने के लिये नरवर चले गये। वहाँ रात्रिमें शास्त्री के विद्यार्थी ज्वालाप्रसादको काले साँपने डस लिया। विषके प्रभावसे वह विद्यार्थी मूर्च्छित हो गया और उसके मुँहसे फेन निकलने लगा। जब हठयोगीजी को यह समाचार मिला तो उन्होंने तुरन्त आकर कुछ ऐसी योगक्रियाएँ की कि वह विद्यार्थी उसी समय विषके प्रभावसे मुक्त हो गया। उसके तो प्राण बच गये, परन्तु हठयोगीजी के ऊपर विषका वैसा ही प्रभाव हो गया जैसा उस विद्यार्थीपर था। यह बात हठ्योगीजी ने पहले ही सावधानी से सबको समझा दी थी। अतः परिचारकोंको उनके प्राणनाशकी कोई आशंका नहीं हुई। दो दिन तक वे उसी अवस्था में पड़े रहे। उसके पश्चात् स्वस्थ हो गये और तीसरे दिन हाथरस चले गये। नरवर की यह घटना सुनकर रामघाटके लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और इससे उन्हें बाबाकी योगशक्तिका प्रभाव भी प्रंकट हो गया।

एक बार बाबा की कुटीके पास एक शेर आ गया। उसने कई पशु मार दिये। इससे बाबाके पास जानेवाले भक्तगण घबड़ाने लगे। कई तो दिन में ही दर्शन कर आते थे, भयके कारण रात्रिको वहाँ नहीं जाते थे। जब बाबाको यह बात मालूम हुई तो वे बोले, "भैया! वह चामुण्डादेवी के दर्शन करने आता है, अब चला जायगा। इससे डरनेकी कोई बात नहीं

है।" उसके बाद सचमुच ही वह शेर चला गया। फिर उसका कोई उत्पात सुननेमें नहीं आया।

बाबाकी कुटीमें कई बार सर्प भी आ जाते थे। एक बार तो एक सर्प उनकी गोद में होकर निकल गया। पर उन्हें न उनसे कोई भय हुआ और न किसी प्रकार की क्षति ही।

बाबाका स्वदेश प्रेम

भारत में जब स्वतन्त्राप्राप्तिका आन्दोलन चल रहा था बाबाके पास हिंसावादी (क्रान्तिकारी) और अहिंसावादी (कांग्रेसी) दोनों दलोंके देशप्रेमी आते थे और उनसे अपने कार्यों के विषय में परामर्श किया करते थे। कभी–कभी जहाँ–तहाँसे बाबा उन्हें आर्थिक सहायता भी दिला देते थे। बाबा भारतकी स्वतन्त्रता के कट्टर पक्षपाती थे। कभी–कभी आप कहा करते थे के देश शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा और अँग्रेज यहाँ से निकाल दिये जायेंगे।

मैं यद्यपि सन् १९२० से ही रामघाट कॉंग्रेस कमेटी का प्रधान था, परन्तु धीरे–धीरे मेरे विचार क्रान्तिकारी हो गये थे। सन् १९३० में जब मैं जेलसे लौटा तो बाबाने मुझे चाँदका फाँसी अंक भारतमें अँग्रेजी राज्य और गीतारहस्य ये तीन पुस्तकें पढ़नेके लिये दी थीं। उससे पूर्व में अनेक क्रान्तिकारी इतिहास पढ़ चुका था। एक दिन रात्रिके समय मैंने तथा पं० गंगासहाय रावजी एवं टीकारामजी मुनीम आदि पाँच व्यक्तियों ने बाबाके सामने रिवाल्वर और तलवार आदि अस्त्र–शस्त्र रखकर उनके चरण छूकर शपथ ली थी कि जैसे भी हो वैसे हम देशके शत्रुओंको देशसे बाहर निकालकर ही दम लेंगे। यदि आवश्यक होगा तो इस कार्य में हम अपने प्राण भी प्रसन्नतापूर्वक दे देंगे। उस समय हमारे साथ बाबासे मिलने के लिये आये हुए मेरठके क्रान्तिकारी दल के सुप्रसिद्ध सदस्य श्रीशम्भुदत्त शर्मा

भी उपस्थित थे। बाबाने हमें आशीर्वाद दिया था कि भगवान् तुम्हारा संकल्प पूर्ण करें और तुम्हें शक्ति प्रदान करें।

इस प्रकार यद्यपि पहले श्रीमहाराजजीने हमें हिंसाके लिये भी प्रोत्साहित किया था, परन्तु पीछे वे गान्धीवाद के अनुसार अहिंसा मार्गद्वारा ही काम करनेकी सलाह देते थे। अतः हम लोगोंने भी उस मार्गको छोड़कर यही पद्धति स्वीकार कर ली थी।

दो श्लोक

बाबाने मुझे दो श्लोक याद करने की आज्ञा दी थी। इनमें से एकमें उत्कृष्ट भक्तियोग का और दूसरे में ज्ञाननिष्ठाका प्रतिपादन किया गया है। प्रथम श्लोक में भगवान् नृसिंह भक्तवर प्रह्लादसे कहते हैं–

क्वेद वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत् क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते।
आलोचितं विषयमेतदभूतपूर्वं क्षन्तव्यगं यदि मे समये विलम्बः।। •

दूसरा श्लोक इस प्रकार है–

इतो न किञ्चित्परता न किञ्चिद्यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्स्वात्मावबोधादपरं न किञ्चित्।। १

इस प्रकार बाबाकी वे सब बातें अब केवल स्मृतिमात्र रह गयी हैं। अब तो नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर उनकी मूर्त्तिका ध्यान कर लेता हूँ। जिस दिन स्वप्न में उनका दर्शन हो जाता है वह दिन अत्यन्त मंगलकारी होता है।

• कहां तो तेरा यह सुकुमार शरीर और अल्प आयु तथा कहाँ उस मतवाले दानवेन्द्र की दी हुई वे दारुण यातनाएँ। ऐसी बात तो हमने अभूतपूर्व ही देखी है। (पहिले ऐसा कभी नही देखा गया)। अतः प्रिय प्रह्लाद ! मेरे आनेमें यदि देर हुई हो तो क्षमा करना।

१ न तो इस लोक में कुछ है और न परलोक में ही कुछ है। यही नहीं, जहाँ–जहाँ जाता हूँ वहाँ–वहाँ कुछ भी नहीं है। विचार कर देखता हूँ तो संसार कुछ है ही नहीं है। एक आत्मचैतन्य के सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

श्रीबिहारीलालजी, रामघाट

श्रीमहाराजजीके संसर्गमें आनेका प्रधान कारण हुआ अपना साधुसंगतिका स्वभाव। वे रामघाट पधारे हुए थे। प्रथम मिलन में ही मैंने उनमें विलक्षण आकर्षण शक्तिका अनुभव किया। जब मैंने उनसे ईश्वरप्राप्तिका साधन पूछा तो वे बोले, "तुम्हारा प्रेम सगुण में है या निर्गुण में।"

मैं–सगुण भगवान् में।

श्रीमहाराजजी–सगुण किस रूप में?

मैं–भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें।

तब श्रीमहाराजजीने मुझे श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान, स्थिर सुखासन, चित्तशान्ति, ध्येय से इतर दर्शनका त्याग श्रीरामनाम जप, रामायणपाठ सत्संग और सदाचारपालन आदि साधन बतानेकी कृपा की।

यद्यपि श्रीमहाराजजीके गुणोंका वर्णन करनेमें तुच्छ प्राणी सर्वथा असमर्थ हूँ, तथापि उनके कुछ पुनीत संस्मरण उन्हींके करकमलोंमें असमर्थ हूँ, तथापि उनके कुछ पुनीत संस्मरण उन्हींके करकमलोंमें यथामति समर्पित करता हूँ।

मैंने उन्हींके श्रीमुखसे सुना था कि ब्रह्मचर्यावस्थामें वे बड़ी सादगी से रहा करते थे। कई वर्षतक वे तूँवीमें कच्चा आटा

घोलकर पीते रहे। फिर कुछ वर्ष कच्चे आटेकी पिण्डी, थोड़ी दाल और थोड़ा नमक डालकर अग्निपर रख देते और सिद्ध होने पर उसीको पा लेते थे। वैराग्य मूर्तिमान् होकर उनके समीप नृत्य करता था। उन्हें हमने दिन–रात लगातार एक ही आसन से बैठे देखा। वे प्राणिमात्रसे प्रेम करते थे। स्वयं चाहे भूखे रह जायँ, पर दूसरों को खिलाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। प्रातः प्रतिदिन दोनों समय अपने हाथोंसे परोसकर ही वे भक्तोंको भोजन कराते थे।

प्रेत से परित्राण

मेरे घरमें एक प्रेत रहता था। उसने मेरे वंशको निर्मूल कर डालने की शपथ ले रखी थी। न जाने मुझसे उसका क्या वैर था? जो भी बच्चा होता उसे शैशवकालमें ही समाप्त कर देता था। एक दिन मेरे पिताजी ने बाबा से प्रार्थना की कि प्रभो! बच्चे बुरी तरह मारे जाते हैं, मैं क्या करूँ? श्रीमहाराजजी बोले, "तुम सपरिवार जाकर गया–श्राद्ध करो तथा श्रीमद्भागवतका पाठ और ब्राह्मणभोजन कराओ। इससे यह प्रेत तुम्हारा घर छोड़ देगा। पिताजीने स्वीकार किया। उस समय गोदमें एक बच्चा था। जब श्रीमहाराजजी माधूकरीके लिये घरपर आये तब उन्होंने वह बच्चा देखा था। उसके पश्चात् कुछ दिनोंके लिये आप बाहर चले गये। जब सालभर बाद लौटे और घरपर माधूकरीके लिये पधारे तो उस बालकको नहीं देखा। सायंकाल मैं जब दर्शनोंके लिये कुटीपर पहुँचा तो बोले, "बिहारी! आज तेरा वह बालक दिखायी नहीं दिया।" मैंने कहा, "प्रभो! आपके जानेके एक महिना बाद वह भी मर गया" यह सुनकर आप चकित होकर बोले, "क्या तुमने गया–श्राद्ध नहीं किया?"

मैं–गयाश्राद्ध तो नहीं हुआ महाराज!

श्रीमहाराजजी–क्यों?

मैं–मेरी शक्ति नहीं है।

श्रीमहाराजजी–तो वंश कैसे चलेगा ?

मैं–जो भगवान् करेंगे सो होगा।

तब श्रीमहाराजजी बोले, "अच्छा, कल मैं तुम्हारे घर बैठ कर भिक्षा करूँगा। कल ही प्रेत निकल जायगा।" इससे पूर्व श्रीमहाराजजी किसी के घर बैठकर भिक्षा नहीं करते थे। माधूकरी वृत्तिसे भिक्षा लेकर कुटीपर चले जाते और वहीं प्रसाद पाते थे। दूसरे दिन ठीक समयपर आप मेरे घर पधारे। मैंने आपके श्रीचरण धोकर चरणामृत लिया। स्वयं पिया और सारे परिवार को पिलाया तथा सम्पूर्ण घर में जहाँ–तहाँ छिड़क दिया। उसके पश्चात् श्रीमहाराजजी ने करुणापरवश हो अपने चिरकालीन नियम को तोड़कर मेरे घर बैठकर भिक्षा की और आचमन करके कुटी चले गये। बस, प्रकट रूप में तो इतना ही हुआ अप्रकट रूपसे उन्होंने कुछ किया हो तो वे जानें, मुझे उसका कुछ पता नहीं है। उनकी इस कृपाका मैंने यह प्रत्यक्ष फल देखा कि उसके पश्चात् मेरे दो पुत्र हुए, जो अभी तक जीवित हैं। उनमें एकका नाम है शुद्ध–बोध–मुक्त और दूसरा है नित्यप्रकाश अविनाशी। इन दोनों की आयु इस समय बीस वर्ष से ऊपर है। बाबाकी देन होने के कारण ही इनके नाम ऐसे रखे गये हैं। जिस दिन श्रीमहाराजजी ने मेरे लिये भिक्षाका नियम तोड़ा उस दिनसे सबके घर बैठकर भिक्षा करने लगे यह उनकी अहैतुकी दया ही है।

चोटकी चिकित्सा

श्रीमहाराजजी रामघाटमें विराज रहे थे। गर्मीके दिन थे। मैं अपनी दूकानके सामने सोया हुआ था। एक आदमी बैल लेकर बाजार में जा रहा था। मेरे पास पहुँचते ही बैलने बिगड़ कर जोर से ऐसी टक्कर मारी कि खाटके पाये के सहित मेरा घुटना दीवार

से जा टकराया। उसकी चोट से ईंट टूट गयी। चोट के मारे मैं चीख उठा। ज्यों ही सँभलकर उठा मुझे सामने श्रीमहाराजजी खड़े दिखायी दिये। "तू देह से अलग हो जा, कुछ भी पीड़ा न होगी।" मैं ऐसा अनुसन्धान करते हुए फिर खाट पर लेट गया। मुझे नींद आ गयी और जब जागा तो पीड़ा बिल्कुल नहीं थी। सायंकालमें मैं जब बाबाके पास गया तो पूछा कि आप भिक्षा करनेके लिये आज बाजार में गये थे क्या ? बोले, 'नहीं तो, तू क्यों पूछ रहा है ?" मैंने उपर्युक्त सब घटना सुनायी। सुनकर बोले, 'चुप हो जा, ऐसी बातें नहीं कहते।" इस बात को सुनकर लोग पता लगाने के लिये बाजार में आये और सच्ची घटना जानकर चकित हो गये।

गठियाका उपचार

इस शरीर को वायु रोगने दबा लिया था। अंग टेढ़े पड़ गये थे, दस वर्ष तक अत्यन्त पीड़ा रही। बड़े–बड़े उपचार हुए, पर लाभ किसीसे न हुआ। उस दुःखित अवस्थामें भी मैं प्रायः नित्य बाबाके दर्शनों को जाता था। एक दिन आप बोले, बिहारी ! तेरे शरीरका क्या हाल है ? इलाज क्यों नहीं कराता ?" एक सज्जन ने उत्तर दिया, "महाराज इलाज तो बराबर हो रहा है। इनके पिता स्वयं वैद्य हैं। फिर भी यह हाल है।" श्रीमहाराजजीको दया आ गयी और बोले, 'अच्छा कल गंगास्नान करना। गठिया–बठिया सब ठीक हो जायगा।" दूसरे दिन प्रातः काल ही मैंने गंगा मैया में गोते लगाना आरम्भ किया। इससे शरीरका मैल फूलने लगा। ज्यों–ज्यों मैल फूलता त्यों–त्यों मैं उसे छुड़ाता जाता और इसके साथ ही साथ शरीर के अंग खुलते जाते। घर आकर मैंने भोजन किया और सो गया। बड़ी मीठी नींद आयी। जब जागा तो सभी अंग कोमल और सीधे पाये। फिर मैं उछलता कूदता श्रीमहाराजजी के दर्शन करने गया। इस घटना को आज चालीस

वर्ष हो गये हैं। आजतक मुझे वायुप्रकोप ने कभी नहीं सताया। ऐसी विचित्र शक्ति थी श्रीमहाराजजी की वाणी में।

भविष्यवाणी

एक वैश्य प्रायः बाबाके दर्शनोंके लिये आया करते थे। एक दिन जब वे आये तो उनके साथ उनका चार वर्षका लड़का भी था। अभीतक उसका मुण्डन संस्कार नहीं हुआ था। श्रीमहाराजजी बालकके शरीरपर हाथ फेरते हुए पितासे बोले, "तम क्या करते हो?" उन्होंने कहा, "महाराज! खड़सालका काम करता हूँ।" बाबा बोले, खड़साल क्या धूल करता है? यह लड़का यदि रहा तो लक्ष्मीचन्द होगा। शंकरजीके मन्दिरमें नित्य रामायण जीका पाठ करो और उनसे इसकी आयुके लिये प्रार्थना करो।" उन्होंने आज्ञा स्वीकार की और नित्य पाठ करने लगे। किन्तु कुछ ही दिनों में पाठ छोड़कर फिर खड़सालके धंधेमें लग गये।

लड़केका नाम था नत्थीमल। उसने बी० ए० पास किया। अब तो उसके बहुत से सम्बन्ध आने लगे। पिताने लड़केके विवाहके विषयमें श्रीमहाराजजी से पूछा। वे बोले, "तीन साल बीत जायँ तब विवाह करना।" दूसरी साल लड़का चल बसा। उसके पिता बाबा के चरणोंमें गिरकर विलाप करने लगे। बाबाने कहा, "अब रोनेसे क्या होता है। जो आ पड़ा है उसे भोगो। तुमसे तो पहले ही कहा था तुमने माना ही नहीं।"

भगन्दरसे त्राण

प्रायः बीस वर्षकी बात है। मेरी पत्नीको भयंकर भगन्दर रोग हुआ। मैंने अंग्रेजी और आयुर्वेदिक दोनों प्रकार की चिकित्साएँ करायीं, परन्तु लाभ न हुआ। वह मरणासन्न अवस्था में पहुँच गयी। मेरी

आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। आखिर मैं चिन्ताकुल हो 'निर्बलके बलराम' गुरु भगवान् श्रीमहाराजजीका स्मरण करने लगा। उस समय आप रामघाटमें नहीं थे। परन्तु कहीं भी हों वहीं से आपने मेरी प्रार्थना सुन ली। चाँदनी रात थी। मैं श्रीमहाराजजीका चिन्तन करता सो गया। स्वप्नमें देखा कृपालु प्रभु पधारे हैं और मुझे औषधि बता रहे हैं। प्रातः काल जागने पर मुझे स्वप्न की पूर्ण स्मृति बनी रही। मैंने वही औषधि तैयार की और पत्नी को देना आरम्भ किया। सात दिन के प्रयोगसे ही वह पूर्णतया स्वस्थ हो गयी और अब तक उसे यह रोग नहीं हुआ। परन्तु स्मृतिदोष से अब मुझे वह औषधि याद नहीं है।

विषसे रक्षा

होलीका दिन था। सब ओर अबीर, गुलाल और रंगकी घूम मची हुई थी। कुछ लोग ठंडाई भी घोट रहे थे। उनमें से ही एकने, जो मुझसे द्वेष मानता था, मुझे ठंडाई पीने के लिये आमन्त्रित किया। मेरे मनमें कोई आशंका तो थी नहीं। उसका आमन्त्रण स्वीकार कर मैंनें ठंडाई पी ली। परन्तु उसमें मिला हुआ था विष मेरे पेट में ऐंठन होने लगी और जिह्वा टूट गयी। थोड़ी ही देर में मैं अचेत हो गया। डाक्टर–वैद्योंद्वारा अनेकों उपचार कराये, परन्तु कोई सफलता न हुई। मुँह से कभी–कभी रामनाम निकल जाता था। जब मैंने देखा कि अन्तकाल समीप है तो बाबू रामसहायजी के द्वारा श्रीमहाराजजीको अपना अन्तिम 'ॐ नमो नारायणाय' कहलाया। उन्होंने पूछा, "क्या हाल है" बाबूजी ने कहा, "हालत तो खराब ही है।" आप बोले, "अरे ! इमली घोलकर पिला दो, अच्छा हो जायगा।" तुरन्त ही मुझे इमली पिलायी गयी। पीते ही मुझे नींद आ गयी। जगनेपर अवस्था बिलकुल ठीक थी। मैंने गंगास्नान किया और गुलाल लेकर श्रीमहाराजजी के पास पहुँचा। ज्योंही श्रीचरणों में गुलाल लगाया

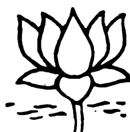
श्रीमहाराजजी बोले, "अरे बिहारी ! तू तो मर रहा था ?" मैंने कहा, प्रभु ! मर तो रहा ही था, परन्तु आपने तो बचा लिया।"

इस प्रकार की अनेकों घटनाओं से ज्ञात होता है कि श्रीमहाराजजी अपने शरणागतोंके भवरोगोंके ही नहीं शारीरिक रोगों के भी वैद्य थे। वे समय–समय पर ऐसी अचूक औषधियाँ बता देते थे जो चमत्कृत कर देती थीं। उनका परिणाम देखकर अच्छे–अच्छे वैद्य भी चकित हो जाते थे। मैं किसी गिनतीमें नहीं हूँ और न इस संसार में मेरी कोई हस्ती ही है। तथापि श्रीमहाराजजी मुझ दीनपर इतनी कृपा रखते थे जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। उनके श्रीचरणों में दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। वे परम कृपालु केवल इतनेसे ही मुझपर प्रसन्न हों।

उपदेश वाक्य

१. सच्चा हरिस्मरण वह है जिसमें एक प्रेष्ठसे भिन्न और सभी का विस्मरण हो जाय। देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, क्षुधा–पिपासा, शीत–उष्ण, मान–अपमान और निंदा–स्तुति ये सारी बातें अन्तः करणसे सम्बन्ध रखती हैं जब अन्तःकरण ध्येयाकार हो जाता है तब सब प्रकारका भेदज्ञान लुप्त हो जाता हैं। वास्तवमें सम्पूर्ण प्रपञ्चताका अदर्शन ही भगवद्दर्शन है।

२. देह–गेहादि जो नाशवान् पदार्थ हैं उनसे प्रेम करना ही अज्ञान है। इसी तीव्र वैराग्यमें सदैव एकनिष्ठ रहे।



पं० श्रीगंगासहायजी, बिजौली (अलीगढ़)

प्रथम दर्शन और रोगनिवृत्ति

(१)

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय श्रीमहाराजजीके दर्शन मुझे सबसे पहले रामघाटमें गंगातटपर इमलीवाली कुटी में हुए थे। यह बात ५ फ़रवरी सन् १६२१ की है। उस समय मेरा शरीर बहुत रोगी था। मैंने रोगनिवृत्ति के लिये डाक्टर–वैद्योंकी दवाइयाँ भी बहुत खायी थीं, परन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। प्रथम दर्शन में ही श्रीमहाराजजी के प्रति मेरा अनुराग हो गया। मैं तीन दिन उनके पास रहा और फिर अपने गाँव लौट आया। परन्तु वहाँ अधिक न ठहर सका। दस दिन पश्चात् फिर रामघाट पहुँच गया। इस बार मैं दस दिन उनकी सेवामें रहा।

एक दिन श्रीमहाराजजी गंगास्नानको गये। साथ में में भी था। मैंने स्नान कराया। मेरे शरीरको बहुत कृश देखकर आपने पूछा, "तू बड़ा कमजोर है। तुझे क्या रोग है?" मैंने सब हाल बताया। आप बोले, "तेरे पास जो दवाइयाँ हैं उन्हें गंगा में फेंक दे। अब किसीकी दवा मत करना।" मैंने ऐसा ही किया और केवल उनकी कृपासे ही मेरा रोग निवृत्त हो गया। इससे उनके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़गयी तथा मैं अधिकतर उन्हींके पास रहने लगा।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी काजिमाबाद पधारे थे। वहाँ उत्सव था। मैं भी गया। वहाँ मुझे हैजा हो गया। मैं अचेत पड़ा था।

महाराजजी ने एक डाक्टर साहब भेजे। उन्होंने कहा, "रोग भयंकर है।" थोड़ी देर पश्चात् आप स्वयं पधारे और शरीर पर हाथ रखा। इससे थोड़ी देर में मेरा रोग शान्त हो गया। ऐसी थी उनकी अनूठी अनुकम्पा।

साधनोपदेश

श्रीमहाराजजी ने सबसे पहले मुझे राममन्त्र का उपदेश दिया और उसे जपने की विधि बतायी। फिर मुझ दीनपर कृपा कर के एकान्त में गंगातटपर स्वयं सिद्धासनसे बैठकर मुझे भी उसी प्रकार बिठाया और ध्यान करने की पद्धति समझायी। उस समय दृढ़ सिद्धासनकी महिमा बताते हुए आपने कहा था—'इससे मुख्यतया पाँच लाभ होते हैं— (१) शरीर हल्का होता है, (२) बात पित्त कफ कम होते हैं, (३) मल—मूत्र कम होते हैं, (४) वाणीका दोष दूर होता है और तन, मन वाणी और बुद्धिकी स्थिरता होती है। अतः इसी आसन से बैठकर अभ्यास करना चाहिये।

फिर आपने पूछा तुम्हारा किस देवता में प्रेम है। मैंने श्रीरघुनाथजीको अपना इष्टदेव बताया। तब उनके ध्यानकी विधि बताते हुए आपने कहा—तुम अपने हृदयसिंहासनपर श्रीरघुनाथजी को बिठाकर उनका मानसिक पूजन किया करो। उनके सिर से चरणोंतक अपने मनको छः मिनट घुमाओ तथा श्रद्धापूर्वक अपने अन्तकरण में उनका दर्शन कर फिर उनके चरणकमलों में ही मनको जोड़ दो। इस प्रकार बारह सैकण्डसे लेकर दो मिनट चौबीस सैकण्डतक मनको जोड़े रखना 'धारणा' कहलाता है। जब मन २ मिनट २४ सैकेण्डसे लेकर २८ मिनट ४८ सैकण्डतक स्थिर रहने लगता है तो इसे ध्यान कहते हैं। इससे अधिक काल होने पर मन

भगवान् में लीन होने लगता है। अर्थात फिर ध्येय और ध्याता एक हो जाते हैं। इसके पश्चात् निर्विकल्प समाधि होती है।

जब यह ध्याता ध्यान में ध्येयरूप है जाय ।
पूरो जानो ध्यान तब, या में संशय नाहिं ।।
ध्येयरूप होनो यही, भिन्न ज्ञान नहिं होय ।
क्षीर नीर जब मिलत हैं, सूझत नाहिंन दोय ।।'

यह सब बताकर आपने मुझे शाम्भवी मुद्राका लक्षण बताया और कहा कि यह साधन सर्वथा सरल और निरापद है। तुम्हें गंगाप्रवाह के समान अखण्ड पुरुषार्थ करके नित्यप्रति साधन करना चाहिये, ध्यानके समय सायंकाल, प्रातःकाल, मध्यान्ह, शयनसे पूर्व और मध्यरात्रि हैं। प्रातःकाल जगनेपर शौच जाने से पहले ही ध्यान करना चाहिये। जब आधा घड़ी ध्यान होने लगता है तो स्त्री, धन और मान की सिद्धि होती है। ध्यान से सब प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं तथा मोक्ष और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। फिर आपने ध्यान के ये बिघ्न बताये–१. लक्ष्य से अलग रहना २. आलस्य, ३. भय, ४. अन्धकार, ५. विक्षेप, ६. तेज, ७. कम्प, ८. शून्यता, ६. स्त्रीसंग, १०. कुसंग, ११. मार्ग चलना, १२. प्रातः स्नान, १३. अग्निसेवन, १४. उपवास, १५. अधिक भोजन, १६ अधिक परिश्रम, १७. सांसारिक नियमों में बँधना और १८. ब्रह्मचर्यका अभाव। साथ ही यह भी बताया कि ध्यान करके सोना नहीं चाहिये। इससे गर्मी बढ़ जाती है और स्वप्नदोष हो जाता है। ये सब ध्यानके विघ्न हैं, इनसे बचना चाहिये।

साधन में सहायता

तब श्रीमहाराजजीके आदेशानुसार मैं साधन करने लगा। आपने मुझे १ घंटा ३५ मिनट स्थिर आसनसे बैठने के लिये कहा।

मेरे गाँव से थोड़ी दूर एक कुटी है। श्रीमहाराजजी उसमें रहा करते थे। उसीमें एक दिन मुझे अर्धरात्रि में ध्यान करते समय श्रीसीता और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् रामके साक्षात् दर्शन हुए। दूसरे दिन यह बात सुनानेके लिये मैं रामघाट श्रीमहाराजजीके पास गया। सुनकर वे बोले, "बेटा! साक्षात् दर्शनसे भी ध्यानमें दर्शन होना अधिक लाभदायक है। ध्यानावस्थामें ही अपने इष्टदेव से भाषण भी होना चाहिये।" इसके पश्चात् मैंने कई बार श्रीमहाराजजीके भी ध्यान में दर्शन किये। किन्तु फिर मेरे ध्यानमें अनेक प्रकार के विध्नआने लगे। इन दिनों श्रीमहाराजजी श्रीहरिबाबाजी के बाँध से रात्रि में उठकर कहीं चले गये थे। खोज करने पर भी उनका कोई पता नहीं लगा। इससे मुझे बड़ा ही असह्य दुःख हुआ। मैं गंगा के किनारे ढूँढ़ता–ढूँढ़ता किरतौली गया, जो साँकुरे के पास है। वहाँ रात्रिको सोया तो स्वप्न में श्रीमहाराजजीने कहा "मैं गंगा के दूसरी ओर झोंपड़ी में हूँ।' उस एक ही रात्रिमें मैंने तीन बार ऐसा ही स्वप्न देखा। उस समय श्रीमहाराजजीने यह भी कहा कि प्रातःकाल तुम इध ार आकार अपने साधन के विषयमें पूछ लो, फिर मैं तुम्हें नहीं मिलूँगा। प्रातःकाल होनेपर मैं गंगास्नान कर भजन करने बैठ गया। भजनसे उठने पर मैंने एक आदमीसे, जो गंगाके दूसरे पारसे आया था, पूछा, "तुमने दूसरे तटपर जो झोंपड़ी है उसमें कोई महात्मा तो नहीं देखे?" उसने कहा "वहाँ कोई महात्मा नहीं हैं। बस, मैं निराश होकर किरतौली लौट आया। मैंने अपने कपड़े और लोटा रखे ही थे कि एक आदमी ने आकर कहा, "तुमको श्रीउड़िया बाबाजी महाराज बुला रहे हैं।" मैं तुरन्त बाबाके पास पहुँचा और उन्हें अपना स्वप्नका हाल सुनाया। महाराजजी अब इसी तटपर आ गये थे। वे बोले, 'तू उस आदमी के कहने में आकर मेरे पास नहीं आया, मैं तो दूसरे किनारे पर

झोपड़ी में ही था। अब मैं काशी की ओर जा रहा हूँ।" मैंने बहुत प्रार्थना करके उन्हें तीन दिन किरतौली में रोका और उन्हीके साथ एकान्त में रहा। इससे मेरा ध्यानका विघ्न निवृत्त हो गया।

इसके पश्चात् मैं श्रीमहाराजजी को रामघाट लौटा लाया। श्रीमहाराजजी ने कहा कि मुझमें अधिक प्रेम होने और ध्यान करने से मेरा पता लग सकता है। एक बार श्री महाराजजी ने कहा कि मुझमें अधिक प्रेम होने और ध्यान करने से मेरा पता लग सकता है। एक बार श्रीमहाराजजी के यहाँ तीन दिन का अखण्ड कीर्तन था। मैंने स्वप्न में देखा कि बाबा मुझे बुला रहे हैं। मैं दूसरे दिन गया तो आप बोले, "मैंने ही तुम्हें बुलाया है। तुम लोगोंमें अब श्रद्धा–प्रेम नहीं रहा, मैं जब प्रेरणा करके बुलाता हूँ तभी तुम आते हो, स्वयं आनेकी बात नहीं सोचते।"

विघ्नोंके अवसर पर

(१) एक बार मैं श्रीमहाराजजीसे आज्ञा लिये बिना अयोध्या चला गया। उस समय आपके यहाँ श्रीवृन्दावनमें आश्रमके उद्‌घाटनका विराट् उत्सव था। आपने उस अवसरपर मुझे कई बार स्मरण किया। आपसे आज्ञा लिये बिना जानेके कारण मेरे साधन में बहुत विक्षेप हुआ। तब मैं डरता हुआ वृन्दावन गया और अपने साधन के विघ्नकी बात कही, तो बोले, "तुम लोग तो सिद्ध हो गये हो, हमारे पास अब क्या रखा है?" मैं बहुत रोया और चरणों में गिर गया तब आपने मुझ दीनपर कृपा की। इसके पश्चात् मेरा साधन ठीक हो गया। मेरा साधन तो पूर्णतया उनकी कृपापर ही अवलम्बित था, हम दीन तो कुछ भी नहीं कर सकते थे। जब कभी आप हमारे यहाँ पधारते थे तो यह बात तो प्रायः होती थी कि हम थोड़े ही भोजनका प्रबन्ध कर पाते, किन्तु

आपकी कृपासे वही सबके लिये प्रर्याप्त हो जाता, कभी–कमी नहीं पड़ती। इस प्रकारके चमत्कार तो सैकड़ों बार देखे हैं, उन्हें कहाँ तक लिखें।

(२) एक बार मुझसे एक गुप्त अपराध हो गया। श्रीमहाराजजी ने सामने आते ही उसे जान लिया। वे बोले, "मैं तुम सबके चित्तकी बात जान लेता हूँ, परन्तु सबसे कहता नहीं हूँ। तुम्हें ऐसा अपराध नहीं करना चाहिये।"

(३) शरीर छोड़नेसे पहले श्रीमहाराजजीने कहा था, "यह सृष्टि बहुत गन्दी हो गयी है अब हमें यहाँ नही रहना चाहिये। जो हमारे पास आने वाले हैं वे भी कुछ के कुछ हो गये हैं। मैं अन्तमें ऐसी लीला करूँगा कि मेरे पास कोई नहीं रहेगा।" श्रीमहाराजजीसे हम जो कुछ पूछना चाहते थे उसे वे पूछनेसे पहले ही बता देते थे। अनेक प्रकारकी सांसारिक कामनाएँ तो उनके दृष्टिपात से ही पूरी हो जाती थीं। अनेकों सांसारिक विघ्न होने पर भी जब हम उनके दर्शनों के लिये जाते तो वे विघ्न स्वयं ही निवृत्त हो जाते थे। ऐसी थी हम लोगोंपर उनकी कृपा।



पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, बरेली

जनवरी, सन् १९३५ ई० की बात है प्रातः स्मरणीय श्रीबाबा फर्रुखाबाद के उत्सवसे शिवपुरी जाते समय श्रीराम, तुलसीराम आदि चार ब्रह्मचारियोंके साथ बरेली पधारे थे। यहाँ आपके प्रेमी भक्त श्रीनन्दरामजी, श्रीरामजी गोटेवाले और रामचन्दजी हलवाई ने आपका बड़ा स्वागत किया। यहाँ तक कि एक ही दिनमें आपका अट्ठाईस स्थानों पर भिक्षा–उत्सव हुआ। मैं भी आपके पीछे–पीछे लगा रहा। जब दो दिन ठहरनेके पश्चात् तीसरे दिन आप शिवपुरी जाने लगे तब मैंने मार्ग की सुविधा और सत्संग का सुख सोचकर साथ चलनेकी आज्ञा माँगी। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा, 'साधुओं के साथ साधु बनकर रह सकते हो तो चलो।' यह बात साधारण सी समझ कर मैंने स्वीकार कर ली तथा मार्गके लिये कुछ पाथेय फल आदि और एक कम्बल लेकर चल दिया। मैंने सोचा था कि आज बाबाके प्रातराश (कलेवा) और मध्यान्ह के भोजनकी व्यवस्था मैं स्वयं करूँगा।

शिवपुरी बरेली से १६ कोस है– थोड़ी ही दूर जाने पर एक दुखियाके याचना करनेपर पूज्य बाबाकी आज्ञासे वह सब पाथेय और फल उसे दे दिये गये। दोपहरको प्रायः ११ बजे नौ मील चलकर फतहगंज नामक गाँवमें पहुँचे। वहीं विश्राम की आज्ञा

करते हुए श्रीमहाराजजी ने सबसे भोजन की व्यवस्था करने को कहा। फतहगंज में मेरे सम्बन्धी रहते थे। अतः मैंने प्रार्थना की कि मै अभी सब सामग्री मूल्य देकर अथवा सम्बन्धियोंके यहाँ से ले आता हूँ। इसपर मेरी सम्भावना के विरुद्ध बाबाने बड़ी दृढ़ता से कहा, 'भैया! हमने पहले ही कह दिया था। कि साधुओं के साथ यदि साधु बनकर रह सको तो चलो। इसके विरुद्ध यदि तुम्हें कुछ करना है तो तुम अब भी जहाँ इच्छा हो जा सकते हो। साधुओं का ऐसा ही व्यवहार होता है।" अबतक मैं बाबा को अपनेघरका व्यक्ति समझता था। उनकी इस बातको सुनकर मैं अवाक् रह गया। अब तो उनकी आज्ञा मेरे लिये ईश्वरीय आदेश थी। अतः अन्य चारों ब्रह्मचारियोंके समान जब मुझे उपले माँगकर लाने की आज्ञा हुई तो में इस कार्यके लिये एक अन्य गाँव भिटौरा गया, क्योंकि फतहगंज में तो सम्बन्धियोंके कारण याचना करनेका मेरा साहस नहीं हुआ। इस प्रकार मेरा वह सारा अभिमान चूर हो गया जिसके कारण मैं उन्हें अपनी इच्छाओं में बँधा हुआ मानता था। साथ ही उस समय उनकी आज्ञाका पालन करनेसे मुझे जो अद्‌भुत आनन्द हुआ उसे आज अट्ठारह वर्ष बीत जानेपर भी मैं ज्योका त्यों अनुभव कर रहा हूँ। ऐसी है गुरुदेव की महिमा। इसीसे कहा है—'गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

अस्तु। उनके आदेशानुसार अन्य ब्रह्मचारियोंकी भाँति मैं भी ईधन और कंडोंकी भिक्षा माँग लाया। भोजन बनाया गया और नियमानुसार बलिवैश्वदेव के पश्चात् बाबाने भिक्षा की। तदन्तर हम सभी ने प्रसाद पाकर कुछ देर आपकी शरीरसेवाका अनुपम आनन्द लिया। तीन बजे के लगभग पुनः यात्रा आरम्भ हुई और

रात्रिको आठ बजे शिवपुरी पहुँच गये। वहाँ पूज्यपाद श्रीहरिबाबा जीका मनको लुभाने वाला अद्भुत सत्संग पाकर चित्त आनन्दमें विभोर हो गया। सच है 'सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः। ❋

तीन दिन वहाँका आनन्द लेकर फिर पूज्य बाबाकी आज्ञा पा मैं बरेली लौट आया। दृढ़व्रती बाबाके इस अल्पकालिक सत्संगसे मुझे जिन अद्भुत गुणोंका आभास मिला आज भी उनकी छाप मेरे हृदय पटपर अंकित है। आजभी वह मेरी पथप्रदर्शिका बनी हुई है। ऐसे थे हमारे बाबा।



❋ जहाँ श्रीभगवान् का उदार कथाप्रसंग होता है वहाँ सभी तीर्थ निवास करते हैं।

श्रीरामजी गोटावाले, बरेली

पूज्य बाबाने मुझपर अपार अनुग्रह किया। उनकी कृपासे मेरी अनेकों आपत्तियाँ निवृत्त हुईं। अब भी वे सर्वदा कृपा करते हैं। जब कभी मेरे सामने कोई उलझन या संकट उपस्थित होता है, वे स्वप्नादिमें मेरा समाधान कर देते हैं। अथवा उसका कोई उपाय बतला देते हैं। उन्होंने मुझपर जो स्नेह किया वह लेखनशक्तिसे बाहर है।

(१)

एक बार कर्णवास में ऋषि ब्रह्मचारीजी के गायत्री–पुरश्चरण समाप्तिपर यज्ञ हो रहा था। बाबा उस समय वहाँ विराजमान थे। एकदिन शिवपुरीनिवासी मिड़ईलालजी वहाँ आये और कहने लगे, "बाबा ! मेरा यह लड़का दो साल से पागल हो गया है। मैं बहुत परेशान हूँ। घर में खर्च के लिये पैसा नहीं है, क्योंकि इसके कारण कोई कारबार नहीं कर पाता।" बाबा बोले, 'नहीं यह तो बिलकुल ठीक है।" फिर उस लड़केसे कहा, "बेटा ! कपड़े पहन।" उसने झट कपड़े पहन लिये अैर तबसे बिलकुल ठीक हो गया।

(२)

मैंने आजन्म कभी अंग्रेजी दवा नहीं खायी। एक बार मैं बीमार पड गया। पेट में शुद्दे (मलकी गाँठें) पड़ गयीं। बड़े जोर का दर्द

रहनेलगा और बड़ी बेचैनी हुई। घरवालोंने न माना। उन्होंने डाक्टर को बुलानेके लिये आदमी भेजा। मैंने मन ही मन बाबासे प्रार्थना की कि प्रभो! क्या अब मुझे अँग्रेजी दवा खानी पड़ेगी? इसके थोड़ी देर बाद मुझे दस्त हुआ और उसमें सब गाँठें निकल गयीं। मेरी तबियत बिलकुल ठीक हो गयी। डाक्टर तब तक आने भी नहीं पाया।

(३)

एक बार शीतकालकी बात है। मैं बीमार था और कराह रहा था। कभी-कभी कराहते-कराहते मुँह से 'हा राम! हा राम!' भी निकल जाता था। अकस्मात् मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बाबा मेरे पास बैठे हैं और कह रहे हैं "बेवकूफ! हा राम! हा राम!' क्यों कहता है? सामने देख।" मैंने सामने देखा तो खड़े हुए श्रीसीतारामजी के दर्शन हुए। फिर बोले, "बेटा! सीताराम! सीताराम! कहो।" मैं सीताराम, सीताराम, कहने लगा। घरके और लोग भी खुलकर 'सीताराम, सीताराम' की ध्वनि करने लगे। बस, उसीसे मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया।



श्री रामस्वरूपजी, चन्दौसी

संवत् १६८८ वि० की बात है, पूज्य श्रीमहाराजजी चन्दौसी पधारे थे और रघुनाथाश्रममें विराजमान थे। वहीं सर्व–प्रथम मुझे उनका दर्शन हुआ। उस समय महात्मा गान्धी का खादी प्रचार कार्य जोरोंपर था। मैं उसका काम करता था और बाबाका भी खादी से प्रेम था ही; अतः बहुत जल्दी उनके साथ मेरा सम्बन्ध स्थापित हो गया। क्रमशः बाबा में मेरी श्रद्धा और उनकी मुझ पर अनुकम्पा बढ़ती गयी। ज्यों ज्यों उनसे मेरी घनिष्टता बढ़ी त्यों ही त्यों मैं उनसे अपने आन्तरिक भावोंका पोषण पाता गया। मेरे इष्टदेव थे चित्रकूटवासी भगवान् राम। मैं राम नाम का जप करता था और श्रीरामचरितमानस का पाठ। बाबा सदैव मेरे इस भक्तिभावका पोषण करते थे।

मुझे कुछ रोग भी थे। उनकी निवृत्तिके लिये बाबाने मुझे सिद्धासनकी विधि समझाकर कहा कि केवल इस आसनके अभ्यास से ही तुम्हारे रोग निवृत्त हो जायेंगे और सचमुख सिद्धासनके अभ्याससे ही मेरे रोग अधिकांश में शान्त हो गये। मेरी पत्नी का देहान्त चुका था और पुनः विवाह करने की मेरी इच्छा नहीं थी। इसीलिये बाबासे मैंने प्रार्थना की कि ऐसी कृपा करें जिससे मेरा जीवन निर्दोष रहे। इसके लिये भी बाबा ने मुझे दो बातें बतायीं–

(१) सिद्धासनका अभ्यास और (२) बस्ती से सर्वथा दूर रहना। बाबाकी इन दोनों आज्ञाओं का मैं छब्बीस वर्षों से पालन करता आ रहा हूँ। इसमें अपना तो कोई पुरुषार्थ है नहीं, उनकी कृपासे ही अबतक मेरा जीवन निर्दोष रहा है। दिनमें एक बार मुख्य रूपसे बाबाका ध्यान कर लेना मेरे नित्य–नियममें है।

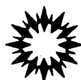
जब मैं खादीप्रचार और गोसेवाके कार्योंमें प्रवृत्त हुआ तो बाबाने उसका समर्थन करते हुए कहा कि कृषिगोरक्षवाणिज्यम्' इस भगवदुक्तिके अनुसार गोपालन तुम्हारा स्वधर्म है। जब मैंने कहा कि इस कार्यमें अनेकों प्रकारकी अड़चनें हैं, यह पूरा कैसे होगा? तो बोले, "स्वधर्मे निधनं श्रेयः।" बस मेरे लिये उनका इतना ही संकेत पर्याप्त था।

बाबाने मुझे एक महान् उपदेश यह दिया था कि जब तुम्हारे ऊपर कोई संकट आवे और उस समय तुम्हें उससे छुटकारा पानेका कोई मार्ग न सूझे तो तुम अपने इष्टदेवके चरणोंको पकड़कर लोट जाना। जीवनकी विकट परिस्थितियों में मैंने बाबाके इस उपदेश का पालन किया है और इससे मुझे तत्काल लाभ हुआ है। अब भी ऐसे अवसरोंपर मैं यही उपाय करता हूँ। मेरे लिये बाबाका विशेष जोर इस बात पर था कि प्रभुसे प्रेम निष्काम भावसे ही करना, उसमें सकामताकी गन्ध न आने पावे। सकाम भाव आते ही प्रेम दूषित हो जाता है। कैसी ही परिस्थिति आ जाय प्रभु से कुछ भी मंत चाहना। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे सामने अनेकों समस्याएँ आयीं, परन्तु मैंने प्रभुसे स्वार्थ साधनके लिये कभी प्रार्थना नहीं की। आखिर भगवत्कृपासे वे सब सुलझ गयीं।

संवत् २००२ की बात है। गोसेवाकार्य में मेरे सामने आर्थिक कठिनाई आयी। मैं व्याकुल हो गया और जब सुना कि बाबा

कर्णवास आये हैं तो दर्शनार्थ गया। एकान्त में बाबा से मिला और सारी बातें सुनायी। बाबा बोले, देख, काम तो छोड़ना मत, बराबर करते रहना। जब अन्तिम अवस्था आ जाय, कोई भी प्रबन्ध न हो सके और गौओं के भूखों मरने की नौबत आ जाय तो तुम सब गायों के गले की रस्सी खोल देना। फिर उन्हें चाहे जो ले जाय।'' मैंने कहा, ''महाराज! यदि अनधिकारी (कसाई) ले गये तो ?'' बोले, तुम कुछ चिन्ता मत करना। गौओं की मानसिक सेवा किया करना। उन्हें खूब दूध–जलेबी का भोग लगाना।'' मैं निश्चिन्त होकर लौट आया। परन्तु दो ही दिनके भीतर वह आर्थिक संकट निवृत्त हो गया और अबतक गोसेवाका कार्य बराबर चल रहा है।

बाबाको मैं परम सिद्ध मानता हूँ। परन्तु उनकी आध्यात्मिक स्थितिके सामने सिद्धियों का कोई मूल्य नहीं था। मैंने जीवनमें अक्रोध और पक्षपातशून्यताकी प्रतिष्ठा दो महात्माओंमें देखी है–मुख्यरूप से बाबामें और गौणरूप से महात्मा गान्धी में। बाबाके लीलासंवरण के पश्चात् अब कोई और शरण स्थान नहीं दीखता। उनके उपदेशों से ही अब भी प्रकाश पाता हूँ।



श्रीविश्वम्भर प्रसादजी, चन्दौसी

प्रथम दर्शन

मेरे बड़े भाई साहब श्रीरामस्वरूपजी श्रीमहाराजजीके भक्त हैं। एक बार जब श्रीमहाराजजी चन्दौसी पधारे थे तो भाई साहबके प्रार्थना करने पर वे घरपर भी आये। उसी समय सर्व प्रथम मुझे उनके दर्शन हुए। यों तो बचपनसे ही मैं अनेकों संतमहात्माओंके दर्शन करता रहा हूँ, परन्तु श्रीमहाराजजी के तो प्रथम दर्शन से ही मेरे चित्तपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये कोई उच्च कोटिके महापुरुष हैं। उनकी ओर मेरा हृदय आकर्षित हो गया और मैं नित्यप्रति उनके पास कथा–कीर्तन और सत्संगमें जाने लगा। इस प्रकार धीरे–धीरे क्रमशः उनमें मेरी श्रद्धा–भक्ति बढ़ने लगी।

बाबाने मुझे भगवान् श्रीरामकी उपासना अैर उन्हींका नाम जप करनेका उपदेश दिया था तथा गीता और रामायणके नित्य पाठके अतिरिक्त समर्थ गुरु रामदासका दासबोध पढ़ने की आज्ञा दी थी। श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे लौकिक और पारमार्थिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अनेकों लाभ हुए हैं यहाँ उनका उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाएँ

(१)

एक बार बाबा रामघाट में चातुर्मास्य कर रहे थे। उन दिनों श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर वहाँ श्रीकृपाशंकरजी फर्रुखाबाद

वालोंकी मण्डली श्रीरामलीलाका अभिनय कर रही थी। ठीक जन्माष्टमीकी रात्रिको, जब जन्मोत्सवकी लीला हो रही थी मन्द–मन्द वर्षा होने लगी। सब लोग घबड़ाये। बाबा अभी लीला में आये नहीं थे। उनसे पूछा गया–क्या किया जाय ?' तब आप स्वयं लीला में पधारे और चादर ओढ़कर सिद्धासनसे बैठ गये। केवल दो बार ऊपरकी ओर दृष्टि उठाकर देखा। उसके पश्चात् यद्यपि आस–पास वर्षा होती रही तो भी रामलीलाके स्थानपर वर्षा बन्द हो गयी। इससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

(२)

इसके पश्चात् एक बार आप चन्दौसी पधारे वहाँ शिवसहाय वालोंके बाग में आसन था और सत्संगस्थल था श्रीरघुनाथाश्रममें। आपके पास हरि नामका एक बारह वर्षका बालक भी आया हुआ था। वह प्रायः आपके पास ही रहता था। एक दिन वह रघुनाथाश्रममें आपकी चौकी के नीचे सो गया। सत्संग समाप्त होने पर सब लोग मकानका ताला लगाकर चले गये और श्रीमहाराजजी भी वहाँ से एक मील अपने निवासस्थानको चले गये। साय्ंकाल आठ बजे जब कीर्तन आरम्भ हुआ और श्रीमहाराजजी सिद्धासन लगाकर बैठे तो तुरन्त बोले, "अरे ! हरि आवाज दे रहा है तुम लोग वहीं बन्द कर आये। उसे ले आओ।" आज्ञानुसार दो आदमी लालटेन लेकर गये और ताला खोलकर उसे निकाला। पूछने पर उसने बतलाया कि जब मेरी आँख खुली तो मैं कमरा बन्द देखकर घबड़ाया और दो बार 'बाबा ! बाबा !' कहकर आवाज दी, तब बाबाने उत्तर दिया 'घबड़ा मत, आ रहे हैं।" उसके थोड़ी देर बाद आप लोगों ने आकर मुझे निकाला।

(३)

एक बार मुझपर जिला बदायूँ में डिफ्रेंस (कंट्रोलके विरुद्ध) दफा ८१।४ का मुकदमा चला। यह अभियोग जिलेसे बाहर नियम विरुद्ध खांड़ भेजने के विषयमें था। बाबा ने प्रारम्भमें ही कह दिया था कि घबड़ाना मत, कुछ होगा नहीं। मुकदमा तीन वर्षतक चलता रहा। एक दिन जब मैं अनूपशहर में श्रीमहाराजजीका दर्शन करनेके लिये गया तो उन्होंने कहा, "अरे! तेरा मुकदमा छूट गया है और मैंने उसका प्रसाद भी बाँट दिया है।" मैंने, कहा, "महाराजजी! मेरे पास तो ऐसी खबर आयी नहीं है।" तब बोले "तेरे पास खबर नहीं आयी तो क्या हुआ? मुकदमा छूट गया है।" पीछे महाराजजी की बात सच्ची निकली। मुझे ३० मांर्चको देर से खबर मिली। उसके बाद जब मैं श्रीमहाराजजी के पास जाने को तैयार हुआ तो उनके लीलासंवरणकी सूचना मिली। हृदय शोक से व्याकुल हो गया। मानों वे यह जानते थे कि इसे सूचना मिलने पर यह फिर मुझसे नहीं मिल सकेगा, इसलिये उसका प्रसाद अपने सामने ही बाँट दिया।

इसी प्रकार इस जीवनमें श्रीमहाराजजीके अनेकों चमत्कार देखे हैं, उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय?



श्रीजयजयरामजी, चन्दौसी

सं० १६८८ में पूज्य श्रीमहाराजजी रघुनाथाश्रम में पधारे थे। वहाँ उन दिनों कथा, कीर्तन और सत्संग का कार्यक्रम चलता था। तभी प्रथम बार मुझे आपके दर्शन हुए। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि ये संत तो साक्षात् प्रेमकी मूर्ति हैं। फिर तो आप जहाँ कहीं भी होते मैं समय–समय पर दर्शनार्थ जाता रहता। साधन के विषयमें उन्होंने मुझे आदेश दिये थे–

१. यह युग हठयोगके अनुकूल नहीं है, अतः तुम्हें ध्यान योग का अभ्यास करना चाहिये।

२. सभी आसनों में सिद्धासन श्रेष्ठ है। इस आसन का एक घंटे तक ठीक–ठीक अभ्यास हो जाने पर शारीरिक विकार निवृत्त होते हैं और ध्यान लगने लगता है।

३. इष्ट और मन्त्र एक होने चाहिये। इन्हें बदलना उचित नहीं है।

मेरा विश्वास है कि श्रीमहाराजजी परम सिद्ध महापुरुष थे। ध्यानयोग में उनकी निरन्तर स्थिति रहती थी। वे दूसरोंके मन की बात जान लेते थे। मैं उनसे कभी प्रश्न नहीं करता था। वे स्वयं ही मेरी शंकाओं का समाधान कर दिया करते थे। एक बार मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि समदर्शी कैसे हुआ जाता है। मैं बबाके पास गया तो बिना पूछे ही आप कहने लगे "समदर्शी होना चाहिये समवर्ती

नही हुआ जा सकता।" दूसरी बार मेरे मनमें यह शंका उठी कि प्रारब्ध ठीक है या पुरुषार्थ? मैं इस शंकाकी निवृत्तिके लिये श्रीमहाराजजीके पास गया तो आप स्वयं इसी प्रसंग को उठाकर कहने लगे, "प्रारब्ध और पुरुषार्थ गाड़ीके दो पहियोंकी तरह हैं। एक से ही काम नहीं चल सकता, दोनों ही की आवश्यकता है।" मैंने उनके पास रहकर जानना चाहा कि बाबा सोते हैं या नहीं तो मालूम हुआ कि वे निद्राविजयी थे। औरों को तो निद्रा लेते मालूम होते थे, परन्तु प्रायः सर्वदा ध्यानस्थ ही रहते थे।

एक बार एक सज्जनने पूछा, "महाराजजी! मेरी संतान नहीं बचती, मर जाती है।' बाबा बोले 'सन्तान है ही कहाँ घास–फूँस है। पाँच वर्षतक ब्रह्मचर्य धारण करके सन्तान पैदा करो, कभी नहीं मरेगी। आजकल चौदह–पन्द्रह वर्ष के लड़कोंके सन्तान हो जाती है, वह बचे कहाँ से?"

भगवत्प्राप्ति के विषयमें आप कहा करते थे– लड़के दसवें दर्जे में पास होने के लिये जितना परिश्रम करते है भगवान्के लिये उतना परिश्रम भी करें तो छः महीनेंमें भगवान् का दर्शन हो जाय।

भगवत्प्रेमकी उपलब्धिके लिये आप यह पदा कहा करते थे–

हरि रस तबहिं तो जाय पइये ।
स्वाद विवाद हर्ष आतुरता इतनो दण्ड जो सहिये ।।
गये नहिं सोच आये नहीं आनन्द ऐसे मारग जइये ।
ऐसो जो आवे जिय माहीं ताके भाग्य का कहिये ।।



श्रीजगदीशप्रसादजी वार्ष्णेय, चन्दौसी

'गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रणवहुँ दीनबन्धु दिन दानी।।'

बचपन में यह विश्वास नहीं होता था कि कोई भी व्यक्ति विशेष उपर्युक्त सभी विशेषणों से सम्पन्न हो सकता है। परन्तु आगे चलकर मैंने अनुभव किया कि मेरे आराध्य श्रीमहाराजजी में गोसाईंजी के कहे हुए ये सभी विशेषण पूर्णतया चरितार्थ होते हैं। सन् १९२६ में जब मेरी आयु केवल नौ वर्षकी थी मैं अपने पिता श्रीभोलानाथजीके साथ पाँच कोस पैदल यात्रा करके रामघाट गया और वहीं संकीर्तनमण्डलके मध्य विराजमान श्रीमहाराजजी का सर्व प्रर्थम दर्शन किया। पद गान के अनन्तर प्रसाद मिला और फिर विदा हो गये। बस, प्रथम समागम इतना ही हुआ।

उसके पश्चात् एक वर्ष के भीतर ही आप हमारे सौभाग्यसे चन्दौसी पधारे। वहाँ एक सप्ताह पर्यन्त आपके दर्शन और सत्संग आदि का बड़ा अपूर्व आनन्द रहा। परन्तु मैं उसमें विशेष सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि तब अति रहेउँ अचेत।' फिर सन् १९३३ में आप श्रीजयजयरामजी के बगीचे में पधारे और प्रायः एक मास तक सत्संगादिका आनन्द रहा। सौभाग्यसे यह मेरे ग्रीष्मावकाश का समय था। अतः मैं अपने समवयस्क बालकोंके साथ जाता और रात्रिमें शयनके समय तक हम उन्हें धेरे रहते। श्रीमहाराजजी हम बालकोंका मन रखने के लिये पुनः पुनः हमारे घरोंमें भिक्षाके लिये पधारते थे। मेरी बुआजी आपकी रुचिके अनुरूप अरहर की

दाल तथा छुकी हुई मूँग बनानेमें कुशल थीं। एक बार मेरी माताजी ने आपसे मेरी शिकायत की कि मैं उनके हाथका बना पक्वान्न भी नहीं खाता हूँ। इसपर श्रीमहाराजजीने मुझे डाँटा और कहा कि मातासे विरोध नहीं रखना चाहिये। मैंने कहा, "महाराजजी! यह न तो मेरे भगवान्‌को भोग लगाती है और न कभी आपको निमन्त्रित करती है। तब कैसे खाऊँ?" इसपर आप हँस पड़े। आपने मुझे रामायणका सुन्दर काण्ड, दासबोध और साधनपथ पढ़नेकी आज्ञा दी थी। ये तीनों ग्रन्थ पहलेसे ही हमारे घर में थे। इसके पश्चात् समय–समय पर मुझे आपका सत्संग प्राप्त होता रहा।

मेरी रुचि प्राधानतया भक्तिमार्ग में थी। अतः श्रीमहाराजजी को भिक्षा करानेका भी चित्तमें विशेष आग्रह रहता था। एक बार कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर मैं आपको छुकी हुई मूँग अर्पण करने के लिये ले गया और आपके बैठने के लिये मैंने अपना गुलूबन्द बिछा दिया। उसपर आप विराज गये। हाथसे ग्रास लेते–लेते आप मेरे मुखेमें ग्रास देने लगे। ऐसी वात्सल्यमयी माता थे आप। भक्तपरिकरके लिये थे साक्षात् शिवस्वरूप थे और भोजन कराने में साक्षात् जगज्जननी अम्बा अन्नपूर्णा थे।

सन् १९३८ में मैं सुदूर पूर्व की यात्रा करके श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसरपर आपके पास वृन्दावन गया। उसी दिन आपकी भी जन्मतिथि थी। यह बात मुझे वृन्दावन जानेपर ही मालूम हुई। उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। रात्रिमें झाँकीके अनन्तर प्रसाद वितरण हुआ। भक्तगण विश्राम करने चले गये। मेरा विचार उस दिन निर्जल रहकर दूसरे दिन पारण करनेका था। अतः मैंने प्रसाद नहीं पाया। रात को दो बजे के लगभग आपने मुझे फटकारा। बोले, "यहाँ ससुराल समझते हो जो खुशामद कराकर खाओगे। चल इधर।" बस अपनी कुटीमें लेजाकर दो गिलास पञ्चामृत और पर्याप्त प्रसाद

दिया। 'गुरोराज्ञा गरीयसी' समझकर मैंने प्रसाद पा लिया। मुझे सांसारिक सम्बन्धोंमें बहुत जकड़ा देखकर आपने कहा कि यहीं रहकर प्रसाद पा, गोपालजीका भजन कर और बाँकेबिहारीजी के दर्शन किया कर। कहाँ तो आपकी ऐसी अहैतुकी अनुकम्पा और कहाँ मैं मायाबद्ध जीव? मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "महाराजजी! मेरे पास चन्दौसीतकका टिकट है।" अतः आपने अनुमति दे दी और मैं आपसे टिकट लेकर घर चला आया।

श्रीमहाराजजी सर्वदा अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते थे। उनके सम्पर्क में आनेपर भक्तजन उनकी सन्निाधिमात्र से निहाल हो जाते थे उनके पास एक-एक पहरतक सत्संगका जमाव होता था। लोग उनसे तरह-तरह के प्रश्न करते थे। और वे सबका यथोचित उत्तर देकर समाधान करते थे। किन्तु 'महूँ सनेह संकोच बस सनमुख कहेहुँ न बैन। दरसन तृषित न आजुलगि प्रेम पियासे नैन।।' अतः प्रश्न करनेका मुझे कभी साहस ही नहीं हुआ। तथापि उनके संत्संग में बैठनेपर मुझे ऐसा जान पड़ता था मानों वे मेरी मनोगत विविध शंकाओंका सर्वथा मेरे अनुकूल समाधान कर रहे हैं। इतने बड़े परिकरको वे 'निस दिन यों पोसत रहें ज्यों तम्बोली पान।'

श्रीमहाराजजीने मुझे इतना दिया कि कभी माँगनेकी अभिलाषा ही नहीं हुई। मेरी माताजी उनके दिये हुए लवंग-इलायची के टिकटसे भी अनेक प्रकारका लाभ उठाती थीं। अतः वे इस प्रसाद को संदैव सुरक्षित रखती थीं। बाबाका प्रसाद बोलकर वे अपनी खोई हुई वस्तुएँ प्राप्त कर लेती थीं। उनकी कृपा अब भी पूर्ववत् है अब भी कई बार स्वप्न में उनके दर्शन होते रहते हैं।



श्रीफतहचन्दजी, चन्दौसी

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे बाँधपर हुआ था। उसके तीन मास पश्चात् वे चन्दौसी पधारे। धीरे–धीरे उनके साथ मेरा सम्पर्क बढ़ने लगा। उनकी कृपा थी ही। उन दिनों मुझे एक शारीरिक रोग था। डाक्टरोंने उसे असाध्य तो नहीं किन्तु कष्टसाध्य अवश्य बताया था। एक बार मैं पूज्य बाबाके दर्शनार्थ वृन्दावन गया। वहाँ उनसे अपने रोगकी भी चर्चा की। आप बोले, 'कहाँ है तेरा रोग? जा, गंगा सेवन किया कर।'' बस, तब से आजतक उस रोग का कोई चिन्ह नहीं रहा।

श्रीमहाराजजीने मुझे भगवान् शिवकी आराधना और शिवपञ्चाक्षरी मन्त्रके जप की आज्ञा दी थी तथा सर्वदा गंगा सेवन करते रहनेका आदेश दिया था। उनकी उस आज्ञाका मैं यथासम्भव पालन कर रहा हूँ।

एक बार मेरे छोटे भाई राजाराम बाबाके दर्शनार्थ कर्णवास गये। वहाँ उन्हें ज्वर हो गया। उन्होंने बाबासे कहा, ''महाराजजी! मुझे ज्वर हो गया है, मैं चन्दौसी जा रहा हूँ। बाबा बोले, ''चन्दौसी जानेसे क्या ज्वर दूर हो जायगा?'' राजाराम ने कहा, बुखारमें यहाँ रहना ठीक नहीं होगा इसलिये मैं चन्दौसी जा रहा हूँ।'' यह कहकर वे बाबाकी बात न मानकर चन्दौसी चले आये। नौ महीनेतक तरह–तरहसे चिकित्सा करायी। तथापि उनका ज्वर निवृत्त न हुआ। फिर जब पुनः बाबाके पास गये और उनसे प्रार्थना की तब बुखारने पिण्ड छोड़ा।

श्रीशिशुपालशरणजी, चन्दौसी

सन् १६३२ के माघका महीना था। एक दिन रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि श्री गंगाजीके तटपर भगवान् की रासलीला हो रही है। उसमें एक ओर सन्त–महात्माओंकी मण्डली बैठी है और दूसरी ओर गृहस्थ लोग बैठे लीला दर्शन कर रहे हैं। उसके एक ही मास पश्चात् मैं होलीके उत्सव में बाँधपर गया। वहाँ ठीक उसी प्रकार रासलीला तथा सन्त–महात्माओंके दर्शन हुए। उसी समय श्रीमहाराजजी के प्रथम दर्शन का सौभाग्य हुआ। वहीं एक दिन मुझे उन्होंने एक ग्रास महाप्रसाद भी दिया। उसे पानेपर जैसे अलौकिक स्वादका अनुभव हुआ वैसा तो कभी नहीं हुआ।

दूसरी बार भी मैं बाँधके उत्सवपर ही गया। गंगाजी उस समय दूर चली गयी थीं। जो लोग गंगास्नानके लिये जाते थे वे प्रातःकाल रासलीला में नहीं पहुँच पाते थे। उन्होंने बाबासे प्रार्थना की। आप बोले, 'अच्छी बात है' कल से गंगाजी यहीं आ जायेंगी।" दूसरे दिन प्रातः काल से ही गंगाजीकी एक धारा कुटियाके समीप होकर बहने लगी। वह केवल उत्सव के अन्ततक ही रही। चैत्रकृष्णा द्वितीयाको ही बन्द हो गयी।

सरवती ठीक गुरुपूर्णिमाके दिन ही कर्णवासमें मरी थी। उसे गंगाजी में प्रवाहित करने के लिये ले गये। उस नावमें मेरे घरके भी कुछ आदमी बैठे थे। नाव भँवरमें फँस गयी। मानो

सरवती अपने साथ बाबाके कुछ आदमियोंको भी ले जाना चाहती थी। उस समय वह नाव श्रीमहाराजजीकी कृपासे ही बची थी—ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार बाँधपर बाबाने किसीकी ओर से श्रीगंगाजीमें दूधकी धार चढ़ायी थी। उसे देखकर मेरे मनमें भी दूधकी धार चढ़ानेका संकल्प हुआ। किन्तु मैंने किसी से कुछ कहा नहीं। वहाँसे मैं घर चला आया। उसके कुछ ही महीने पश्चात् मैं बीमार पड़ा। उस समय पिताजीने कर्णवास जाकर श्रीमहाराजजी से मेरी बीमारी की चर्चा की। सुनकर बाबा बोले "गंगाजीको दूधकी धार चढ़ाओ तो अच्छा हो जायगा।" इस प्रकार मेरे बिना कहे ही उन्होंने मेरा संकल्प पूरा कर दिया।

ऐसी ही उनके विषय में अनेकों अलौकिक घटनाएँ हैं। उन्हें कहाँ तक लिखें ?



बहिन श्रीशकुन्तला, चन्दौसी

मैने सन् १६३२ में पिताजीके साथ श्रीहरि बाबाजी के बाँधपर पूज्य श्रीमहाराजजीके पहली बार दर्शन किये थे। यद्यपि उस समय केवल दो ही दिन दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तथापि पिताजी के साथ वापस लौट आनेपर मेरी ऐसी दशा हो गयी कि बार–बार बाबाकी स्मृति आती रही। मेरा हृदय उनकी ओर खिंचा रहने लगा।

सौभग्यवश तीन महीने बाद ही बाबा चन्दौसी पधारे। भिक्षाके लिये प्रार्थना करनेपर घर पर दर्शन देनेकी भी कृपा की और ऐसा जान पड़ा मानों अकाशमार्गसे आये हों। किसी को मालूम ही नहीं पड़ा कि किस ओरसे आये हैं। भिक्षा करके घर पवित्र किया। तब मैंने अपनी दुःखमयी परिस्थिति बाबाके सामने रखी। आप बोले, 'मैंने सभी बातें जान ली हैं। यदि तुम करो तो मैं तुम्हें जपके लिये मन्त्र और ध्यान बता दूँ।" मैंने प्रार्थना की और उन्होंने मुझे भगवान् शिवकी उपासना उनके ध्यानकी विधि और जपनेके लिये मन्त्र बतलाया। इसके सिवा नित्यप्रति श्रीरामायणजी का पाठ करनेकी आज्ञा दी और प्रत्येक दोहे के साथ निम्नलिखित चौपाईका संपुट लगाने का आदेश दिया–

'नाथ भक्ति तव सब सुखदायिनि।
देहु कृपा करि सो अनपायिनि।

इससे पूर्व मैंने पाँच लाख 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र लिखनेका संकल्प किया था और तब तक ढाई लाख पूरे हो चुके थे। बाबाने

उस संकल्पको पूरा करनेकी सम्मति दी। मैं सदैव इस चिन्ता में रहती थी कि मेरे दिन सदा दुःखमें ही बीतेंगे। परन्तु बाबाने कुछ ऐसी बातें बतलायीं जिन्हें यहाँ प्रकट करना तो उचित नहीं है, परन्तु मेरे मनसे वह चिन्ता जाती रही।

मेरे बड़े भाई बहुत बीमार थे। उनकी आँखोंमें ऐसी उत्कट पीड़ा थी कि उनकी चिल्लाहट के कारण आसपासके लोग भी बेचैन हो जाते थे। मैं छोटे भाईके साथ वृन्दावन बाबाके पास पहुँची और उनसे सारा दुःख निवेदन किया। लौटनेपर भाई साहबने बतलाया कि जिस समय तुमने बाबासे मेरी दशा निवेदन की उसी समय से मेरा दर्द कम होने लगा है। बाबाके जीवन कालमें और अब भी जब–जब वे बीमार पड़ते हैं मैं बाबाके चरणों में ही उपस्थित होती हूँ और उसीसे उनका दुःख दूर हो जाता है अथवा उसमें कमी तो निश्चय ही हो जाती है।

मेरी ससुराल भी चँदौसीमें ही है और वह धन–धान्यसे पूर्ण है। पर पिताजीका घर सामान्य स्थितिका है। पतिकी बीमारी आदि अनेकों कारणोंसे मैं प्रारम्भसे ही पिताके ही घरपर रही हूँ और जीवनपर्यन्त वहीं रहने का विचार भी रहा है। मैंने बाबासे प्रार्थना की कि मेरे निर्वाहके लिये पतिके घरसे मुझे कुछ खर्चा मिलना चाहिये। बाबा बोले, "हाँ ठीक है।" परन्तु ससुरालवाले कहते थे। कि चाहे हजारों रुपये खर्च हो जाँय एक पाई भी नहीं देंगे। चँदौसीकी अदालत में भी दावा किया गया परन्तु उनके पास हर प्रकारका बल था। तथापि बाबा कहते थे कि अवश्य मिलेगा। अन्तमें कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि उन लोगों ने स्वयं ही पिताजी के पास आकर पचास रुपये मासिक खर्चा देना स्वीकार कर लिया। मैं तो इसे एकमात्र श्रीमहाराजजीकी कृपा मानती हूँ।

अनेकों बार ऐसे प्रसंग आये कि मैं बाबा के पास जाती और मुझे कुछ पूछना होता वे बिना पूछे ही मेरे हृदयकी बातोंको जानकर उत्तर दे देते और उससे मेरा समाधान हो जाता। यदि मैं कोई घबड़ाहटका प्रसंग लेकर जाती और मुझे दूसरी ही गाड़ी से लौटना होता तो वे मेरे सूचना न देनेपर भी स्वयं ही आ जाते और पूछते कैसे आयी? और यदि कोई जल्दी न होती, निश्चिन्तता होती तो फिर घंटों बाद मिलते।

मैंने बाबामें वैराग्य और दीनवत्सलता का गुण विशेष रूप से अनुभव किया। वे सब कुछ करते हुए भी सबसे अलिप्त रहते थे। तथा कोई आश्रयहीन व्यक्ति उनका आश्रय लेता तो उसपर सबसे अधिक कृपा करते थे। मुझे जीवनकालमें तथा अब भी अनेकों बार स्वप्न में बाबाके दर्शन हुए हैं और होते हैं। कोई समस्या आ पड़े तो वे अब भी स्वप्नमें दर्शन देकर समाधान कर देते हैं। यदि बाबा ने मुझपर कृपा न की होती तो मेरा कोई सहारा नहीं था, सारा जीवन ही दुःखमें बीतता।



श्रीप्रतापसिंहजी, जिरौली (अलीगढ़)

प्रथम दर्शन

उनदिनों मैं बालक था। पं० रामप्रसादजी के छोटे भाई वासुदेव रामघाट गये थे और बाबाके दर्शन कर आये थे। वे कहा करते थे कि मैं तुम लोगों को एक महात्माके दर्शन कराऊँगा। वे बहुत कम बोलते हैं और सर्वदा ध्यानस्थ रहते हैं। उनकी बातें सुनकर मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनोंकी उत्कण्ठा तो होती थी, परन्तु बालक होने के कारण मैं स्वतन्त्र रूपसे अकेला नहीं जा सकता था। अकस्मात् एक दिन सुनने में आया कि बाबा कौड़ियागंज पधारे हैं। और काली नदीके किनारे मन्दिरमें ठहरे हैं। तब मैं पं० रामप्रसादजी आदि कई व्यक्तियोंके साथ उनके दर्शनों को गया। जाकर बाबाके चरणों में प्रणाम किया और बैठ गया।

उस समय बाबाका शरीर बहुत हल्का था। वे सदैव शान्त मुद्रा में रहते थे। कोई आये कोई जाये, बहुत ही कम बोलते थे। कभी तो केवल संकेतमात्र ही कर देते थे। बाबाने मेरी ओर संकेत करके पूछा, "यह लड़का कौन है? इसका क्या नाम है?" पं० शिव दयाल बतलाने लगे तो बोले, उसे ही कहने दो।" इस समय इससे अधिक और कोई बात नहीं हुई। मैंने मन्दिर में एक रुपया चढ़ा दिया था। इसपर कोई बोले, "रुपया चढ़ा दिया है। पुजारी सुल्फेबाज है उसका दुरुपयोग करेगा।' इसपर बाबा बोले, "उसने

तो ठाकुरजी को रुपया चढ़ाया है, पुजारीको तो दिया नहीं है। उसे तो ठाकुरजी को चढ़ानेका ही फल प्राप्त होगा।" उसी समय बाबासे जिरौली पधारने के लिये प्रार्थना की गयी। आप बोले, "अच्छा, कभी आऊँगा।" उसके पश्चात् होली के बाद तृतीयाको आप आये और दो दिन ठहरकर तीसरे दिन रामघाट चले गये। फिर तो प्रत्येक तीसरे–चौथे वर्ष जिरौली पधारनेकी कृपा करते रहे।

साधन

मेरे लिये बाबाने गायत्री तथा एक अन्य इष्टमन्त्रका जप और श्रीरामायणजीका पाठ करनेकी आज्ञा दी थी। मेरा स्वभाव था कि मैं उनसे कभी कोई प्रश्न नहीं करता था। सत्संगमें वे जो कुछ कहते उसे ही सुना करता था और उतनेसे ही मेरी जिज्ञासा शान्त हो जाती थी।

एक बार कोई महात्मा बाबाके पास आनेवाले थे। उनके स्वागत–सत्कारके लिये आप बहुत दौड़–धूप कर रहे थे। शरीरसे कृशतो थे ही। मैं मन ही मन सोच रहा था कि महाराज इतनी दौड़–धूप क्यों कर रहे हैं ? इतने में आपने मेरे पास आकर कहा, "सबहिं मानप्रद आपु अमानी।" उनके मुखसे ये बचन सुनते ही मेरा समाधान हो गया।

उनकी सहनशीलता

मैंने बाबामें विशेष गुण यह देखा कि वे सहन करनेमें सुमेरु पर्वतके समान थे। उनके सैकड़ों–हजारों भक्त थे। वे अनेकों अनुकूल–प्रतिकूल क्रियाएँ करते रहते थे। पर वे सभी सहन कर लेते थे। कभी किसीपर अप्रसन्न नहीं होते थे और न किसीका परित्याग ही करते थे। उनका उसके साथ ठीक वैसा ही व्यवहार रहता था जैसा अपराध करनेसे पूर्व। वे फिर भी उससे 'ले' बेटा! अमुक वस्तु ले' इत्यादि बोलकर उसके

स्नेहको सुरक्षित रखते थे, भले ही बेटा उनकी जानकारीमें ही उनके विपरीत आचरण कर रहा हो।

एक बार बाबा रामघाटमें सिद्धासनसे विराजमान थे। सामने अनेकों भक्तजन बैठे हुए थे। अकस्मात् एक काला साँप आया और महाराजजी की गोद में होता हुआ निकल गया। तथापि वे चुपचाप शान्त भाव से बैठे रहे। इसी प्रकार एक बार छप्परके नीचे विषखोपड़िया दिखायी दी। उसे हटाने का लोगोंने प्रयत्न भी किया परन्तु वह सबकी ओर बढ़ी चली आयी। सब लोग भयभीत हो गये। कोई भाग चले और कोई लड़खड़ाकर गिर गये। परन्तु बाबा ज्योंके त्यों शान्त भाव से बैठे रहे। कोई बोल उठा, "महाराज! इसके काटनेपर कोई नहीं बच सकता।" इस पर आप ने कहा, क्या सब इसीके काटने से मरते हैं?"

एक बार आप रामघाटसे गोरहा जा रहे थे। मार्गमें दिन छिपनेपर आप एक जगह गुदड़ी डालकर लेट गये। नीचे साँप का बिल था। रातभर भुन–भुनकी ध्वनि आती रही, पर आप उठे नहीं। सबेरे गुदड़ी उठाते ही एक काला साँप फुफकार कर उठा, पर उसने आपको काटा नहीं। वह स्थान महाराजजी ने मुझे दिखाया था। इससे भयके अवसरोंपर उनकी विलक्षण निर्भीकता तथा धैर्यका पता चलता है। ऐसे अवसरोंपर दूसरे लोग तो भागने लगते हैं, परन्तु उनके लिये मानों वे कुछ भी नहीं थे।

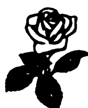
उदारता और संकल्पसिद्धि

कयामपुर के मुलायमसिंह एकबार अपने दादाजी के साथ श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ रामघाट गये। उस समय वे बालक थे। दर्शन करनेके बाद जब ये लोग विदा हुए तो बाबा ने और सबको तो मिठाईका प्रसाद दिया, पर इन दोनोंको केवल लवंग हीदीं। ये बालक तो थे ही, सोचने

लगे—बाबाने औरों को तो लड्डू दिये, पर हमें केवल लोंग ही दीं। बाबा इनके मानसिक संकल्प को जान गये और इन्हें बुलाकर चार सेर लड्डू प्रसादमें दिये तथा बोले, "बेटा ! ये लड्डू तुम ले जाओ, परन्तु खाना नहीं, इन्हें दूसरोंको बाँट देना।" बाबाकी आज्ञानुसार इन्होंने ऐसा ही किया।

मुलायमसिंह धनीपुर में रहते थे। बाबा भी वहीं बाग में ठहरे हुए थे। वहाँ भक्तोंके लिये साग—पूड़ी आदि बना। सब लोग भोजन करने लगे। धीरे—धीरे और भी अनेकों व्यक्ति दर्शनार्थ आये और वे भी भोजनमें सम्मिलित हो गये। परिणाम यह हुआ कि और सामान तो शेष रहा परन्तु आटा समाप्त हो गया। अब तुरन्त आटा कहाँ से आवे ? मुलायमसिंह घबड़ाये। तब बाबाने इन्हें बुलाकर कहा, "अब तुम एक पूड़ी भी मत बनवाओ। मेरे पास सब सामान है।" ये बोले, "महाराज ! भोजन करनेवाले तो अभी बहुत आदमी हैं। और आटा समाप्त हो गया है।" बाबा बोले, 'कोई चिन्ता नहीं ! मेरे पास सब सामान है।" उन्हें आश्चर्य हुआ कि सामान कहाँ छिपा है। परन्तु चुप हो रहे। आधा घंटा बाद दिल्ली से एक कार आयी। उसमें लड्डू, पूड़ी, कचौड़ी सभी सामान पुष्कल मात्रामें भरा था। सबने यथेष्ट प्रसाद पाया।

बाबामें ऐसी ही अनेकों सिद्धियाँ थीं, जिनका सर्वसाधारण को पता नहीं था। मुझपर बाबाका सदा ही स्नेहमय संरक्षण रहा है। अब भी अनेकों बार वे स्वप्नोंमें दर्शन देते हैं। परन्तु पहले की तरह कोई बातचीत नहीं होती।



पं० श्रीरामप्रसादजी, जिरौली (अलीगढ़)

संसर्गका सूत्रपात

(१)

मेरे पूज्य पिता पं० गुलाबदत्तजी तथा कुँवर प्रतापसिंहके पिता ठाकुर कल्याणसिंहजी साधुसेवी पुरुष थे। इन्हींकी सेवासे आकर्षित होकर अनेक सन्त हमारे गाँवमें आया करते थे। उनमें पूज्यपाद स्वामी मौजानन्दजीका बहुत अधिक सम्मान था। यमुनापार के लोग उन्हें "मौजा सिद्ध" कहा करते थे। मेरे तथा ठाकुर साहबके परिवारकी उनमें बहुत अधिक श्रद्धा थी। मुझसे छोटे मेरे दो भाई शिवदयाल और वासुदेव थे। अब वे दोनों ही स्वर्गवासी हो चुके हैं। उन दिनों पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी को बहुत कम लोग जानते थे। ये बातें आज से प्रायः चालीस वर्ष पूर्व की हैं।

एक बार मेरे सबसे छोटे भाई वासुदेव गंगास्नानके लिये रामघाट गये। वहाँ उन्होंने लोगों से सुना कि आजकल यहाँ एक बड़े ही विरक्त महात्मा आये हुए हैं। वे प्रायः झाड़ी या झाऊओं में ही पड़े रहते हैं, किसीसे भी मिलते–जुलते नहीं है। वासुदेवकी इच्छा उन महात्माजी के दर्शनोंकी हुई। उन्होंने उनकी बहुत खोज की, परन्तु कहीं मिल न सके। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। किन्तु यदि सच्ची खोज और तीव्र व्याकुलता हो तो यह हो नहीं सकता कि सन्त कृपा न करें। तब तो वे उसकी अभिलाषा पूर्त्तिका कोई न कोई अवसर दे ही देते हैं। इसी

न्यायसे चौथे दिन वासुदेवकी लालसापूर्तिका सुयोग भी जुट ही गया। वे खोजते–खोजते बनखण्डेश्वर महादेव के समीप इमलीवाली कुटीमें पहुँचे। वहीं उन्हें महाराजजी के दर्शन हुए। उन्होंने देखा वे सिद्धासनसे विराजमान हैं, उनका शरीर कृश है, नेत्र आधे खुले हुए हैं और शरीर पर कौपीनके सिवा और कोई वस्त्र नहीं है। इस अवस्था में देखकर वासुदेव सहम गये। तब श्रीमहाराजजीने धीमे स्वर में कहा, "कौन है ?"

वासुदेव–मैं एक ब्राह्मण हूँ।

बाबा–कहाँ रहता है ?

वासुदेव–मैं। जिरौली रहता हूँ।

बाबा–यहाँ कैसे आया है ?

वासुदेव–गंगास्नानके लिये आया था। तीन दिन से आपके दर्शनोंके के लिये घूम रहा था।

बाबा–तू क्या करता है।

वासुदेव–मैंने दसवीं क्लास पास की है। मेरे भाई मुझे थानेदारी की शिक्षापानेके लिये भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं।

बाबा–तू वहाँ जाना चाहता है या नहीं ?

वासुदेव–नहीं

बाबा–तू नहीं जायगा। अच्छा, अब बस्ती को जा।

वासुदेव–आपके लिये कुछ भिक्षा लाता हूँ।

बाबा–नहीं, मैंने सात दिन में भिक्षा करनेका नियम लिया हुआ है।

बासुदेव–आज कितने दिन हुए हैं।

बाबा–चार।

वासुदेव–तो महाराजजी ! दूध ले आऊँ।

बाबा– नहीं, दूध क्या भिक्षा नहीं है ?

वासुदेव–महाराज ! आप बहुत दुर्बल हो रहे हैं, दूधके लिये तो आज्ञा दे ही दें।

बाबाने फिर मना कर दिया। वासुदेव तीन दिन और रामघाटमें ठहरे। उन्होंने प्रथम दर्शनमें ही श्रीमहाराजजी के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। अब श्रीमहाराजजी को भिक्षा कराये बिना उसका चित्त जिरौली लौटना नहीं चाहता था सातवें दिन वे पूड़ी, मिठाई और दूध लेकर झाऊओं में पहुँचे। देखते ही बाबा बोले, "तू अभी गाँवको नहीं गया?"वासुदेव ने उत्तर दिया, "महाराज आपको भिक्षा कराये बिना जाने को चित्त नहीं हुआ। गाँववालों से सुना था कि आप खिचड़ी या पानी में मीड़कर रोटी खाते हैं। तब बाबा ने बिना मीठा मिला आधा पाव दूध पी लिया और अन्य पदार्थ से भी थोड़ासा हथेलीपर लेकर पा लिया। शेष प्रसाद वासुदेव ने ही पाया। इसके पश्चात् वे जिरौली चले आये।

जिरौली आकर वासुदेवने मुझसे तथा शिवदयालसे कहा कि इस बार रामघाटमें मैंने एक विचित्र सन्त देखे, ऐसे कोई सन्त तो हमने आज तक नहीं देखे। परन्तु हम लोगों ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके बाद भी वासुदेव तो बाबाके दर्शनों को जाते रहे, किन्तु हम लोग या गाँववालोंमेंसे कोई अन्य लोग नहीं गये। प्रायः डेढ़ वर्ष बाद वासुदेवने हम दोनों भाईयोंसे फिर कहा कि एक बार आप लोग उड़िया बाबाके दर्शन करो तो सही। मैनें कहा, 'तू साधुओंको क्या जानता है ? ऐसे बहुत से ठग डोलते हैं। यह भी कोई ठग ही होगा।" इससे वासुदेव को कुछ क्रोध हो आया। परन्तु मुझपर तो आर्यसमाज के संस्कारों का प्रभाव था और हम लोग स्वामी मौजानन्दके सामने किसी

महात्माको कुछ समझते ही नहीं थे। उन्हीं को सबसे बड़ा सन्त मानते थे। इस कटु वाक्यको कहकर मैंने जो महदपराध किया उसका मुझे बड़ा पछतावा है, परन्तु बाबा तो मुझसे यह बात सब लोगोंके सामने कहलाकर खूब हँसते थे। शिवदयालने कहा, "एकबार चलकर देखना तो चाहिये।" बस, इसी समय से शिवदयालको श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी लालसा रहने लगी।

(२)

उन दिनों शिवदयाल एक पण्डितसे मध्यामाके चौथे खंड की पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे पण्डितजी व्याकरणाचार्य थे। उस समय उनकी आयु प्रायः चालीस वर्षकी थी। दो वर्ष पूर्व उनकी धर्मपत्नीका देहान्त हो चुका था। दूसरा विवाह करनेकी उनकी बड़ी इच्छा थी और इसी निमित्तसे वे दो महीनेसे पत्नीं मनोंरमां देहिमनावृत्तानुसारिणीम्। तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्' यह सम्पुट लगाकर दुर्गासप्तशतीका पाठ किया करते थे। शिवदयाल तो उनसे कहा करते थे, पण्डितजी! अब आप विवाहके झगड़े में क्यों पड़ते हैं, भाइयोंके सन्तान है ही।" परन्तु पण्डितजीपर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। शिवदयालके मन में महाराजजी के दर्शनोंकी लालसा तो थी ही। वे पण्डितजी को साथ लेकर रामघाट पहुँचे। श्रीमहाराजजी इमलीवाली कुटी में ध्यानावस्थित विराजमान थें। उनके पास पहुँचकर दोनों ने ॐ नमो नारायणाय किया। शिवदयालने चरणस्पर्श करके प्रणाम भी किया।

श्रीमहाराजजीने धीरे से 'नारायण' कह कर पूछा, "तुम लोग कौन हो?"

शिवदयाल–मैं ब्राह्मण हूँ, जिरौली रहता हूँ। और ये पण्डितजी हैं, आचार्य पास हैं।

बाबा—ये किसी पाठशालामें पढ़ाते हैं ?

शिवदयाल—अभी बढ़ाते तो नहीं, किन्तु किसी पाठशाला में पढ़ानेका विचार कर रहे हैं। पहले विवाह करने की इच्छा है। इनकी प्रथम पत्नीका देहान्त हो चुका है।

इसके पश्चात् थोड़ी देरतक बाबा दोनों की ओर देखते रहे। उस समय शिवदयाल मन ही मन सोच रहे थे। कि वासुदेवका कथन ठीक ही था, सचमुच ये बड़े विचित्र महात्मा हैं। फिर बाबाने दोनों ही को यह श्लोक सनाया—

'पुनरालिङ्ग्यते कान्ता पुनरेव तु भुज्यते ।
इय बालजनक्रीड़ा लज्जायै महतां जने ।। *

इस श्लोकको सुनकर शिवदयाल ऐसे प्रभावित हुए और उनका हृदय बाबाकी ओर ऐसा आकर्षित हुआ कि तबसे वे सदाके लिये बाबाके ही हो गये। परन्तु पण्डितजी पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब शिवदयालने उनसे कहा कि यदि शास्त्रकी ऐसी आज्ञा है तो कमसे कम जो शास्त्रज्ञ पण्डित हैं उन्हें तो इस आज्ञाका पालन करना ही चाहिये। बाबाने भी कहा कि पण्डितजी ! अब तो आप शेष जीवन पठन—पाठन भजन सत्संग और शास्त्रावलोकन में ही व्यतीती कीजिये। जीवन का क्या भरोसा है। पण्डितजी ने यद्यपि ऊपरी मनसे अच्छा, महाराज ! कहा और उस दिन से उक्त सम्पुट भी छोड़ दिया, तथापि उनके मनसे विवाह का संकल्प निकला नहीं। उसके पश्चात् बाबासे आज्ञा लेकर दोनों लौट आये। इसके थोड़े ही दिनों पश्चात् पण्डित जी का देहान्त हो गया।

* बार—बार स्त्रीका आलिंगन किया जाता है और बार—बार उसका भोग। यह मूर्खोंकी क्रीड़ा महापुरुषोंमें लज्जाकी बात है।

जिस दिन शिवदयाल रामघाट से लौटकर आये उससे दो दिन पूर्व वासुदेवने मुझसे फिर कहा कि तुमने श्रीमौजानन्दजीको तो देखाही है, एक बार श्रीउड़ियाबाबाजीके भी दर्शन करो। परन्तु मेरा तो फिर भी वही उत्तर था, 'तुम साधुको क्या जानो ? गुफामें रहने से कोई साधु नहीं हो जाता। होगा कोई ठग।" मेरे इस उत्तर से वासुदेव कुछ रिस–सा हो गया। दो दिन पश्चात् शिवदयाल भी लौट आये। वे भी बोले "भैया ! वासुदेव डेढ़ वर्ष से कहता था, परन्तु हम लोगों ने श्रीउड़ियाबाबाके दर्शन नहीं किये, बड़ी गलती की। वास्तव में बड़े त्यागी और विरक्त महात्मा हैं। हम तो उनके दर्शन करके मन्त्रमुग्ध हो गये और उन्हीं पर निछावर हो गये।' वासुदेव बोला, "मैं। तो बहुत दिनोंसे कह रहा हूँ परन्तु आप लोग न जाने क्या समझ रहे हैं ?"

अब तो मेरा मन भी बाबा के दर्शनोंके लिये चलने लगा। संयोगवश उन दिनों बाबा मौजानन्द भी जिरौली आये हुये थे। उनके सामने यहीं प्रसंग चला। वे बोले, "अरे भाई ! उड़िया बाबा तो बड़े त्यागी, विरक्त और योगनिष्ठ महात्मा हैं। उनके समान इस देश में कोई दूसरा साधु है क्या ? मैंने उनका दर्शन किया है।" बस अब तो मानों उड़िया बाबाजीके उच्च कोटिके संत होने के विषय में हम जैसे मूर्खोंके लिये मुहर लग गयी। अब उनका दर्शन करनेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हुई।

(३)

इसके तीन–चार दिन पश्चात् मै यज्ञ करने के लिये शाहगढ़ गया। वहाँ सुनने में आया कि श्रीउड़ियाबाबाजी काली नदीके किनारे कौड़ियागंजके महादेव मन्दिर में ठहरे हुए हैं। मुझे उनके दर्शनों की बड़ी इच्छा हुई। शाहगढ़के बिहारीसिंह एवं छत्रसिंह आदि कुछ आर्यसमाजी सज्जन भी साथ चलनेको तैयार हुए मैंने उनसे कह दिया कि मैं आगे

चलता हूँ, बागकी छाया में मिलूँगा और चल दिया, ज्येष्ठका महीना था। पसीने से सारा शरीर लथपथ हो गया तथापि चित्त यह देखने के लिये व्याकुल था कि उड़ियाबाबा कैसे हैं? दिन के डेढ़ बजे थे। परन्तु बाग की छाया में कौन बैठे? मैं सीधा मन्दिरपर पहुँचा। पूछा, यहाँ उड़ियाबाबा आये हैं?" एक वैष्णव साधुने उत्तर दिया आये तो हैं, परन्तु न जाने कहाँ चले गये हैं? आस–पास देखों, किसी पेड़के नीचे होगें। मैंने चारों ओर देखा। खोजते–खोजते एक छोटी–सी गुमटीमें, जिसमें शिवलिंग है, एक साधु पड़े दिखायी दिये, उनसे मैंने बड़ी आतुरतासे पूछा, 'यहाँ उड़िया बाबा आये हैं, कहाँ है?" बड़े धीमे स्वर में उत्तर मिला "क्यों?" मैंने कहा, दर्शन करूँगा।" बोले 'कहाँसे आया है?" मैंने कहा, शाहगढ़से।' वे बोले, "बैठजा, तेरा गाँव कौन–सा है?" मैंने कहा, "बाबा ये बातें पीछे बताऊँगा। पहले उड़ियाबाबाजीके दर्शन कर लूँ।"!

इस प्रकार मैं उनसे बातें करते–करते माथेका पसीना पोंछता जाता और इधर–उधर देखता जाता था। उनसे बोला, "वे इधर आये हैं कहीं चले तो नहीं गये। यदि कोस–दो कोस निकल गये हों तो दौड़कर दर्शन कर लूँगा। आपको मालूम हो तो जल्दी बता दें, देर न करें।" उन्होंने कहा "तू ब्राह्मण है? बैठ जा।" उनके कहने से मैं मन मार कर बैठ गया। सोचा कि बिना बैठे ये बतायेंगे नहीं, व्यर्थ देर कर रहे हैं। वे बोले, "इस दोपहरीमें क्यों आया, ठंडक पड़ने पर आता। तुम कितने भाई हो? पंडित हो?' अब मुझसे न रहा गया। मैं धीरे–धीरे उठकर खड़ा हो गया और बोला, "महाराज! मैं आपको ये सब बातें बताकर ही जाऊँगा, पहले उड़िया बाबाजीके दर्शन कर लूँ।' यह कहकर मैं फिर इधर–उधर देखने लगा।

मेरी अधीरता देखकर वे उठकर बैठ गये और बोले, 'यह मेरा ही नाम है।" मैंने आश्चर्यसे कहा, "ऐ' महाराज! आपको ही उड़ियाबाबा कहते हैं?" वे मधुर मुसकान के साथ बोले, "हाँ।" मैंने

सिर हिलाकर कहा, "नहीं आप !" वे फिर हँसे और हाथसे बैठने का संकेत किया। मैं बैठ गया उन्होंने कहा,'ठीक से बैठ जा। तेरा गाँव जिरौली है ? तू वासुदेवका भाई है ?" बस, अब मैंने जान लिया कि ये ही उड़िया बाबा हैं। इन्होंने वासुदेव और शिवदयालके समान आकृति होनेके कारण मुझे पहचान लिया है। मैंने आश्चर्य से कहा, 'हाँ बाबा ! आप ही हैं उड़ियाबाबा ? मैं तो समझता था आप बड़े लम्बे-चौड़े और मोटे होंगे। आप तो बहुत ही हल्के और छोटे-से दिखाई दे रहे हैं।" बाबा बोले, 'क्या हल्का, पतला छोटा साधु नहीं होता ?' मैंने हाँ कहते हुए बाबाके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और उन्होंने हँसते हुए धीरे से 'नारायण' कहा।

उस समय मुझे जो हर्ष और कौतूहल हुआ उसे बाबा ही जानते हैं। मैं आनन्दसे गद्‌गद हो गया। मानों मुझे जीवनकी अमूल्य निधि मिल गयी। मन ही मन पछता रहा था। कि मैंने वासुदेवके कहने से अब तक दर्शन नहीं किये यह बड़ी गलती की। बाबा बोले, 'तेरा गाँव यहाँसे कितनी दूर है ? मैंने कहा, 'डेढ़ दो मील के लगभग है।' तब बोले, मैं तेरे गाँव चलूँगा।' यह कहकर तो मुझे बाबाने अपार आनन्द और प्रेम में सराबोर कर दिया। बिना ही कहे इतना अनुग्रह कर रहे हैं। उन्होंने मुझे सदाके लिये अपना लिया और मैंने भी उनके श्रीचरणोंमें आत्मसम्पर्ण कर दिया। उस समय बाबा मेरी हार्दिक स्थिति और मुखाकृतिको बड़ी करुणाभरी दृष्टिसे देख रहे थे। इस प्रकार तीन घंटे तक बाबा के दर्शन और एकान्त-चर्चासे जो आन्न्द मिला उसका क्या वर्णन करें ?

इतनेमें शाहगढ़के कई सज्जन आ गये और कोई दण्डवत् तथा कोई नमस्ते आदि कहकर बैठ गये। उनके प्रश्न करनेपर बाबा उनसे

भगवत्चर्चा करते रहे। आर्यसमाजी संस्कार होनेके कारण वे तो ईश्वरको केवल निराकार ही मानते थे। परन्तु बाबाने उन्हें बताया कि ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। केवल निराकार माननेसे ईश्वरकी सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः वह साकार भी है, निराकार भी है और साकार निराकार से भिन्न भी। फिर 'महात्मा गान्धीकी जय' के नारे लगाते पचासों मनुष्य आ गये। उनमें बच्चे ही अधिक थे। कुछ देर बैठकर सभी बाबाके दर्शन करते रहे। फिर सायंकाल समीप जानकर सब लोग आज्ञा लेकर अपने-अपने गाँवों को चले गये। मैं भी उस दिन जिरौली लौट आया और दूसरे दिन नेत्रपालसिंह नरसिंहपालसिंह, प्रतापसिंह एवं शिवदयालको साथ लेकर पुनः दर्शन करनेके लिये गया। महाराजजीके दर्शन करके सभी लोग आनन्दमग्न हो गये। पीछे भी जबतक बाबा कौड़ियागंज में रहे हम लोग दर्शनोंको जाते रहे तथा अपने अपने घरोंसे उनके लिये भिक्षा भी ले गये। और भी अनेकों गाँवोंसे दर्शनार्थी आते और आपके दर्शन करके अपने को कृत्कृत्य मानते थे। इस प्रकार कई दिन तक आपने वहाँ विश्राम किया।

जिरौली में पहली बार

कौड़ियागंजसे बाबा शाहगंज पधारे। तीसरे दिन मैं अखाड़े पर पुरुषसूक्तका पाठ कर श्रीरामचरितमानसका पारायण कर रहा था। गाँवके ठाकुर साहब तथा कुछ अन्य लोग बाबाके दर्शनार्थ शाहगंज जाने की तैयारी कर रहे थे। मैं अखाड़ेके ऊपर बनी पुरानी कुटी में था। मैंने देखा कि बाबा तो ऊपर चढ़कर मेरी ही ओर आ रहे हैं। उनकी ऐसी अहैतुकी अनुकम्पा देखकर मैं तो हर्षसे गद्गद् हो गया। ऐसा आनन्द हुआ मानो साक्षात् श्रीभगवान् ही आ गये। तुरन्त चरणों में प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन बिछाना ही चाहता था कि आप अपनी गुदड़ी

डालकर बैठ गये। मैं ठाकुर नेत्रपालसिंहको आपके आगमनकी सूचना देने के लिये दौड़ा, किन्तु आपने रोक दिया। मैंने मीठा डालकर शर्बत तैयार किया। उसमें से थोड़ा आपने मुँह में डाल लिया। इतनेमें नेत्रपालसिंह, प्रतापसिंह आदि अनेकों भक्त आ गये। डेढ़वर्षसे जिनकी महिमा सुन रहे थे उन्हीं श्रीउड़िया बाबाजीको अपने ही स्थान पर पाकर सबको अतीव हर्ष हुआ। थोड़ी देरमें घरसे भिक्षा बनकर आ गयी। उसमेंसे थोड़ी–सी केलेके पत्तेपर रखकर आपने पा ली। रात्रिमें गाढ़ा मलाई पड़ा दूध लाया तो बोले, 'मुझे अभ्यास नहीं है।' मैं दूध नहीं पीता।' मैंने बहुत आग्रह करके छटाँक भर दूध पिलाया। फिर भी आपने उसमें मलाई निकलवा दी। मलाई तो आप अब भी नहीं पीते थे। इस प्रकार तीन दिन ठहरकर आप पिलखना होते हुए रामघाट चले गये। गाँव के कई लोग दूर तक साथ गये। मैं पिलखनातक पहुँचाकर लौट आया।

बाबा और वासुदेव

हम तीनों भाइयोंमें सबसे पहले वासुदेवने ही बाबाके दर्शन किये थे और उसका श्रीचरणों में अनुराग भी बहुत बढ़ा–चढ़ा था। एकबार किसी कारणवश वह बाबासे रूठ गया और उसने उनके पास आना छोड़ दिया। एकदिन रामघाटमें अकस्मात् बाबा मुझसे बोले, 'आज वासुदेव ग्वालियर से आ रहा है।' मुझे तो विश्वास भी न हुआ, सोचा कि वह तो रूठा हुआ है, और आज–कल कहाँ है इस बातका भी पता नहीं है। किन्तु देखते हैं कि रातको ११ बजे वह फलोंकी टोकरी और दूध आदि लिये कुटीपर आ रहा है। आकर उसने बाबाके चरणों में प्रणाम किया और बैठ गया। बाबा ने पूछा, कहाँ से आ रहा है ?' वह बोला महाराज ! ग्वालियर से आया हूँ।' वहाँसे वह बाबा के लिये एक पत्थर का गिलास भी लाया था। बाबा बड़े प्रसन्न हुए, मानों कोई घरका रूठा हुआ आत्मीयजन ही आ मिला हो। हम लोगोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई।

एक दिन बाबा मुझसे कहने लगे 'रामप्रसाद! विपत्तिमें घबड़ाना नहीं चाहिये।' मैं उनके इस संकेतको समझ नहीं सका। इसके कुछ ही दिन पश्चात् वासुदेव को मुकदमा लग गया। उसमें बहुत खर्चा करनेपर वह जजी से छूटा। फिर पिताजी रोगग्रस्त हुए और उनका स्वर्गवास हो गया। यहाँ तक भी विपत्तिका अन्त नहीं हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् वासुदेवसे भी हमारा वियोग हो गया। दुर्दान्त कालने उसे भी हमारे हाथ से छीन लिया।

बाबा और माताएँ

उन दिनों बाबा माताओंको अपने पास नहीं आने देते थे। प्रारम्भमें तो ऐसा नियम किया हुआ था कि यदि कोई माई मेरी दृष्टि के आगे आ जायगी तो मैं स्थान छोड़कर चला जाऊँगा। इसलिये रामघाट में किसी भी माईको कुटी पर जानेकी आज्ञा नहीं थी। परन्तु वहाँ एक विरक्त बंगालिनी माता रहती थीं। वे श्रीरामकृष्ण परमहंसकी शिष्या और एकान्तमें समाधिका अभ्यास किया करती थीं। कभी-कभी कई दिनोंतक उनकी कुटी के किवाड़ बन्द रहते थे। केवल वे ही बाबाके पास जा सकती थीं। वे उनसे योगसम्बन्धी प्रश्न किया करती थीं। बाबा उनसे बहुत प्रसन्न थे। एकदिन आपने उनसे पूछा कि माताजी! आपको यह समाधि-सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हुई? तब उन्होंने उत्तर दिया, बाबा! यह सब गुरुकृपा ही है- गुरुमूर्ति सदा ध्यायेद् गुरुमन्त्र सदा जपेत्।' बस, इसीसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है।' वे अपने पास गुरुदेवका एक चित्र भी रखती थीं।

ऐसी ही एक माता वृन्दावनमें भी थीं। वे भी बंगाली थीं उनका नाम था श्रीसरोजिनी माँ। ऐसी माताएँ बहुत कम देखने में आती हैं। बाबापर उनका अत्यन्त स्नेह था। वे इन्हें 'गोपालजी' कहा करती थीं।

जिरौलीमें भी पहले तो कोई भी माता आपके पास नही जा सकती थीं। किन्तु धीरे–धीरे उनका आगमन होने लगा। वे झुण्डकी झुण्ड प्रसादादि लेकर मंगलगान करती आतीं। किन्तु आप उन्हें दस मिनटसे अधिक नहीं ठहरने देते थे। फौरन चुटकी बजाकर कह देते–टरको।' कभी मुझसे कह देते इनसे कह दो अब जायँ।, मैं जब उनसे जाने को कहता तो वे नाराज होकर कहती' तुम्हें क्या ?' इस प्रकार खासा मनोरंजन हो जाता।

प्रथम फोटो

उन दिनों इस प्रान्तमें बाबाका कोई फोटो नहीं था। वे फोटो उतारने ही नहीं देते थे। जब हम ऐसी कोई चर्चा चलाते तो कह देते, 'फोटोकी कहोगे तो मैं चला जाऊँगा।' इससे किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। कई वर्षों बाद जब आपसे सम्पर्क बढ़ गया और हमारे हृदय से संकोचका भाव जाता रहा तब एक दिन हम लोगों ने फिर फोटोका प्रस्ताव रखा। परन्तु आपने तो वहीं उत्तर दिया। मैं अब कुछ ढीठ हो गया था। बोला, 'जाना हो तो चले जाना, फोटो तो हमारे पास रहेगा ही।' इस पर आप मधुर मुसकानके साथ गुदड़ी कंधेपर डालकर तुरंत खड़े हो गये। प्रतापसिंह आदि नै तो समझा कि बाबा चल दिये। अतः वे घबड़ाये। परन्तु हम लोगोंने पहले से ही कैमरा आदि ठीक कर रखा था। बड़े आनन्द से एक वृक्षके नीचे फोटो उतार लिया गया। इस प्रान्त में आपका सबसे पहला फोटो यही है। यह सं० १६७२ में उतारा गया था।

उनकी कृपा

बाबा जब कभी हमारे गाँवमें आते थे तो हम उन्हें बंबामें स्नान कराने के लिये ले जाते थे। हम स्वयं तैरते और उन्हें भी तैराते। परन्तु उन्हें तैरना नहीं आता था। फिर वे एकान्तमें बैठ कर हमें जपकी

विधि, ध्यानकी रीति और अनुष्ठान आदिके विधान बतलाते थे। छः मास तक तो मेरी इसी बात को लेकर बहस रही कि द्रौपदी के पाँच पति क्यों थे ? बाबाके सत्संगसे ऐसी अनेकों शंकाएँ निवृत्त हो गयीं। उन्होंने मेरी अनेकों दुर्वासनाओं को छुड़ाकर सदाचारमें मेरी निष्ठा बढ़ाई तथा मिथ्यभाषणको छुड़ाकर वाक्संयमकी शिक्षा दी। उन्होंने भगवन्नामसंकीर्तनमें हमारी रुचि पैदा की। प्रारम्भमें हम लोग उनकी आज्ञासे कीर्तन तो करते किन्तु मन में एक कौतुक–सा ही जान पड़ता था। सोचते–भला इस प्रकार चिल्लानेसे क्या होगा ? बाबाने हमें समझाया कि भगवन्नाम में बड़ी अद्भुत शक्ति है। कलियुग में नामका ही सबसे अधिक महत्त्व है और सब साधन तो कष्टसाध्य हैं। उनमें लोगों की रुचि होना कठिन है। उनके इस उपदेशका ही यह परिणाम हुआ कि सैकड़ो व्यक्ति भगवन्नामकीर्तन करने लगे और पीछे बाबाके तत्त्वावधानसे अनेकों अखण्ड संकीर्तन हुए।

मुझे तो बाबाका दर्शन क्या मिला मानों मेरी कई पीढ़ियोंका पुण्य मूर्तिमान् होकर उदित हो गया। आप विशेषतः सत्य, अहिंसा और मन, वचन एवं कर्मसे किसी भी प्राणीको न सताने का उपदेश देते थे। हमारे तो वे गुरु माता–पिता और संरक्षक सभी कुछ थे। वे जिसप्रकार उस समय हमपर कृपा करते थे उसी प्रकार अब भी हमें स्मरण कर लेते हैं। उनके लीला संवरणके पाँच वर्ष पश्चात् सं० २०११ वि० में मेरी लड़कीको एक दिन स्वप्न में उनके दर्शन हुए। तब वे बोले, 'तेरे बापके पास अब पैसा नहीं रहा और मेरे यहाँ भंडारा नहीं रहा। इसीलिये अब वह मेरे उत्सवों में नहीं आता।' यह उनकी महती कृपा ही है जो वे हम–जैसे तुच्छ व्यक्तियोंको अपने उत्सवों के समय याद कर लेते हैं। नहीं तो उन पूर्णकामाको हमारी क्या आवश्यकता है ?



पं० श्रीनिवासजी शर्मा, बी० ए०, जिरौली, अलीगढ़

मेरे पूज्य पिताजी (पं० रामप्रसादजी) और चाचाजी (श्रीशिवदयालजी) दोनों ही प्रायः श्रीमहाराजजीके पास जाया करते थे। परन्तु मेरी उनमें विशेष श्रद्धा नहीं थी। अतः मैं सोचा करता था कि ये क्यों महीनों बाबाके पास पड़े रहते हैं। पीछे कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं कि मेरा भी उनके प्रति आकर्षण हो गया और मैं भी समय–समय पर उनके दर्शनार्थ जाने लगा।

(१)

एक बार आषाढ़ मासमें श्रीमहाराजजी जिरौली पधारे। साथमें चालीस–पचास भक्त भी थे। एक दिन उनकी भिक्षा हमारे घरपर हुई। वह भिक्षा का उत्सव विवाहादिके उत्सवों से किसी प्रकार कम नहीं था। श्रीमहाराजजी के स्वागतार्थ बाजे भी बज रहे थे। सभीके हृदयोंमें बड़ा उत्साह था। प्रातःकाल ही आप हमारे घर आ गये थे। हम सबने मिलकर आपका पूजन किया। हमारे साथ हमारी एक बहिन भी थी। उसका नाम था बिट्टो। उसे देखकर आप बोले, 'शिवदयाल क्या इस कन्याका विवाह अभी नहीं किया ?' चाचाजीने कहा, भगवन्! इस वर्षमें हो जाएगा।' आप बोले, 'नहीं अभी दो वर्ष मत करना।' इसके पश्चात् दो वर्ष के भीतर ही वह स्वर्गवासिनी हो गयी।' इससे मुझे श्रीमहाराजजीकी महत्ताका कुछ परिचय हुआ।

(२)

इसके कुछ दिनों पश्चात् मैं वृन्दावन गया। वहाँ मैंने देखा कि बड़े–बड़े धनाढ्य पूंजीपति आपके पास आते हैं और उनसे आप बहुत देरतक बातचीत भी करते रहते हैं। यह देखकर मेरे

मनमें ऐसा भाव आया कि महाराजजी धनियोंसे अधिक प्रेम करते हैं, गरीबों से नहीं। मैं उन दिनों समाजवादी सिद्धान्तको मानता था। इसके एक वर्ष पश्चात् मेरे चाचाजी बीमार पड़े। उनकी बीमारी का समाचार सुनाने के लिये हमारे गाँव के ब्रह्मचारी बिहारीलाल वृन्दावन गये। उन्हें देखते ही महाराजजी बोले, 'अरे बिहारी! क्या तू शिवदयालकी बीमारीका समाचार लाया है? भैया! अब उसका शरीर नहीं रहेगा।' यह कहते हुए आपके नत्रों में अश्रबिन्दु छलछला आये। फिर शान्त होनेपर कहने लगे, 'शिवदयाल भक्त था....।'ऐसा कहते हुए आप गुफा में चले गये। इससे मेरा भ्रम निवृत्त हो गया। मैंने समझ लिया कि आप गरीब–अमीर सभी से प्रेम करते हैं।

(३)

सन् १९५४ में मैंने इण्टरकी परीक्षा दी थी। प्रश्नपत्र सायंकालमें तीन बजे से आरम्भ होते थे। एक दिन मैं रात्रिमें बहुत देरतक पढ़ता रहा। फिर दिन में भी निरन्तर अध्ययनमें ही व्यस्त रहा। मध्यान्ह में डेढ़ बजेके लगभग विश्रामके लिये लेट गया। उस समय मुझे नींद आ गयी। उधर तीन बजेसे प्रश्नप्रत्र आरम्भ होनेवाला था। जब तीन बजने में केवल दस मिनट रहे स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिये और बोले, 'अरे! उठ, परीक्षाका समय हो गया।' मैं चौंककर उठा। घड़ी में देखा तो दो बजकर पचास मिनट हो चुके थे। मैं तुरंत कालेज गया और परीक्षा आरम्भ होनेसे केवल दो मिनट पहले पहुँचा। मैंने परीक्षा दी और उनकी कृपासे पास हो गया।

इस प्रकार आज भी वे हमारा वैसा ही ध्यान रखते हैं जैसा अपनी लौकिक लीलाके समय रखते थे।



श्रीजगदीशप्रसाद शर्मा, जिरौली (अलीगढ़)

(१)

पूज्य बाबा जब–जब मेरे गाँव में पधारते थे मुझे उनके दर्शनों का अवसर प्राप्त होता था। इससे धीरे–धीरे उनमें मेरी श्रद्धा हो गयी। मैं उन्हें गुरुभावसे देखने लगा। मेरी इच्छा थी की मेरा यज्ञोपवीत बाबाके द्वारा ही हो और वे ही मुझे मन्त्र प्रदान करें। एक दिन इसी निमित्तसे मेंने उनके पास वृन्दावन जानेकी पूरी तैयारी कर ली, परन्तु दादीने मुझे रोक लिया; कहने लगी मेरे भतीजे दीपचन्द का जनेऊ एक सन्यासीके हाथ से ही हुआ था, परन्तु पीछे मर गया, इसलिये तुम मत जाओ। मुझे रुकना पड़ा। परन्तु मेरी यह हार्दिक लालसा दिनों दिन बढ़ती रही। तथापि मेरा यह मनोरथ पूर्ण न हो सका। बाबाने अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली।

(२)

मैं अलीगढ़ कनवरीगंज में किराये के मकान में रहकर पढ़ रहा था। साथ ही एक प्रेसमें नौकरी भी करनी पड़ती थी। सं० २००६ कार्तिक कृष्णा गुरुवार का दिन था। उस दिन मुझे प्रेसमें अधिक काम करना पड़ा और अधिकारियोंकी फटकार भी सुननी पड़ी। घर लौटनेपर मैं चिन्तित हो उठा और मनहीमन कहने लगा, हे भगवान् ! मुझे कबतक ये दिन देखने पड़ेंगे। इतना कष्ट सहने पर भी दरिद्रता के चंगुल में पड़ा हुआ हूँ। यदि पढ़ता हूँ तो नौकरी निभनी कठिन है और नौकरी छोड़ता

हूँ तो भोजनके लाले हैं। संत महात्मा कहते हैं कि आपत्तिके समय गुरुमन्त्र अथवा भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। परन्तु मेरे न तो गुरु हैं न कोई गुरुमन्त्र है। किससे पूछूँ ?' इस प्रकार चिन्ता करता मैं सो गया।

प्रातः काल चार बजेका समय होगा। मैंने स्वप्नमें देखा कि मैं रविवारकी छुट्‌टीमें गाँव आया हूँ। वहाँसे अलीगढ़ लौट रहा हूँ। रास्तेमें साइकिल पर एक मित्र मिला। उसके साथ कुछ दूर जानेपर सड़कपर एक थैला पड़ा दिखायी दिया। यह किस यात्रीका है—ऐसा कहकर मैंने उठा लिया। मित्र ने कहा, 'रखलो, जिसंका होगा वह पूछेगा तो उसे दे देंगे।' परन्तु रास्तें में कोई मिला ही नहीं। अलीगढ़ जाकर उसे खोला तो उसमें पचहत्तर रुपयेकी चीजें निकली। फिर अपनेको कमरे में लैम्प जलाकर पढ़ते देखा। पढ़ते—पढ़ते थक जाने पर मैं पूज्य बाबाके चित्रकी ओर देखने लगा जो उस कमरे में लगा हुआ था और उनसे प्रार्थना करने लगा, 'महाराजजी ! आपने न तो मुझे गुरुमन्त्र ही दिया और न अन्त समय कुछ कहा ही। अब मैं क्या करूँ ?' सहसा महाराजजी की उस छविने प्रसन्न मुद्रा धारण की और बोल उठी—'शम्भो बोल'— इस मन्त्रका जप करो।' भगवान् शिव मे मेरी श्रद्धा भी थी। बस, मेरी नींद खुल गयी। इस प्रकार ठीक गुरुवार के दिन गुरुदेव ने कृपा करके मुझे गुरुमन्त्र प्रदान किया। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अगले शनिवार को मैं गाँव आया और सोमवार को अलीगढ़ लौटते समय रास्तें में ठीक वही दृश्य सामने आया जो मैंने स्वप्न में देखा थ। वहीं मित्र साइकिल पर जाता हुआ मिला और स्वप्नमें जिस स्थान पर थैला मिला था वहीं थैला और उसमें पचहत्तर रुपयेकी चीजें मिलीं। इस प्रकार बाबाने मेरी दीनता देखकर मुझपर दया की और रुपयोंके साथ गुरुमन्त्र भी दिया।

(३)

मार्च सन् १९५३ ई० की बात है। हाईस्कूल की परीक्षा होने से दो दिन पूर्व मेरी बाईं डाढ़में दर्द होने लगा। मित्रोंने डाढ़ उखड़वानेकी सलाह दी। परन्तु डाक्टरने कहा, इससे आँखको क्षति पहुँचनेकी आशंका है। इसलिये दन्तशूलकी निवृत्ति के लिये मैं आठ आना रोजकी दवा खाने लगा। शनिवार को दवा समाप्त हो गयी। रविवार को डाक्टर की दूकान बंद थी और सोमवार को मुझे अँग्रेजीका प्रश्न पत्र करना था। इसी विषयमें मैं दो सालसे फेल हो रहा था और इस वर्ष भी असफल होने की ही आशंका थी। दिन के तीन बजे डाढ़में दर्द होने लगा और बुखार चढ़ आया। रातके आठ बजे तक यही दशा रही। तब मैं बाबाके उस चित्रपट के आगे प्रार्थना करने लगा और अन्यान्य देवी–देवताओं की भी शरण ली। कुछ देर में मुझे झपकी आ गयी। उसी समय बाबाने मुझे दर्शन दिया। वे अभयमुद्रा धारण किये हुये थे। बोले, 'बेटा–तू पास है।' फिर मैं जग गया मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा मेरे बुखार और दर्द भी धीरे–धीरे जाते रहे। दूसरे दिन मैंने परीक्षा दी और गाँव में कई लोगों से कह भी दिया कि महाराजजी ने मुझे पास होने का आशीर्वाद दे दिया है। मैं अवश्य पास हो जाऊँगा। जब परीक्षाफल प्रकट हुआ तो मैं द्वितीय श्रेणी में (Second division) पास था।

(४)

यह अभी सन् १९५५ के फाल्गुन मासकी बात है। माताजी की मृत्यु के पश्चात् मेरा लालन–पालन मेरे पूज्य पितामह श्रीहोतीलालजी शर्मा ने किया था। अतः बचपनसे ही उनपर मेरा बहुत स्नेह था। मैं कौड़ियागंज विद्यालयमें अध्यापक था। एक दिन मुझे सहसा बाबाकी बीमारीका समाचार मिला। मैं तुरन्त गाँव चला आया और उनकी हालत खराब देखी। अपने नित्य नियमके अनुसार सायंकाल मैं शिवमन्दिर गया

और भगवान्‌से प्रार्थना की कि बाबाकी मृत्यु न हो। उस दिन फाल्गुन शु० २ गुरुवार था। रात्रिको मैंने स्वप्न देखा कि मैं शिवमन्दिर में भगवान्‌की आराधना कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि वहाँ लगे हुए पूज्य महाराजजीके चित्रपटकी ओर गयी और मैं विह्वल हो उठा। इतने ही में एक चौकीपर विराजमान बाबाके दर्शन हुए। उन्होंने पास बुलाकर मुझे बताशेका प्रसाद दिया। फिर बोले, 'बेटा! यह शरीर अस्थिर है। देख, जब मेरा ही शरीर इस संसार में नहीं रहा तो तेरे बाबाका ही शरीर कैसे बना रहेगा। आज रातको साढ़े आठसे लेकर दस बजेतक इनकी मृत्यु हो जायगी।" यह सुनकर मैं फूट–फूटकर रोने लगा। फिर उन्होंने कहा, 'अच्छा, वे कभी–न–कभी मरेंगे तो जरूर ही। तू उन्हें मुझे दे दे। जा, गुरुकी आज्ञा है, अधिक बातें नहीं करते।' इसके पश्चात् मेरी आँखे खुल गयीं। मैं चकित रह गया।

प्रातःकाल मैंने बाबाकी हालत अच्छी देखी। माँगनेपर मैंने उन्हें दूध में मीड़कर रोटी दी। सब लोग कहने लगे कि अब इनका शरीर बच जायगा। मैं दवा लेनेके लिये अलीगढ़ जा रहा था। उस समय प्रतापसिंहजी को मैंने रात्रिका स्वप्न सुनाया। परन्तु उन्हें विश्वास न हुआ और हम दोनों में इसीबातको लेकर बाजी लग गयी। रातको नौ बजे जब हम घर लौटे तो बाबाका शरीर छूट गया। श्रीमहाराजजीकी स्वप्न में कही वाणी सत्य हुई।

इन सब घटनाओं से यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि श्रीमहाराजजीकी कृपादृष्टि हम गरीबों पर पूर्ववत् ही है। वे हमें भूले नहीं हैं। केवल आँखोंसे उनका दर्शन ही नहीं होता, उनका वरद हस्त तो अब भी हमारे ऊपर है ही।



पं० श्रीराजेन्द्रमोहनजी कटारा, हाथरस

प्रथम दर्शन

जिरौली जिला अलीगढ़के रहने वाले पं० श्रीशिवदयाल शर्मा पूज्य बाबाके एक कर्मठ भक्त थे। वे मेरे जन्मस्थान जिला आगरा के अन्तर्वर्ती ग्राम बमरौली कटारा में धर्मप्रचारके लिये आया करते थे। एक बार उन्होंने मेरे पिता पं० प्यारेलालजीसे कहा, 'आपको संतों से मिलने का चाव है, इसलिये मैं आपको उडीसा प्रान्त के एक परम वीतराग प्रेममूर्त्ति महात्माके दर्शन कराऊँगा।' मैंने भी ये शब्द सुने और मेरे पूर्व संस्कारोंने जोर मारा। मनमें निश्चय किया कि ऐसे महापुरुषके दर्शन करके जीवनका लाभ अवश्य लेना है। किन्तु कोई भी कार्य समयसे पूर्व नहीं होता। अतएव भावना तो रही, परन्तु सुयोग न जुट सका। यद्यपि रामघाट, जहाँ बाबाका प्रायः स्थायी निवास था, आगरासे अधिक दूर नहीं है, फिर भी ऐसा साधन न बन सका कि शीघ्र ही दर्शन हो जाते।

किन्तु 'प्रभुः सर्वसमर्थोहि' भगवान् के लिये कौन काम सहज नहीं है ?' अतः उक्त पण्डितजीके घरसे किसीके विवाह का निमन्त्रणपत्र आया और यही मेरे लिये पूज्य बाबाके दर्शनों का कारण बन गया। हम कई लोग जिरौलीसे रामघाट को चले। उनमें मैं ही सबसे अल्पवयस्क था। घोर शीतकाल था। मुझे भली भाँति स्मरण है कि प्रबल पवनके साथ वर्षा भी हो रही थी। हम सब डिबाई स्टेशनसे चार कोसकी पैदल यात्रा करके बाबाके

स्थानपर पहुँचे। वहाँ सघन बनके बीचमें एक छोटी–सी कुटिया थी, जिसमें एक द्वारके अतिरिक्त वायुप्रवेशका सम्भवतः कोई साधन नहीं था। उसके भीतर एक काष्ठशय्या थी जिसपर रात्रिमें बाबा शयन और समाधिसाधन करते थे। उसके अतिरिक्त उसमें कठिनतासे पाँच–छः व्यक्तियोंके सिकुड़कर बैठनेयोग्य ही स्थान था।

मेरी आखों में वह दृश्य आज भी नवीन–सा है, जब कि सायंकाल कुटीके बरांडेमें केवल बैठने भरकी एक काष्ठपीठिका पर हमें निश्चल भावसे विराजमान एक संतशिरोमणिके दर्शन हुए। उनकी मुद्रा अत्यन्त शान्त थी, नेत्र अर्धोन्मीलित थे और शरीर प्रायः वस्त्रहीन था। शीतकालीन वर्षाके कारण अत्यन्त शीतल वायुके प्रबल झकोरे हम सभीके, बहुत कुछ पहने–ओढ़े होनेपर भी, कम्पित कर रहे थे। सहसा मेरे मनमें भगवान् का यह गीतोक्त वचन गूँजने लगा–'शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः' इस श्लोक में बतलायी हुई स्थिति वस्तुतः यही है।

हमें अधिक देरतक प्रतीक्षा न करनी पड़ी कि बाबाके अर्धोन्मीलित नेत्र आकाशकी ओर उठ गये और शनैः शनैः अस्पष्ट शब्दों के साथ नीचे झुकते हुए हम दर्शनार्थियों पर बरस पड़े। सायंकाल के धुँधले प्रकाश में उन नेत्रों ने बताया कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और तपस्याका क्या चमत्कार होता है। उन नेत्रोंने बताया कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और तपस्याका क्या चमत्कार होता है। उन नेत्रोंके सहज प्रकाशने जादू का काम किया और सभी दर्शकों के सिर आपके श्रीचरणों पर झुकगये। मन्द मुसकानयुक्त मधुर शब्दों में कुछ कह गये वे, परन्तु मैं न समझ सका। उक्त पण्डितजीने सबके सम्बन्ध में कुछ न कुछ बताया। अन्त में मेरा भी संक्षिप्त परिचय दिया। इस प्रकार रात्रिके

प्रायः ६ बज गये। पूज्य बाबा सहसा उठकर कुटियामें चले गये और पीछे हम भी उनके पास भीतर ही जा बैठे।

रामघाटमें

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उस सत्त्वगुणी कुटियाकी सज्जापर ध्यान गया। अधिक–से–अधिक तीन फुट चौड़ी और ६ फुट लम्बी एक चौकीपर केवल साधारणसी चौपर्ती भगवा चादर बिछी थी तथा सिरहाने के स्थानपर तह की हुई कौपीन और कटिवस्त्र थे। इनके अतिरिक्त एक चादर और थी जिसे बाबा स्वयं ऊपर नहीं ओढ़ते थे, कोई दूसरा भले ही ऊपर डाल दे। वह भी प्रायः इधर–उधार अस्त–व्यस्त होकर पड़ जाती देखी गयी। वहाँ बैठकर मुझे तो ऐसा लगा मानों मेरे भीतरसे कोई कह रहा है कि यही वह स्थान है जहाँसे तेरा जन्म–मरणका परम्परागत व्यवसाय छूट सकता है।

कोनेमें सबसे पीछे दीवारसे सटा बैठा था मैं और किसीकी घड़ी बताने लगी कि रातके दस बजे हैं। अब महाराजजीको आराम करने दो। आप सब जाओ, सबेरे फिर दर्शन करना। ये शब्द थे एक नवीन सज्जन के जिन्होंने बाहर से आकर वचनों द्वारा हम सब पर आक्रमण किया। प्रत्युत्तरमें सभी ने उन्हें 'बाबूजी! जय रामजीकी कहकर अभिवादन किया। इन्हीं सज्जनका पं० शिवदयालजीने पहले 'बाबू रामसहाय' कहकर हमें परिचय दिया था। ये रामघाटमें पोस्टमास्टर और श्रीमहाराजजीके परम अन्तरंग भक्त थे।

बाबूजीके वचन मेरे लिये प्रधानतया वाणका काम कर रहे थे, क्योंकि उस मण्डली में नवीन व्यक्ति मैं ही था। सोचने लगा, शीतकालकी, इस काली–काली अँधेरी रात्रिमें इस निर्जन स्थानपर हमें अब कहाँ जाना होगा ? कहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था होगी ? हे दैव यह कैसा हृदयहीन बाबूजी है ! क्या साधुओं के सात्त्विक और निवृत्तिमय स्थानों पर

भी इन बाबू लोगों का आधिपत्य रहता है? इसी प्रकार की न जाने कितनी उथल–पुथल मच गयी मेरे मन में। इसी समय बाबाने मेरी ओर कुछ संकेत किया, जिसे मैं अपनी उधेड़–बुन नहीं समझ सका। तब मेरे पथ–प्रदर्शक पण्डितजी ने कहा, आगे बढ़कर सुनो, बाबा कुछ कह रहे हैं।' मैं आगे बढ़ गया और निःसंकोच भावसे मैंने उनके चरण पकड़ लिये। अब मैं यह समझ चुका था कि ये ही वे महापुरुष हैं जिनके दर्शनों के लिये इतना उद्योग किया गया था। उस दिव्य विभूतिके स्पर्शने मुझे सदा के लिये बाँध लिया और मीराके शब्दोंमें मेरी गति यह हो गयी–गिरधर तेरे हाथ बिकानी।'

'भजन करता है बेटा! मुसकान भरे मुखसे कहा श्री बाबाने।

'कुछ नहीं, बाबा!' डरते–डरते मैं कह बैठा।

'अच्छा तो' महामन्त्रका जप किया करो और रामायणका नित्य–प्रति पाठ' सुमधुर वाणी में उन्होंने कहा।

इतने ही में हमारे साथियोंमेंसे न जाने किसने कहा, 'अग्रेजीवाले लोग है, ये क्या भजन करेंगे बाबा!'

'सभी एकसे नहीं होते, यह संस्कारी बालक है।' मानों श्रीबाबाजीने मेरे अन्तस्तलमें झाँककर देखा और निश्चयात्मक रूप से कह दिया। साथ ही मेरे सिरपर अपना वरद हस्त भी फिरा दिया।

तभी पुनः बाबूजी का वचनाक्रमण हो गया–'चलो, भाई! आराम करने दो।' बस, दो मिनट में ही हम कुटियासे बाहर हो गये। थोड़ी दूर रामघाट नगरीमें किसी धर्मशाला में जाकर हमने डेरा लगाया। सभी सो गये किन्तु जाग रहा था अकेला मैं क्योंकि आज वह सुख मिला था जो मानव–जीवनमें परम आवश्यक है। मैं रह रहकर सोचता था कि क्या किसी मनुष्य में इतनी दया और प्रेम भी हो सकते हैं। क्या वास्तव में चार्वाकके यावज्जीवेत सुखं जीवते ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् इस वाक्य से

अथवा आधुनिक जगतके 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' इस सिद्धान्तसे विरक्त एवं तपोमय जीवन कहीं अधिक श्रेयस्कर है, जैसा कि मैं अभी अपनी आखोंसे देख रहा था।

इस प्रकार वहाँ कई दिनोंतक ठहरने का अवसर मिला और मैं वहाँ की प्रत्येक गति–विधिका अवलोकन करतारहा। कितना स्पृहारहित और अपरिग्रही जीवन देखा श्रीबाबाका। वहाँ किसी भी वस्तुका संग्रह दिखायी ही नहीं देता था।

प्राणियोंपर दया

एकबार किसी पुस्तक में पढ़ा था कि 'दया बिन सन्त कसाई।' सम्भवतः यह वचन गुरु नानकका है। अपने इस छोटेसे जीवनमें सचमुच सन्तरूपमें ऐसे कई महानुभाव देखे हैं जिनमें दया नामको भी नहीं है और यदि है भी तो केवल दिखावामात्र। किन्तु श्रीबाबाजी की दयालुता को देखकर तो आंखे खुल गयीं। रामघाट की गौएँ उनके हाथ से प्रसाद लेनेके लिये दौड़ी आतीं और बन्दर भी इधर–उधर से आकर घेरते तथा वे मुसकाते हुए सभीको प्रसाद देकर सन्तुष्ट करते। किसीको भी भूखा देखना या सुनना उन्हें असह्य था। वचनों द्वारा भी किसी का मन न दुःख जाय–यह तो उनका मानो स्वभाव ही था। इसका तो कईबार अनुभव हुआ।

टिकट

हाँ तो, इस बारकी यात्राका समय समाप्त हुआ और सभी के मुँहसे 'टिकट' की चर्चा चलने लगी। क्या यहाँ कोई Ralway Booking office (टिकटघर) है?' मैं सोचने लगा। उधर देखा कि श्रीबाबजी लोगों को विदाई में लौंग और इलायचियोंका प्रसाद दे रहे हैं। हमारे प्रथप्रदर्शक पण्डितजीने मुझसे कहा, 'जाओ न, टिकट लेलो।'

पैसोंपर हाथ डालते हुए मैंने कुछ झिझकते हुए कहा, किधर टिकट मिलता है महाराज !'

'अरे ! यह लौंग–इलायची ही यहाँ का टिकट हैं इसे सुरक्षा का परमिट समझो' पण्ड़ितजी बोले।

मैंने भी श्रद्धा से आगे हाथ बढ़ाया और उन्होंने दयाभारी दृष्टिसे देखते हुए टिकट दे दिया और कहा, भजन करना, तेरे घर आयेंगे।'

यह सुनकर कि महापुरुष आयेंगे मुझे अकथनीय उल्लास हुआ और न जाने कितनी अभिलाषाएँ लिये हम वहाँ से चल दियें।

वचनोंकी सत्यता

भूल–सा ही गया था सांसारिक प्रपन्चों में पड़कर और शिथिलता आ चुकी थी साधनके उत्साह में। उन्हीं दिनों श्रीबाबाजी सहता पधारे थे। मुझे पता लगा कि आगरा जिलाके सवकों की प्रार्थना से आप यत्र–तत्र पधार रहे हैं। बस, उमंगें उठने लगीं मनमें और कानोंमें गूँजने लगे रामघाटमें टिकट लेने के समय सुने हुए वे मधुर शब्द कि तेरे घर आयेंगे।' अतः पिताजी और अन्य कुछ सज्जनों को साथ ले पुनर्दर्शन की आशा लिये यात्रा कर दी। पहुँचते ही सभामें बुला लिया और कहा, एक पद सुना।'

नहीं समझ सका कि मैं कुछ गा भी लेता हूँ यह पता उन्हें कैसे लग गया। मैं तो मन–रोगी हूँ सभा–रागी तो हू नहीं। सभामें गानेका तो यह पहला ही अवसर था। झिझकते–झिझकते गा तो गया, परन्तु मनमें यही विचार रहा कि मनुष्यके भीतरकी बात जान लेने की शक्ति है इनमें। उसी सायंकालमें भक्तजन नियमानुसार सामूहिक संकीर्तन करनेवाले थे। आपने मुझे अलग बुलाकर धीरे से कह दिया, कीर्तनमें सम्मिलित

होगा, परसों आयेंगे तेरे घर, तू कल चला जाना, यहाँ किसी को छोड़ जाना। दूसरे दिन टिकट लेकर आज्ञानुसार हम सभी चल पड़े। केवल अपने चचेरे? भाई भावानकुमारको उन्हें मार्ग दिखाने और सुविधापूर्वक लानेके लिये छोड़ दिया।

परन्तु जो संसार को मार्ग दिखावे उसे भला, कौन राह दिखा सकता है। अतएव उसी रात को सबेरे तीन बजे सबको योगनिद्रा में सुलाकर उस बालकको ही साथ ले आप हमारे गाँवकी ओर चल दिये। बच्चे ने कहा, 'महाराज! सड़क-सड़क चलने से तो गाँव तो यहाँ से आठ कोस है, आप बोले पगडंडी के रास्ते चलेंगे। बस, ऐसा कहकर सीधे पड़ गये खेतों और खड्डोंको पार करते मानो कईबार का देखा हुआ रास्ता और सूर्य की किरणे निकते-निकलते मेरे बाग में बमरौली कटारा पहुँच गये। हम लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब श्रीबाबाको सबेरे बागकी एक रौसपर टहलते देखा। साथ आनेवाला बालक तो अभी दो कोस पीछे था। यह आपकी सर्वज्ञता नहीं तो क्या थीं?

कहना न होगा कि तीन दिनों तक बाग भक्तिका केन्द्र बन गया। पारस्परिक शत्रुता लोगोंके मनसे रामराज्यकी तरह निकल गयी। तीसरी रात आनेपर मुझे लगा कि आज शेष रात्रिमें प्रस्थान कर जाँयगे अतः फूँसकी कुटी के चारों ओर पहरा लगा दिया। परन्तु महापुरुष कब किसी के बन्धन में बँध सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णको गोकुल जानां था तो कंसके पहरेदार योगनिद्राके वशीभूत होकर सो गये। वही बात यहां हुई। मुझे ठीक स्मरण है कि मैं स्वयं और मेरे तीन अन्य साथी प्रातः ३ से ५ बजे तक पहरे पर थे। परन्तु हम सभी को ऐसी निद्रा आयी कि जब चारों ओर श्रीबाबाजी के चले जानेका कोलाहल मच रहा था तब आँखें खुलीं। परन्तु अब होता ही क्या? बस हाथ मलकर रह गये।

वृन्दाबनस्थ आश्रमका उद्‌घाटनोत्सव

उन दिनों मैं फर्रुखाबादमें था। पत्र मिला कि वृन्दावन के निवनिर्मित आश्रमकी प्रतिष्ठाका उत्सव हो रहा है। वसन्त पञ्चमीका अवसर था, होली भी समीप ही थी। और बाबाजीकी कुटीका उत्सव। अतः चाव चौगुना हो गया। गृहिणीसे कहा, 'रातों रात तैयारी करो, वृन्दावन चलना है।

"बिना छुट्‌टी कैसे चलोगे?" देवीजी बोलीं।

"चिन्ता न करो, जो बुलाते हैं वे स्वयं प्रबन्ध करेंगे।, मैंने विश्वासपूर्वक कहा।

'अरे! नौकरी है, कोई खेल तो नही' वह कहने लगीं।

'जो होगा सो देखा जायगा" इतना कहकर मैंने तार दे दिया और हैड आफिस से उसी सायंकाल छुट्टी स्वीकृत होकर आ गयी। बस, रातको ही प्रस्थान कर दिया और सबेरा होते होते लीलाबिहारीकी लीलाभूमि में जा पहुँचे वहाँ क्या देखा यह तो पाठक अन्य लेखोंमें भी पढ़ लेंगे, परन्तु अपना अनुभव तो यह है कि श्रीरामायणजीके वे शब्द स्पष्ट देखने में आ रहे थे।

'अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुशल जेहि बूझा नाहीं।।

सहस्रों नर नारियोंमें से कोई एक भी ऐसा नहीं था जिससे बाबाजीने कुशल न पूंछी हो। ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति।' सर्वत्र श्रीभारद्वाजजी के आश्रम जैसी सिद्धियाँ कार्य सम्पन्न कर रही थीं। यहाँ भी अन्तिम दिन मध्याह्नके सम्मेलनमें स्वयं बुलाकर कीर्तन करनेका आदेश दिया जो मेरे-जैसे संकोची व्यक्तिके लिये अनोखी बात थी। यही मेरे कथा–प्रवचनकार्यके लिये श्रीबाबाजीका गुप्त वरदान था।

अनूठी रामलीला

अभी कुछ दिन पूर्व हैजेके प्रकोप से त्राण पाया था कि स्वप्न हुआ, श्रीबाबाजी वृन्दावनमें बुला रहे हैं। सभी कार्योंमें उदासीनता हो गयी मन किसी ओर भी नहीं लगता था। निश्चय कर लिया कि अब तो श्रीमहाराजजी के समीप ही चलना है। अतः वृन्दाबनको प्रस्थान कर दिया। भ्रमितको निर्भ्रम करना और पथभ्रष्ट को प्रथप्रदर्शित करना ही तो महापुरुषोंका काम है।

मेरे वृन्दावन पहुँचते ही भक्तपरिकरमें तरह–तरह की धारणाएँ बनने लगीं। कुछ ऐसे भी भक्त थे जो मेरे ऊपर श्रीबाबा का बढ़ता हुआ प्रेम सहन नहीं कर सकते थे। यह शिकायत एक दिन मैंने उनके समक्ष रखी। वैसा भावपूर्ण उत्तर था उनका 'तू किसीकी क्यों सुनता है ? यहाँ तो तेरा सम्बन्ध मुझसे है।' ये शब्द क्या थे, मानो मेरे हृदयकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये अमृत की वर्षा ही थे।

महीनों व्यतीत हुए सान्निध्य सुखका आनन्द लेते। तभी कुछ भक्तों के विशेष आग्रह और परम भागवत श्रीहरिबाबाजीकी अभिरुचिके अनुसार आपने श्रीरामलीलाके अभिनयका संकल्प किया और उस कार्यके सञ्चालन का भार अपने आशीर्वाद सहित डाला मुझपर। यद्यपि सहयोगियोंने अनेकों विघ्न उपस्थित किये, तथापि डेढ़ मासपर्यन्त जो श्रीरामचरित्र अभिनय हुआ वह वास्तवमें आपके संकल्पका सजीव रूप था। मैंने आजतक भी जहाँ–तहाँ जनकपुर जैसे स्थानों के महात्माओंको भी, जो उन दिनों दर्शन कर गये थे, कहते सुना है कि लीला तो बस श्रीउड़ियाबाजी के यहाँ हो चुकी।

उन्हीं दिनों मेरी धर्मपत्नी को भी कई मास मातृमण्डलमें रखकर आपने अपने सदुपदेशोंसे वह बना दिया जो एक सद्‌गृहस्थ की

गृहदेवी होनी चाहिये। न जाने कौन–सा मूक मन्त्र पढ़ाया कि उनके जीवन की साध्य एकमात्र भगवत्प्राप्ति ही बन गयी फिर यह कहकर विदा किया कि अब घर जाओ, नौकरी न करना। तेरे जीवनमें कोई बहुत बड़ा काम होगा जिससे धर्म और देशकी पर्याप्त सेवा होगी।

असीम सहिष्णुता

एकबार जब मैं आगरे में कुछ कारोबार कर रहा था दोपहर के २ बजेके लगभग किसीने कहा कि श्रीउड़ियाबाबजी आये हैं और मैंने उन्हें बेलनगंजमें जाते हुए देखा है। ज्येष्ठका महीना था और आगरेकी गर्मी। बांबा आये हैं–इस बात पर सहसा विश्वास तो नहीं हुआ, पर जैसे ही कुछ आगे बढ़ा एक और परिचित व्यक्ति से भेंट हुई जो स्वयं श्रीमहाराजजीके दर्शनों के लिये उतावले थे। उनसे भी यही पता लगा कि वे अवश्य बेलनगंजमें ही हैं। मैं साइकिलपर दौड़ गया आगे देखता हूँ कि एक सेठकी कोठीसे भीड़के साथ आप निकल रहे हैं। भीड़ यद्यपि बहुत अधिक नहीं थी तथापि कुछ ऐसे लोग अवश्य थे जिन्होंने मुझे श्रीमहाराजजी के चरणों तक नहीं पहुँचने दिया। हताश होकर'मन ही मन प्रणाम गुरु कीन्हा– करके सन्तोष कर लिया और पीछे–पीछे चलने लगा। थोड़ी ही दूरपर जीवनीमंडी के चौराहे तक एक–एक करके सभी लोग खिसक गये।

अब आप प्रायः अकेले ही थे। सड़ककी पटरीपर रेत अंगारे के समान जल रही थी। उसीपर नंगे पैरें आपने जोन्स मिलके आगे यमुनातटवर्ती एक शिवमन्दिरमें जानेके लिये गति बढ़ा दी। सड़्क और बगलकी रेतसे आग उठ रही थी ऊपरसे सूर्यनारायण अग्निवर्षा–सी कर रहे थे और तेज लू शरीरको झुलसाये डालती थी। उस समय मैंने खुली आँखों देखा कि वह मस्त महापुरुष श्रीरामजीकी भाँति सहजहिं चले सकल जगस्वामी इस चौपाई को

सार्थक कर रहे थे। यह देखकर मनमें आया कि कुछ सहायता करूँ और इसी विचारसे साइकिलसे दौड़कर आगे पहुँचा। देखते ही सहज भाव से हँस पड़े आप और बोले, 'अरे! तू कहाँ से आया ?"

'कुछ न पूछें आप साइकिल पर बैठे बड़ा कष्ट हो रहा है आपको, पैर जल रहे होंगे।' मैंने संकोचसे प्रार्थना की। उस समय वास्तवमें मेरा तो रबरका जूता नीचेसे पैर जलाये देता था, कान बँधे होने पर भी गरम लू के थेपेड़े तेल निकाले देते थे और शरीर मानों झुलसा जाता था। किन्तु चादरा लपेटकर बगल में लगाये हुए नग्न शरीर जहाँके तहाँ बालू रेत पर खड़े हुए आप निश्चल भावसे बोले, 'बेटा! सवारीपर बैठनेका नियम नहीं है।'

मैं अज्ञानी जीव क्या समझता महापुरुषों की शक्तिको। अतः अपने बालचापल्यसे कह उठा, महाराजजी! आपत्तिकाले मर्यादा.. ..।'बस, बात पूरी कह भी न पाया था कि बीच ही में आप हँसते हुए बोले, बेटा! यह व्यवस्था तो गृहस्थों के लिये ही है।'

तात्पर्य यह कि बहुत आग्रह एवं अनुनय–विनय करने पर भी आप साइकिलपर बैठने के लिये सहमत न हुए। बस, मत्त गजराजकी भाँति तपती हुई बालू पर निर्भीकतासे चलने लगे। मैं भी साथ–साथ मन मानकर चलने लगा तो आपने इहरकर कहा, 'तू साइकिलपर चढ़कर आगे चल, मैं उक्त मन्दिर पर आ रहा हूँ।' प्रेम भरे इन शब्दों ने मेरे ऊपर मानों घड़ों पानी डाल दिया हो। प्रेम सजीवकी भाति छलक रहा था उन शब्दों में और उसने मुझे हठात् साइकिलपर चढ़ा दिया। आप उसी मन्द गति से चलते रहे मानों आज सूर्यनारायणको अपनी सहिष्णुताकी परीक्षा दे रहे थे। हुआ भी यही कि सूर्यनारायणने मुँह की खाई और आप दो ढाई मील की यात्रा करके शिव मन्दिर पहुँचे।

मन्दिरमे उठने–बैठने का कोई साधन था ही नहीं, साथ ही वहाँ कोई व्यक्ति भी नहीं था, जिससे कुछ बिछानेका सुभीता बनाया जा सके। अपने राम तो पूरे बाबू ठहरे। पैंटबाजोंके पास एक रूमाल के अतिरिक्त और होता ही क्या है ? अतः संकोच था कि श्रीबाबाको कहाँ बैठाया जाय। तबतक आप आकर मन्दिरके बरांडेमें बैठ गये।

"आप यहाँ शहर से इतनी दूर क्यों आ गये ?" झिझकके साथ मैंने पूछा।

"मैं जब भी आता हूँ यहीं रहता हूँ" सहज मुस्कान के साथ आपने कहा।

"तो अब क्या प्रबन्ध होना चाहिये ?" मैंने प्रार्थना की।

"बैठ जा, विश्राम कर, सब कुछ आप ही हो जायगा" आपने उत्तर दिया।

कितना आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय था इन शब्दोंमें। सोचने लगा यहाँ जनशून्य स्थान पर अपने आप क्या होगा ? यह कैसी अनोखी बात है ? ऐसा विचारकर मैं चलनेको उद्यत हुआ कि प्रेमियों को संदेशा दूँ, परन्तु आपने रोक लिया। थोड़ी ही देर में देखा कि समीपस्थ जोन्स मिल–कालोनी के कुछ व्यक्ति शरबत–बरफ आदि लिये आ रहे हैं। अवाक् रह गया मैं यह चमत्कार देखकर। रात को मैंने प्रार्थना की, भगवन् ! कल प्रसाद मेरी झोंपड़ीपर ही करें।' सुनकर एक मिनट मौनके पश्चात् आपने कहा, 'थोड़ी खिचड़ी बना लेना, मैं स्वयं ही आ जाऊँगा, बुलाने के लिये भी मत आना।'

क्या रहस्य है इस बात में मैं सोचने लगा। तभी आप उठकर चल पड़े और अलग बुलाकर कहा, 'आदमी बहुत हैं, प्रबन्ध बहुत करना पड़ेगा। किससे ना की जायगी और किसे साथ लेना होगा ? फिर तुझे तो कल जाना भी है न ?

वास्तवमें मुझे बीकानेर जाना था और उसी दिन—ऐसा पहलेसे निश्चित था। परन्तु यह पता कैसे लगा बाबाको ? मेरे लिये तो यह बड़े चमत्कारकी बात थी। परन्तु इससे भी बड़ी बात तो रातको देखने में आयी। सहतावाले प्रेमी रातको ३–४ सेर पूरियाँ लेकर आये और खानेवाले तबतक हो चुके थे पचास साठ। सभीको संकोच होने लगा कि कैसे बात बनेगी ? रातके साढ़े दस बज चुके थे। बाजार सब बन्द हो गये, अब कहाँ क्या मिलेगा। श्रीबाबाने एकबार कपड़ा उठकार पूरियों कों देखा और बाँटना प्रारम्भ कर दिया—एक—एकको आठ—आठके हिसाब से। मैं यह देख रहा था कि अब बात कैसे बनेगी ? परन्तु उस महापुरुषकी सिद्धिका अनुमान मिला तब जब पूरियाँ सभी को मिलीं और कुछ बच भी रहीं। तभी किसीके मुँहसे निकला कि इस समय यदि दूध होता तो मौज बन जाती। श्रीबाबाजीने कहा, संसार में कोई बात असंम्भव नहीं है।' सभीने देखा कि उस घोर अँधेरी रात में दो व्यक्ति प्रायः बीस सेर दूध लेकर पहुँचे। सम्भवतः सत्यसंकल्पवान् महापुरुषों के लिये ही श्रीगोस्वामीजीने यह चौपाई कही है—

जो इच्छा करि हौ मन माहीं। प्रभु प्रताप दुर्लभ कछु नाहीं।।

सफल वरदान

वाणी फलवती होती है, पर सर्वसाधारणकी नहीं। संयमी महापुरुषोंका ही ऐसा प्रभाव होता है, जिनका प्रत्येक इन्द्रियपर नियन्त्रण और आधिपत्य होता है। यह चमत्कार एक दिन मेरे देखने में आया। पूज्य श्रीमहाराजजी वृन्दावन आश्रमकी अपनी कुटिया में विराजमान थे। ज्वरका आक्रमण था और शरीरसे आग की लपटें सी निकल रही थीं। परन्तु फिर भी आप प्रसन्न बदन और निश्चल भावसे बैठे थे। न जाने कैसे आज आपको भक्तोंने

अकेला रहने दिया था: नहीं तो सदैव भीड़ साथ ही लगी रहती थी। क्षणभरको विश्रामतक नहीं लेने देते थे लोग। आपको कुछ विश्राम मिले—इसका ध्यान तो दो–चार भक्तोंको ही था। परन्तु उन बेचारों की चलती कब थी? श्रीबाबाजीका तो लक्ष्य ही जनसेवाके रूपमें जनार्दनकी सेवा थी। विश्रामके लिये प्रार्थना करनेपर कई बार आपको यह कहते सुना कि भैया! संसार दु:खों की भट्ठी में जल रहा है, हनुमानजीको भला कब चैन मिला? देखो, रामायणमें उन्होंने कहा है न—

''राम काज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम।'

हाँ तो, उस समय ज्वराक्रान्त होते हुए भी किसी प्रकार आप ध्यानावस्थित बैठे हुए थे। मैं भी धीरेसे कुटियाके किवाड़ खोलकर चौकीके पास जा बैठा। उसी समय न जाने कहाँ से बाजकी भाँति एक महिला, जिसकी आयु प्राय: पैंतालीस वर्ष होगी, अकस्मात् आ अूटी और श्रीबाबाजीका ध्यान भंग करती कुछ कहने लगी, जिसे किसी भावावेशके कारण मैं समझ नहीं सका। परन्तु अपने भोले बाबाके मुखसे इतना अवश्य 'सुना, चिन्ता न कर बेटा, तेरी इच्छा पूरी होगी।' इसका क्या तात्पर्य था सो तो वे जाने या वह देवी, मेरे लिये तो वह देवी भी अपरिचित थी।

वास्तवमें यह उसी प्रकार का मूक वरदान था जैसा कि जनकपुर में श्रीविश्वामित्रजीने पुष्पवाटिकासे लौटनेपर श्रीरामचन्दजीसे कहा था—सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे' और उन्हें उसके फलस्वरूप जगदम्बा श्रीजानकीजी प्राप्त हुई थीं। पाठक सोचेंगे कि उस महिलाको क्या मिला। यह बात मुझे भी तब मालूम हुई जब श्रीमहाराजजी के ब्रह्मलीन होने पर एक दिन अलीगढ़ स्टेशनपर सहसा वह देवी मिली

और उसने मुझे पहचानते हुए आँसू भरी आँखोंसे देखते हुए कहा—बिरमचारीजी ! बाबाके बरदानतें गोद में डेढ़ बरस को छोरा ऐ। मैंने बड़े ऐलाज करवाये पर काऊ ते कुछ नाईं भयौ। वा दिन तुमऊँ बैठे हते जब बाबा ने असीस दीनी हती। विनईके पत्तापत्ते मेरी सूनी गोद भरी ऐ। परि हूँ तो ऐसी अभागिनी ऊँ कि फेरि पल्टिके दरसन ऊँ कि फेरि पल्टिके दरसन ऊँ नाइँ करि सकी।" और इतना कहते–कहते वह चीख मारकर रो पड़ी।

उस भोली भाली ग्रामीण महिलाके उपर्युक्त विशुद्ध और निष्कपट शब्दोंने मुझे गहरे विचारोंमें डाल दिया कि सचमुचही लोग उन महापुरुषके पास भोजन भण्डारोंमें ही अपना समय व्यतीत करते रहे, उनसे जितना लाभ उठाना चाहिये था वह तो किसी एक आधने ही उठा पाया होगा। उठाते भी तो कैसे। जब भगवान् श्रीकृष्णको भी उनके अवतारकालमें किन्हीं–किन्हीं ने ही समझ पाया था तो इन्हें समझ लेना भी मायाग्रस्त जीवोंके लिये कोई खेल तो नहीं था।

जी चाहता है कि उनकी सारी घटनाएँ और जीवनलीलाएँ जहाँ तक मेरे निजी अनुभव में आयी हैं लिखूँ पर समयाभावसे बहुत संक्षेप में ही लिख सका हूँ। अपने सम्बन्ध में तो मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि पूज्य बाबाका वरदान ही मेरे–जैसे क्षुद्र प्राणीको उल्लास उत्साह और कार्यक्षेत्रमें साहसके शिखरपर पहुँचा रहा है। मैं तो सर्वदा उनकी अहेतुकी कृपाका अभारी रहूँगा। अब उनकी कुछ विशेषताओंका उल्लेख करके मैं इस लेखको समाप्त करूँगा।

सत्संग

जहाँतक त्याग और वैराग्यका सम्बन्ध है उसके साथ सत्संग भी एक आवश्यक अंग समझा जाता है। यद्यपि इनका परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध है, तथापि अधिकांश विरक्तों के यहाँ सत्संगकी

बहुत कमी देखी जाती है। परन्तु श्रीमहाराजजीके साथ सत्संग प्रायः दैनिक चर्याका अनिवार्य अंग था। श्रीवृन्दाबनमें तो यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी कि यदि किसीको सत्संगकी आवश्यकता है तो उसका पूरा लाभ श्रीउड़िया बाबाजीके आश्रमपर ही मिल सकता है। वहाँ सबेरे ३ बजे से लेकर रातको ११ बजेतक अनवरत सत्संगका क्रम चलता ही रहता। निराकारवादियों को यदि ब्रह्मविचारका पूरा-पूरा अवसर प्राप्त था तो साकारोपासकों को भी कथा, कीर्तनके साथ-साथ रासरसिकेश्वर श्रीश्यामसुन्दरकी हृदय-हारिणी अनुपम लीलाएँ, भक्तजनोंके मधुमय चरित्रोंके अभिनय और प्रेमी भक्तों द्वारा उपदेशप्रद प्रहसन भी देखने को मिलते थे। ऐसा तो आज भी प्रसिद्ध है कि रासलीलाकी मर्यादाका जैसा निर्वाह श्रीउड़िया बबाजीके आश्रमपर होता है वैसा अन्यत्र नहीं देखा जाता।

पूज्य बाबा इन सभी कार्यक्रमोंमें स्वयं उपस्थित रहते थे। उनके अन्तरंग भक्त भी आजतक यह भेद नहीं जान सके कि बाबा शैव थे, शाक्त थे, रामोपासक थे अथवा वेदान्ती। संकीर्तन होता तो प्रेमसमाधिकी मुद्रा में खड़े रहते, रासमण्डपमें विराजते तो उसका पूरा-पूरा रसास्वादन करते दिखायी देते, कथा-वार्ता चलती तो उसके प्रधान श्रोताके रूपमें भी आप ही दिखायी देते तथा भक्तजन प्रहसनादिका अनुकरण करते तो सर्वसाधरणकी तरह हँसते, प्रसन्न होते और मनोविनोदका भाव दर्शाते। जब कभी ब्रह्मचर्चा चलती तो आपके मनोभावों से पता चलता कि आप मानों मूर्तिमती ब्रह्मनिष्ठा ही हैं। प्रसंगवश आपके श्रीमुखसे कई बार सुना कि संसार क्षणभरमें नष्ट हो जाय तो में क्या और यदि यह सृष्टि सौ गुनी बढ़ जाय तो इससे हमारा क्या वास्ता?

इन भावों और विचारोंसे आपके अन्तरतमका कुछ अभास प्राप्त होता है। कितना अच्छा क्रम था वह। साकारोपासकों आप को निर्गुण ब्रह्मकी चर्चाकी चर्चा से सदैव दूर रखते थे। उनकी साकारनिष्ठाको पुष्ट करनेके लिये कह देते थे कि निराकार उपासना तो भूसी कूटने के समान है,उसमें मिलता ही क्या है? उधर निराकारवादियों का सत्संग चलता तो उस निष्ठाकी ही उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते। इस प्रकार दोनों मार्गोंके पथिकों को अपनी–अपनी निष्ठामें सुदृढ़ रहनेका ही उपदेश आप देते थे। अन्य महापुरुषोंकी भाँति अपने विचारों को दूसरोंपर लादना मानों आपने सीखा ही नहीं था। आप सर्वसाधारणके सामने योगवासिष्ठ आदि वेदान्त ग्रन्थों का प्रवचन करना उचित नहीं समझते थे। आपके यहाँ सर्वदा गीता रामायण, भागवत एवं भक्तमाल आदि सार्वदैशिक ग्रन्थोंकी ही कथाएँ हुआ करती थीं। उस समय कितना भला प्रतीतत होता था जब आप किसी भी कथावाचककी कथा सुनते–सुनते प्रसन्न होते थे। तब तो श्रीरामचरितमानस की यह चौपाई सामने उतर आती थी–

'सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं।'

मर्य्यादा-पालन

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब किसी मनुष्य का सम्मान बढ़ता है और वह समाज में आदर पाने लगता है तो वह अमर्थ्या दित–सा हो जाता है। परन्तु आप तो सम्मानकी सर्वोच्च सीढ़ी पर चढ़कर भी लोक तथा शास्त्रमर्यादा का पूर्णतया पालन करते रहे। वर्णाश्रम व्यवस्थाकी शास्त्रीयमर्य्यादा का पूर्णतया पालन करते रहे। श्रीरामचरितमानसकी 'पूजिय विप्र शील गुण हीना' इस चौपाई को भी मानो आपने कभी नहीं भुलाया। समाज की नवीन प्रणाली प्रचलित करने वाले प्रचारक, उपदेशक कथावाचक और नेताओंसे आप प्रायः कभी सहमत नहीं हुए। आपका यह

भी निश्चित सिद्धान्त था कि जिसने स्वयं अपने को कर्त्तव्य एवं धर्मकी कसौटीपर नहीं कसा उसे उपदेश देने का अधिकार नहीं है। धनोपार्जन करनेवाले नवयस्क उपदेशक और उपदेशिकाओं के प्रवचनोंपर आपकी अभिरुचि नहीं थी। मुझे अपना निजी अनुभव है कि में स्वयं जब ऐसे ही गुटमें मिल ज़ाने से बहुत दिनोंतक नवीन प्रवाह में पड़कर नेतागीरी का दम भरने लगा था तब कासंगजके उत्सवमें जो आपके ही तत्त्वावधान में हो रहा था, उपदेशककीहै सियतसे उपस्थित होने पर आपने प्रेमपूर्ण शब्दों में सभी भक्तपरिकर के सामने कहा था अब यह भी सिद्ध हो गया है। वास्तव में ये शब्द मेरे सुधार के लिये साङ्केतिक सूत्र ही थे। लोगों पर इनका क्या प्रभाव पड़ा—यह तो मैं नहीं कह सकता परन्तु मुझपर तो न जाने कितने घड़े जल पड़ गया। मेरी सारी अहंभावना कलई की भाँति उतर गयी। आज भी वे शब्द मेरे कानों में ज्योंके त्यों गूँज रहे हैं। उन शब्दों ने मेरा कितना उपकार किया है यह तो मैं ही जानता हूँ। "सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात्" का इससे सुन्दर और क्या प्रमाण हो सकता है।

ब्राह्मणको ब्राह्मणोचित धर्मसे च्युत होते देखकर आपको उतना ही क्षोभ होता था जैसे अन्य किसी वर्णके व्यक्तिको कर्त्तव्यच्युत हुआ देखकर । आपका कहना था कि ब्राह्मण यदि अपने सत्यं रूपमें ब्राह्मण हो जाय तो अन्य सभी वर्ण स्वतः सँभल सकते हैं जिसका मस्तिष्क ही बिगड़ जाय उस शरीरका क्या ठिकाना ? जब समाज का सिर ब्राह्मण ही काम—क्रोधादिके बन्धनमें बँध गया तो समाज किस प्रकार सुस्थिर रह सकेगा।

लोकमर्यादामें आपके विचार से ब्रह्मचर्यका सर्वप्रथम स्थान था। आपका सिद्धान्त ब्रह्मचर्य ही जीवन है। नष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करके आपने दिखा दिया कि इसमें कितनी शक्ति है।

निर्वाण होनेके पश्चात् भी ब्रह्मचर्यका तेज आपके मुखपरसे फूटकर दर्शकोंको आश्चर्यचकित कर रहा था। जीवनकालमें आपके नेत्रोंमें वह अद्भुत आकर्षण और मादकता थी जो देखते ही बनती थी। अशास्त्रीय या वेदविरुद्ध आचरण आप एक क्षणके लिये भी सहन करने को तैयार नहीं थे।

आपको हर किसीका संन्यास ले लेना भी रुचिकर नहीं था। एक बार फर्रुखाबादमें श्रीगंगाजीके पावन तटपर किसी सुधारवादी महाशयने आपसे प्रश्न किया 'क्या वर्तमान युगमें साधुओंकी संख्या में वृद्धि करना उचित है?' इसी प्रकार के उन्होंने कई प्रगतिशील प्रश्न ण्कके पश्चात एक उपस्थित कर दिये। जब उनके प्रश्न समाप्त हो गये तब आप मन्द–स्मितपूर्वक बोले, भैया! अब कुछ और तो पूछना नहीं है? सुनों, मैं अपना मत तो क्या कहूँ, परन्तु समय बताता है कि आज साधुओं के लिये युग नहीं रहा, इसीलिये मैं किसीको भी साधु होने के लिये नहीं कहता।' वास्तवमें बात भी एसी थी। अपने जीवनमें आपने किसी को भी संन्यास दीक्षा नहीं दी।

स्वदेशप्रेम

सामान्यतया साधु समाज स्वदेश के स्वातन्त्र्य संग्राम में यद्यपि तटस्थ ही रहा है तथा स्वदेशप्रेमकी भी उसमें कमी ही है, तथापि पूज्य श्रीबाबा का तो हृदय ही नहीं, रोम–रोम स्वदेश प्रेम से ओत–प्रोत था। वे संसारत्यागी संन्यासी थे, अतः अपने आश्रमधर्मका निर्वाह करते हुए यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे उन्होंने राजनीतिक गति विधियों मं विशेषभाग नहीं लिया तथापि अनेकों कार्यकर्ताओं को अपने देश की दासताके बन्धनों को तोड़ने वाले कार्योंमें उनसे कितना सहयोग और कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई थी–यह कहना कठिन है।

देश में हाथ–कते और हाथ–बुने खादी का प्रचार तो बहुत पीछे आरम्भ हुआ था, तथापि यह बात तो सभीपर प्रकट है कि आप तो पहलेसे ही विशुद्ध खादीका ही प्रयोग करते थे और अपनें संसर्गमें आनेवाले लोगोंको भी इसके लिये प्रेरित करतेथे जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ तब तक आपका यह नियम प्रायः अक्षुण्ण ही रहा। स्वयं मुझे भी जब मैं पहली बार आपके दर्शनोंके के लिये गया था, आपने बलपूर्वक खादीका प्रयोग करनेके लिये वचनबद्ध कर लिया था।

स्वतन्त्रता–आन्दोलनका दूसरा कार्य था मादकद्रव्यनिषेध। यह कार्य भी आपने आन्दोलनके आरम्भसे पूर्व ही आरम्भ कर दिया था। चर्स अफीम, शराब–जैसी चीजों की तो बात ही क्या आप तो तम्बाकू के सेवन का भी प्रबल निषेध करते थे। इस प्रकारके दुर्व्यस्सनमें ग्रस्त कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार आपके स्थानपर नहीं ठहर सकता था। यही नहीं जो व्यक्ति किसी भी रूप में तम्बाकू का सेवन करता था वह आपके शरीर को स्पर्श भी नहीं कर सकता था।

मुझे यह कहते हुए गर्व होता है कि स्वतन्त्रता–आन्दोलनके युग में मैंने जब–जब भी आपसे उस विषयमें काई चर्चा चलाई तब–तब यही देखा कि आपके हृदयसे स्वराष्ट्र प्रेम छलका पड़ता है। कारागार–सेवन ही तो राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग नहीं था, इसके साथ और भी ऐसी बहुत सी बातें थीं, जिनसे स्वराज्य प्राप्त हो सका। आप अपने प्रेमियों से स्वराज्य के लिये प्रातः सायं भगवान्‌से प्रार्थना करनेका आग्रह करते थे और मैंने कई बार देखा कि आप स्वयं ब्रह्मचिन्तन की भाँति दीन हीन एवं दासताके बन्धनोंमें बँधे हुए देशको स्वराज्य मिलने का भी चिन्तन करते रहते थे। राष्ट्रनिर्माता नेताओं के प्रति भी आप के हृदय में अत्यन्त आदर और प्रेम देखा गया

था। पूँजीवादको आप देशके लिये घातक मानते थे। जब–जब इस प्रकारकी चर्चा चलती तब–तब आप भारत में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का साम्यवाद देखने की इच्छा प्रकट किया करते थे। श्रीरामचरितमानसके उद्वाहरण देते हुए आप कहा करते थे–"कितना सुन्दर था भगवान् रामका सामरूवाद जहाँ 'वैर न कर काहू सन कोई' अथवा 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती।'' अतः स्वराज्य–संग्राममें आपने मन, वाणी और कर्मसे कितना सहयोग दिया– यह कोई कहने की बात है।

निस्पृहता और अपरिग्रह

स्पृहा तथा परिग्रह मनुष्यके स्वभाव में होती ही हैं। परन्तु मुक्ति और विरक्तिके मार्गमें तो ये अत्यन्त निषिद्ध मानी गयी हैं। तथापि मानव में स्वभावसुलभ होनेके कारण विरक्त जीवन स्वीकार कर लेने पर भी अनेकों महानुभावोंमें ये न्यूनाधिक रूपमें पायी ही जाती हैं। बड़े–बड़े विरक्तों को आश्रमकी एक–एक ईट और स्थानकी प्रत्येक वस्तु से प्राणीके समान मोह होता देखा गया है। परन्तु आपके हृदयमें आराम या आश्रमकी किसी वस्तुके लिये कभी कोई स्थान नहीं हुआ। इस सम्बन्धमें यों तो आपके जीवन की अनेकों घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, तथपि यहाँ केवल दो प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है, जो स्वयं मेरे सामनेकी घटनाएँ हैं।

वर्षाकाल आनेवाला था ग्रीष्म आगे आनेवाले समयको चार्ज सँभलवा रहा था आश्रमपर केवल चार–पाँच व्यक्ति ही रह गये थे। खेती–बारी, रोग–बीमारी आदि कारणों ने सभी लोगोंको अपने–अपने घर जानेके लिये विवश कर दिया था। भाग्यवश कई मासके पश्चात् एक दिनका समय निकालकर मैं भी वहाँ जा पहुँचा। मैंने देखा, एक

वृद्धा जिसे मैं नहीं जानता, श्रीबाबाजी के समक्ष अश्रुपात करती निवेदन कर रही है– आप आज्ञा दें तो मैं रास और कीर्तनके स्थान पर छप्पर हटवाकर विशाल मण्डप बनवा दूँ।' इसपर बाबा केवल इतना कहकर मौन हो गये कि मैं अपने मुँहसे क्यों कहूँ, मुझे क्या आवश्यकता है ? तब वृद्धाने कहा, "मैं बीस हजार के नोट साथ लायी हूँ ये आपके अर्पण हैं, आप इन्हें स्वीकार कर लें" तब आपकी निःस्पृहता और निष्किञ्चनता का निखार इन शब्दों में प्रकट हुआ– 'हम साधु हैं, हमें तो दो माधूकरीमात्र चाहिये। इन कागजके टुकों को उन्हें दो जिनके दुधमुहे नन्हें–नन्हें बच्चे दवा–दारू के लिये तड़प रहे हैं" इतना कहते कहते स्वाभाविक ही नेत्र बंद कर माधिस्थ हो गये और तबतक नेत्र नहीं खाले जबतक वह वृद्धा नोटों की थैली उठाकर आश्रमसे चली न गयी। दूसरी घटना तो स्वयं मेरे से ही सम्बन्ध रखती है। एक बार मैं एक दानी सज्जनको साथ लेकर उसका धन किसी पुण्य कार्यमें लगवा देनेके लिये पूज्य श्रीबाबाजीकी सेवा में गया था। आप उस समय वृन्दावन–आश्रमकी कुटियाके नीचेवाली गुफा में विराजमान थे। मैंने बड़े संकोच से वहीं बड़ी धनराशि, जिससे सौ व्यक्तियोंका बड़े आनन्द से एक वर्षतक निर्वाह हो सकता था, स्वीकार करने के लिये अत्यन्त आग्रह किया। परन्तु आपने तो उस धन से हाथ तक नहीं लगाया। तब विवश होकर मैंने एक युक्ति प्रस्तुत की कि आप आश्रम में एक बड़ा पुस्तकालय खुलवा दें, जो संसारका सबसे बड़ा पुस्तकालय हो और उसमें यह धन तथा अपने अन्यान्य धनी भक्तों द्वारा धन लगवा दें। वह सदाके लिये आपकी पुण्य स्मृति के रूप में रहेगा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह धन और यह प्रस्ताव दोनों ही को अस्वीकार

करते हुए आपने कहा" बेटा साधुओंको स्मृति नहीं चाहिये। भला, जो जीवित ही शिव और शव हो गया उसकी स्मृति क्या बनेगी।

ऐसी–ऐसी अनेकों घटनाएँ आपकी स्मृतिरूपसे आपके भक्तोंके हृदयमें रखी होंगी, जिन्हें संस्मरणोंके रूपमें श्रद्धाञ्जलिकी भाँति भेट करके वे पुण्य के भागी बनेंगे। मैं तो संक्षेप में इतना ही कह सकता हूँ कि आपमें धर्म, नीति व्यवहारकौशल आदि सभी गुण विद्यमान थे। आपको अपने–अपने दृष्टिकोणसे सभी ने देखा और समंझा, परन्तु भाग्यवान् तो वे ही कुछ व्यक्ति हैं जिन्होंने आपसे जीवनका वास्तविक लाभ उठाया और यह–

'जिन्ह खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि

आप सदैव यह कहते सुने जाते थे कि लोग वास्वतमें जीवन का उद्देश्य क्या है–यह न समझकर खाने, पहनने, लड़ाई, झगड़े और रागद्वेषादिमें ही इस अमूल्य मानवजीवनको नष्ट कर रहे हैं। हुआ भी ऐसा ही। आपके जीवनकालमें बहुत कम व्यक्तियोंने आपको समझा और जिन्होंने समझा वे ही कुछ पा सके।

अन्त में चिरऋणी भाँति भावमयी श्रद्धाञ्जलिके साथ इस संक्षिप्त लेखकों समाप्त करता हूँ।



पं० श्रीअमृतरामजी शास्त्री, वेदतीर्थ
नरौरा (बुलन्दशहर)

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्वमसीति वेदबचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणान्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पूज्यपाद श्रीमहाराजी से मेरा सम्बन्ध, मैंने जबसे होश संभाला तभीसे रहा। मेरे पूज्य पिता पं० श्रीशालग्रामजी उनके अनन्य भक्त और सेवक थे। वे कहा करते थे कि मैं श्रीमहाराजजीकी आज्ञासे ही अपनी जन्मभूमि छोड़कर गंगातटपर नरौरामें आया था और उन्होंने मेरे द्वारा अग्न्याधान कराया था उसके एक वर्ष पश्चात् तेरा जन्म हुआ।

इस प्रकार जीवनके आरम्भसे ही श्रीचरणों की मुझपर अटूट अनुकम्पा थी। अपने अबोध बालककी भाँति वे मुझपर वात्सल्य की वर्षा करते थे। उनके स्नेह सलिलसे सराबोर होकर मैं सर्वदा निश्चिन्त और निर्भय रहता था। जीवनमें अनेकों बार उन्होंने मेरा पथप्रदर्शन किया और आपत्तियोंसे रक्षा की। इस लेखके क्षुद्र कलेवर में उन सभी घटनाओंका उल्लेख करना तो सम्भव नहीं है, उनमें से कुछ प्रसंग प्रस्तुत करता हूँ–

(१)

एक बार मैं अपनी पूर्वपत्नी और बच्चोंको साथ लेकर श्रीचरणों के दर्शनार्थ कर्णवास को चला। राजघाट के समीप

पहुँचते–पहुँचते सूर्यास्त हो गया। मैं श्रीमहाराजजी के ही अद्‌भुत् चरित्रों की चर्चा करते हुए बेसुध–सा हो रहा था। इतने ही में हमारी बैलगाड़ी का एक पहिया चड़चड़ाहट करता टूट गया। मैंने भूमि पर वस्त्र बिछाकर बच्चोंको बिठा दिया और यह प्रतीक्षा करने लगा कि कोई परिचित व्यक्ति मिले तो उसके द्वारा कर्णवास में अपने सम्बन्धी श्रीभगवानवल्लभजीके पास सूचना भेजकर एक पहिया मँगा लूँ। रात्रिकी दस बजे की गाड़ी से उतरकर कुछ लोग कर्णवास जाते हुए मिले भी। उनसे अपनी बात कही तो वे 'अच्छी बात' कहकर सहानुभूति दिखाते चले गये। परन्तु रात्रिके बारह बजेतक हमें कोई सहायता नहीं मिली। बीहड़ जंगलका स्थान था, चोर–डाकुओंकी भी आशंका थी। परन्तु हो क्या सकता था। हम प्रभुका कीर्तन और श्रीमहाराजजीका चिन्तन करते हुए किसी आकस्मिक सहायताकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

इतने ही में स्टेशन पर एक बजेका घंटा बजा। मैंने देखा सामने से एक आदमी हाथ में लाठी लिये आ रहा है। उसे देख कर मेरा शरीर भयसे सुन्न हो गया। तथापि जैसे–तैसे साहस बटोरकर मैं बैठा रहा। उसने पास आकर पूछा, "तुम लोग कौन हो?" मैं बोला, "मेरा नाम अमृतराम है। नरौरावाले पं० शालग्रामजी अग्निहोत्रीजी मेरे पिताजी हैं। हम श्रीउड़ियाबाबाजी के दर्शनार्थ कर्णवास जा रहे थे, सो गाड़ीका पहिया टूट गया। अब जैसे भी हैं तुम्हारे सामने हैं। अब, आप अपना परिचय दीजिये।" वह बोला, "मैं बिलौना का रहनेवाला धीरजराम हूँ। आज रात अँधेरी होने के कारण कोई मेरी भैंस खोलकर ले गया है। उसे ढूँढ़ते ढूढ़ते मैं यहाँ आ गया। मैं भगवानवल्लभके विवाह में तुम्हारे यहाँ गया था। आप लोग डरें नहीं। पास ही बदरपुर गाँव है। वहाँ चलें, मैं दूसरी बैलगाड़ी दिला दूँगा।" मैंने पत्नी से कहा, 'शान्ति! तुम यहीं बैठो।

मैं बदरपुर से दूसरी बैलगाड़ी ले आऊँ।" किन्तु उस अँधेरी रात्रि में जंगल में अकेले रहने का उसका साहस न हुआ। तब मैंने धीरजराम से कहा, "भाई! आपने इतनी कृपा की है तो आपही किराये पर एक गाड़ी ले आवें ये लोग यहाँ अकेले रहने में भय मानते हैं।"

धीरजराम 'अच्छीबात है' ऐसा कहकर चले गये और थोड़ी ही देर में एक बैलगाड़ी ले आये। उसकी झनझनाहट की आवाज सुनकर ही शान्ति प्रेमविह्वल हो गयी और बोली, "आज तो बाबाने हमारी अच्छी रक्षा की। यदि इस समय धीरजरामकी जगह कोई डाकू ही आ जाता तो क्या बीतती?" बस, गाड़ी आनेपर हमने उसमें अपना सामान रखा और धीरजरामको भी साथ लेकर कर्णवास चले आये। वे भी पूज्य बाबाके एक अनन्य सेवक ही थे। वहाँ बच्चोंको भगवानवल्लभजीके घरपर उतार कर जब गाड़ीवान् को किराया देने लगे तो वह हाथ जोड़कर बोला, "आपने रास्ते में हमें श्रीमहाराजजीकी अनेकों लीलाएँ सुनायीं इससे अधिक और क्या किराया हो सकता है?' मैंने बहुत आग्रह किया, परन्तु वह तो बाबाका बड़ा प्रेमी भक्त था। उसने लेना स्वीकार न किया। अन्तमें उसे सस्नेह विदाकर मैं धीरजरामके सहित कुटियापर पहुँचा।

इन दिनों ग्रीष्मकाल था। श्रीमहाराजजी कुटियाकी छत पर विश्राम करते थे। इस समय रात्रि के तीन बजे थे। तथापि जीनेके किवाड़ खुले हुए थे। हम धीरे से ऊपर चढ़कर चुपचाप बैठ गये। आप समाधिस्थ विराजमान थे। उसी स्थिति में आँखें बन्द किये ही बोले, 'अमृत! तू आ गया? शान्ति आ गयी?' मैंने हाँ श्रीमहाराजजी' कहकर प्रणाम किया। प्रभुने मेरे सिर पर हाथ फेरते हए कहा, बेटा! तेरी गाड़ी का पहिया टूट गया था, सो मैंने धीरजराम को भेजा था, वह मिला होगा?' मैंने कहा, 'हाँ प्रभो! धीरजरामजी मेरे साथ ही आये हैं,

ये बैठे हुए हैं। आप हँसकर बोले, 'मैंने उस दिन पञ्चदशीमेंसे सुनाया था कि एक किसान का अपनी भैंसमें अनुराग था उसीसे उसका मोक्ष हो गया। वह बात तुझे याद है न ?' मैं बोला, 'सरकार ! ये भी भैंस को खोजते हुए ही हमारे पास जा पहुँचे थे।' आपने कहा, 'बेटा ! तभी तो मैं कहता हूँ कि जैसे वह भैंस भैंस रटकर अपने को भैंस ही समझने लगा था उसी प्रकार निरन्तर ब्रह्मचिन्तनसे जीव ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।' इसी प्रकार कुछ देर बातें होती रहीं। फिर मेरे मुँहसे अकस्मात् निकला, 'महाराजजी ! इनका अपनी भैंसमें अनुराग है तभी तो ये अँधेरी रात में उसे ढूँढ़ रहे थे। अब इनकी भैंस मिल जानी चाहिये।' आप बोले, 'धीरजराम ! जा, बेटा ! तेरी भैंस घर पर ही आ जायगी।' इसके पश्चात् धीरजराम अपने घर चले गये।

दूसरे दिन मैं बिलौना गया ओर धीरजरामसे पूछा कि तुम्हारी भैंस मिली या नहीं ? वे बोले, जिसका ऐसा बढ़िया ग्वालिया है कि रात में चरानेको ले जाय उसकी भैंस कहा जा सकती है ?' मैंने कहा, 'भैया ! मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, तुम्हारा क्या आशय है ?' धीरजराम बोले, 'यार ! तुमने अब भी बाबाको नहीं पहचाना। ये ही तो जन्म–जन्मान्तरके ग्वालिया हैं। पहले गायें चराते थे, अब अभ्यासवश भैंस खोलकर ले गये। मुझे घर आते ही भैंस खड़ी मिली है। यदि चोर ले जाता तो घरपर कैसे बाँध जाता।'

वहाँसे मै कर्णवास लौट आया और स्नानादिसे निवृत्त हो पत्नीके सहित प्रभुका पूजन किया। तभी प्रभुने हम दोनों को दीक्षित किया। आपने उपदेश दिया बेटा ! "द्वैतहीमें अद्वैतदर्शनका अभ्यास करो।" हम प्रभुका चरणामृत पान करके पवित्र हो गये हम निश्चिन्त हैं, उन्हीं के हाथ में हमारी डोरी है, अब हमें भवाटवीका भय नही हैं।

(२)

कर्णवासमें श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा था। मैं अन्य विद्यार्थियोंके साथ पक्के घाट पर ठहरा हुआ था। प्रातःकाल चार बजे का समय था। मैंने समझा श्रीमहाराजजीके सत्संगमें पहुँचनेके लिये मुझे विलम्ब हो गया है। अतः मैं काठकी सीढ़ी द्वारा जल्दी–जल्दी छत से उतर रहा था। अकस्मात् मेरा पैर डिग गया और मैं अचेत होकर भूमिपर गिरा। मुझे केवल इतना अनुसन्धान रहा कि गिरते समय मेरे मुख से 'बाबा!' यह शब्द निकला था।

घण्टों पश्चात् मुझे चेत हुआ। परन्तु चोट कहीं नहीं आयी थी। तिमंजिलेसे पक्की भूमिपर गिरा फिर चोट नहीं आयी। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी कहते थे, 'बाबाकी कृपासे ही यह बालक जीवित बचा है। हमने सुना था, गिरते समय इसके मुँह से 'बाबा' शब्द निकला था।' श्रीमहाराजजी बोले, 'बेटा! आधेय आधार[1] पर गिरेगा तो चोट का क्या काम? ब्रह्मचारी ऋषिने कहा, 'बाबा! पृथ्वी ही तो आधेय आधार है और जो ऊपरसे गिरेगा वह भूमिपर ही गिरेगा। उस आधेय आधारके सिवा और कहाँ गिर सकता है?' बाबाने हँसकर कहा, 'यदि पृथ्वीपर गिरता तो चोट न आती? यह तो आधेय आधारपर गिरा था।' प्रभु के ये गूढ़ वचन सुनकर सब भक्त आनन्दमग्न हो गये।

---

१. वह आधार जिसने वास्तवमें सबको धारण किया हुआ है। सम्पूर्ण जगत् का ऐसा आधेय आधार परब्रह्म ही है। श्रीमहाराजजी ब्रह्मस्वरूप ही हैं। अतः उनकी गोद भी हमारा आधेय आधार ही था। उस समय उन्होंने अपनी गोद में धारण करके मेरी प्राणरक्षा की थी। अतः वही मेरा आधेय आधार था।

(३)

ब्रह्मलीन दण्डिस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीका भण्डारा था। पूज्य श्रीमहाराजजी नरवर पधारे थे। मैं वहाँ पढ़ता था। एक दिन कुछ साथियों के सहित मैं श्रीचरणों के दर्शनार्थ गया। आप बोले, बेटा! अपने सहपाठियों से केवल पढ़ने में ही स्पर्धा करनी चाहिये और किसी बात में नहीं। मैंने साधारण सी बात समझकर कहा, 'अच्छा बाबा!' और अपने साथियों के सहित गंगास्नानको चला गया। हम सब गंगाजी में नहाने और तैरने लगे। एक फल बहता जा रहा था। उसे पकड़ने के लिये आपस में होड़ लग गयी। परन्तु वह किसी के हाथ न आया। सब साथी बाँध की टक्कर तक जाकर लौट आये, परन्तु मैं स्पर्धावश बढ़ता ही चला गया। कुछ दूर जानेपर फल पकड़ लिया बेलका फल था अब पीछे मुड़कर देखा तो मालूम हुआ मैं दूर निकल गया। प्रवाह बहुत तीव्र था। साथी शोर मचा रहे थे। कि अमृतराम वह गया। मेरी उस समय जैसी स्थिति थी उसे तो वे ही समझ सकते हैं, जिनपर कभी ऐसी बीती है। जब तैरते–तैरते थक गया तब मुझे बाबाकी याद आयी। मन ही मन प्रार्थना करने लगा, प्रभो! अब तो रक्षा करो, फिर कभी ऐसी स्पर्धा नहीं करूँगा। तुरन्त प्रेरणा हुई कि गंगाजी की थाह तो लो। देखा वह जल कण्ठतक ही था। बस मुझे विश्राम मिल गया और फिर श्रीमहाराजजीकी कृपासे मै पुनः किनारे पर लौट आया।

इस प्रकार उस समय उन्हीं की कृपासे मेरे प्राण बचे।

(४)

श्री चरण कर्णवासमें ही विराजमान थे। मैं भी सपरिवार वहाँ पहुँच गया। पत्नी का पुंसवन संस्कार करना था। कर्म काण्ड में

विहित न्यग्रोधादि औषधियोंको पीसकर रखा। उसी समय पुंसवन के सम्भारमें रखे जलको एक बालक ने गिरा दिया। यह हमारे यहाँ अपशकुन माना जाता है। मैंने पत्नी से कहा, 'वसन्त! अब क्या हो।' वह धैयपूर्वक बोली, आप बाबाके पास जायँ और उनसे इस विषय में परामर्श करें।' मैं सब कर्मकाण्ड अधूरा ही छोड़कर प्रभुके पास पहुँचा। वहाँ संकीर्तन हो रहा था। जब समाप्त हुआ और सब लोग चले गये तो निवेदन करना ही चाहता था कि आप बोले, 'अमृत! वह टोकरी तो ला।' मैं ले आया। उसमें फल थे। सरकारने उसमेंसे एक सेब निकालकर मुझे दिया। मैं समझ गया कि प्रभुने बिना पूछे ही उत्तर दे दिया। उसे प्रसन्नतापूर्वक लेकर चलने लगा तो बोले, 'बेटा! सेबका छिल्का बीज आदि सभी खिला देना।' मैं 'जो आज्ञा' कहकर चल दिया और पत्नी को समूचा सेब खिला दिया। उससे पूर्व मेरे तीन बच्चे परलोकवासी हो चुके थे। किन्तु इस बार गुरुदेव के कृपाप्रसादसे जो बालक हुआ वह अभी तक सकुशल है।

(५)

प्रभु वृन्दावन में विराजमान थे वहाँ आपके तत्त्वावधान में एक सहस्रचण्डी यज्ञ होने वाला था। यजमान स्वयं अपने साथ आचार्य ले आये थे। मैं उस समय नरौरा भागीरथी आश्रम में था। रात्रि के समय स्वप्न में सरकारने दर्शन देकर आज्ञा दी कि बेटा! में तुझसे यज्ञ कराऊँगा और तू यहाँ सो रहा है। मैं प्रातः काल उठते ही वृन्दावन के लिये चल दिया। जब श्री चरणों में पहुँचा तो आप बोले बेटा! यज्ञका आचार्य यद्यपि यजमान अपने साथ ले आया है, तथापि मैं तुझसे ही यज्ञ कराऊँगा।' बस, आपके आदेश से मेरे आचार्यत्व में ही वह यज्ञ निष्पन्न हुआ। इस तुच्छ दास पर ऐसी थी उनकी अहैतुकी कृपा।

(६)

भदान जिला मैनपुरीके रहनेवाले एक सम्बन्धी हैं। उनके लड़के रामसेवक को प्रेतावेश होता था। उसके पितामहही प्रेतयोनिको प्राप्त होकर उसे दबाये रहते थे। अनकों उपचार करनेपर भी उसे प्रेतबाधा से मुक्ति नहीं मिली। एक दिन स्वप्न में श्री महाराजजी ने मुझे आदेश दिया कि तुम इसे श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाओ। प्रयाग में ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी की कुटीपर इस यज्ञ का आयोजन किया गया। उसमें प्रेत की स्थिति के लिये जो यज्ञान्त घट रखा गया था उसे त्रिवेणीमें विसर्जित करने के लिये जब हम ले जा रहे थे तो वह फूट गया और प्रेत पुनः उस बालक में ही आविष्ट हो गया। चारों ओर से कुतूहलवश नौकाएँ इकट्ठी हो गयीं लोग हमारी नावपर टूटे पड़ते थे। बड़ी कठिनतासे हम लौटकर झूसी पहुँचे। रातको श्रीमहाराजजीने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया और बोले बेटा ! इस बालक को मैंने अपनी शरण में ले लिया है। अब इसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' इस बच्चेको दस वर्ष से प्रेत ने दबा रखा था इसकी पागलों की सी दशा थी। किन्तु तबसे यह सर्वथा स्वस्थ है।

ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीने अपनी 'भागवती कथा' में इस प्रेतोद्धारके प्रसंग का वर्णन किया है।

(७)

सं० २००५ कीं चैत्र कृ० १४ को प्रभु स्वरूपस्थ हुए। उनका निर्वाणोत्सव करके मैं लौटा। इन दिनों मैं खुरजामें रहने लगा था। वहाँ एक रात हमारे यहाँ चोरी हो गयी। परन्तु अभी हमें इसका पता नहीं था कि प्रातः काल चार बजेके लगभग मुझसे वसन्तकुमारी ने कहा, 'सुनों आज बाबाने हमारी बड़ी रक्षा की है। मैंने स्वप्न में देखा है कि तीन आदमी हाथ में तलवार लिये घर में घुस आये हैं।

वे आपको मारना चाहते हैं। इसी समय बाबा अपने सिंहासनसे उठकर महाकाली के रूपमें प्रकट हो गये और मुझसे बोले, बेटा! तू डरे मत। इसकी रक्षाका भार तो मेरे ऊपर है।' बस, देखते ही देखते उन्होंने तीनों के गले काट डाले और उन्हें अपनी मुण्डमाला में पिरो लिया।' मैंने कहा, 'वसन्त! इसमें आश्चर्य क्या है, उनकी सर्वदा ही हम पर बड़ी कृपा है।'

फिर देखा तो मालूम हुआ हमारी अनेकों चीजें चली गयीं हैं बसन्त के आभूषण, मेरी डाकखाने की पास बुक तथा कुछ नकद रुपया भी चोरी गया है। पीछे पता लगा कि वे लोग आये तो मारने के ही संकल्प से थे, परन्तु पर्याप्त धन मिल जाने के कारण उसे ही लेकर चले गये। मैंने बसन्तकुमारीसे कहा, 'बाबा तो सभी के हैं। उन्होंने हमारी प्राणरक्षा की और चोरों को धन देकर प्रसन्न कर दिया।'

(८)

एक बार खुरजामें ही मैंने स्वप्नावस्थामें अपने प्रभुजी को शेषशायी विष्णु भगवान् के रूप में देखा। श्रीलक्ष्मीजी तथा अनेकों सुरसुन्दरियाँ उनकी सेवा में संलग्न थीं। कोई पादसंवाहन करती थीं तो कोई चमर–व्यजन आदि डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। एक देवांगना मणिमय पात्र में उनके लिये खीर लायी। आप बोले, 'बेटा! अमृत भूखा है, यह उसीको दे दे।' सखीने वह पात्र मेरे हाथ में दे दिया। मैं बोला, 'प्रभो! मुझे भूख तो अवश्य है, परन्तु मैं यह खीर ग्रहण तभी करूँगा जब आप इसमेंसे भोग लगा लेंगे।' आप बोले, ले आ।' मैंने आपको भोग लगाया और ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि वह खीर मोतियों की है। मैंने कहा, 'भगवन्! दूध में मोती कैसे गल गये?' आपने कहा, यहाँ मोती ही गलते हैं।'

भोग लगने के पश्चात् जब मैं प्रसाद पाने लगा तो खाते–खाते ही मेरा स्वप्न टूट गया। जगनेपर मैं सोचने लगा कि प्रभुके यहाँ मोती गलते हैं–इसका क्या अभिप्राय है। पाँच–सात दिन तक मनन करने पर भी मुझे इस वाक्य का रहस्य समझमें न आया। एक दिन उन्हीं से इसका मर्म समझाने की प्रार्थना करते हुए सो गया। तब स्वप्न में बताया, अमृत ! मोती चिदाभास है और दूध परब्रह्म हैं। परब्रह्ममें चिदाभासका गलना स्वाभाविक ही है।''

(६)

स्वप्न में ही एक बार मैंने देखा कि मैं एक अश्वत्थ (पीपल) वृक्षको डंडासे प्रहार कर रहा हूँ और क्रोधपूर्वक कह रहा हूँ कि तुमने तो कहा है 'अश्वत्थश्चास्मि वृक्षाणाम्' फिर प्रकट क्यों नहीं होते ? इतने ही में उसके पत्रों से एक नील तेज प्रकट हुआ। उसमें षोडशवर्षीय किशोर रूपमें आप दिखायी दिये। किन्तु थे शंकररूपमें। मुझे उसी समय ऐसा भान हुआ कि आपका तो निर्वाण हो चुका है। इस समय स्वप्नावस्था में ही ये दर्शन हो रहे हैं। तब आप बोले, क्या चाहता है ?'

मैं–भगवन् ! आपके बिना हम लोग बहुत दुःखी हो रहे हैं।

महाराजजी–(मुस्कराकर) तुझमें तो मुझे दुःख का लेश भी दिखायी नहीं देता।

मैं–प्रभो ! दृष्ट दुःख निवृत्त नहीं होता।

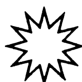
महाराजजी–सहन करनेकी आदत डाल। सब ठीक हो जायगा।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें घटनाओं का उल्लेख करके श्रीचरणों में यह तुच्छ श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ। मैं तो प्रभुजीके निर्वाण के

पश्चात् वृन्दावन आश्रम में आया ही नहीं था——आनेका साहस ही नहीं होता था। एक दिन उन्हींकी अदृष्ट प्रेरणा ने मुझे यहाँ आने के लिये विवश कर दिया। यहाँ श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्दजीने मुझे संस्मरण लिखने की बात सुझाई। बस, जैसी प्रभुकी प्रेरणा हुई टूटे–फूटे शब्दों में गूँथकर यह क्षुद्र पुष्पाञ्जलि प्रस्तुत की है। प्रभु इसे स्वीकार करें और अपनी अविचल भक्ति एवं शाश्वती स्मृति प्रदान कर इस विनीत दासको अपना कृपाभाजन बनाये रहें।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन मे देव प्रीयतां परमेश्वरः।।



श्रीसिंहपालसिंहजी, गाँगनी (एटा)

प्रथम दर्शन

स्वामी मौजानन्दजी एक सिद्ध पुरुष थे। वे श्रीमहाराजजी को ज्ञान का सूर्य कहा करते थे। वे मेरे तथा भाईसाहब दृग पालसिंहजी के यहाँ प्रायः आया करते थे। हम लोग उनमें बहुत आदर बुद्धि रखते थे। उनका शरीर पूरा हो गया था, अतः हम लोग उनका भण्डारा करनेके लिये सोमना गये हुए थे। वहाँका कार्य समाप्त करके कर्णवास पहुँचे। उस समय सेठ गणेशीलालजीका यज्ञ हो रहा था। वहाँ मालूम हुआ कि स्वामी मौजानन्दजीके शरीर छूटने की बात श्रीमहाराजजी ने पहले ही कह दी थी। वहीं मैंने सबसे पहले श्रीमहाराजजी का दर्शन किया।

जलेसरमें

उसके कुछ वर्षोंबाद आप जलेसर पधारे। हमलोग संतों में श्रद्धा भक्ति तो रखते ही थे। मैं और भाई साहब दोनों ही आपके दर्शन करने गये। अवसर पाकर भाई साहबनने प्रार्थना की कि महाराजजी ! हसनगढ़ पधारिये। भाई साहब अब हसनगढ़ ही में रहा करते थे। उनकी बात सुनकर बाबा बोले, नहीं, एक सौ एक बार कहेगा तब चलेंगे।" भाई साहब उसी समय खड़े हो गये और हाथ जोड़कर लगातार अखण्डरूपसे महाराजजी ! हसनगढ़ पधारिये, इस वाक्य को रटने लगे। तब महाराजजी, बोले 'अच्छा, बैठ जा चलेंगे।' उसके पश्चात् हम दोनों अपनेगाँव को लौट आये। यद्यपि उस समय तक श्रीमहाराजजी की ओर मेरा विशेष आकर्षण नहीं था, तथापि उनकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर उसी समयसे थी– ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

हसनगढ़में

तीन–चार दिन बाद किसी कार्यवश मैं भाई साहबके पास हसनगढ़ गया। वहाँ देखा कि बड़ी सजावट और चहल–पहल हो रही है। पूछने पर मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी आ रहे हैं मैं वहाँ सेवा और स्वागत करनेवालों का प्रधान बना दिया गया। समीप आनेपर हम लोगों ने एक–दो फर्लांग आगे जाकर श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया, मालाएँ पहँनायीं और बाजे–गाजे के साथ उन्हें घर लाये। जब आप आसनपर विराज गये तो पूजन–आरती हुई तथा प्रसाद वितरण किया गया।

एक दिन भाई साहबने मेरे विषयमें कहा, 'महाराजजी' यह वेदान्ती है, हम लोगों को बात नहीं करने देता है।' महाराजजी बोले, 'अच्छा, कल सारा समय सिंहपालका है। मैं पाँच मिनटमें इसका सब वेदान्त निकाल दूँगा।' उस समयतक मेरा निश्चय था कि मैं प्रयत्न करके किसी को गुरु नहीं बनाऊँगा। जहाँ स्वाभाविक गुरुभाव होगा, उन्हींको गुरु मानूँगा।

दूसरे दिन जब सत्संग प्रारम्भ हुआ तो बाबा मुझसे बोले, 'अच्छा बता तू कौन है ?' मैंने अपने पुस्तकीय ज्ञानके आधार पर दो–चार बातें कहीं। 'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन बुद्धि नहीं हूँ, इत्यादि। मेरी बातें सुनकर बाबाने कहा, 'पुस्तकीय ज्ञानको ताकपर रख दे। अनुभवकी बात बता।' मुझे अनुभव तो कुछ था नहीं। बहुतेरा जोर मारा, परन्तु अन्तमें बात करना बंद हो गया। मैं झुक गया। हम दोनों भाइयोंने पं० शिवदयालुजी द्वारा महाराजजी से प्रार्थना की कि हमें मन्त्र देने की कृपा करें। इसपर आपने कहा, 'नही अभी नहीं। इन्हें रामघाट लाओ।'

रामघाटमें

चार महीने बाद सन् १९३३ में रामघाटमें गुरुपूर्णिमा हुई। हम दोनों वहाँ पहुँचे। बड़ी भीड़ थी। पूजन का बड़ा भारी समारोह था। तीन–चार बजे तक लगातार पूजन के कारण अवकाश नहीं मिला। हम सोचने लगे कि यहाँ हमारी कौन सुनेगा ? अकस्मात् महाराजजी सबके बीचमें चौकीपर से उठ खड़े हुए और हम दोनों को साथ ले एकान्त में जा विराजे। हमारी पूर्व प्रार्थनाके अनुसार आपने हमें जपके लिये मन्त्र और इष्टदेवका ध्यान बताया। यही श्रीमहाराजजी के प्रति गुरुभावसे हमारी शरणागति हुई।

गाँगनीमें

मेरी और गाँवके सभी लोगों की इच्छा थी कि बाबाको गाँव में बुलाया जाय। कई बार घरपर पधारने के लिये प्रार्थना की गयी। अन्त में आपने स्वीकृति दे दी। मैं तीन–चार महीने साथ ही रहा। रास्ते में भी सत्संग होता चलता था। एक दिन आप मुझसे बोले, 'भैया ! भक्तिमार्ग में हार तो है ही नहीं, जीत ही जीत है। सुख–दुःख तो सभी को आते रहते हैं। परन्तु यदि भगवच्चिन्तन हो रहा है तो अन्त में कल्याण ही है।'

घरपर छोटे भाई बोधपालसिंह ने महाराजजी के स्वागत की सब तैयारी कर ली थी। ध्वजा–पताकाओं से सजावट की गयी थी। घर-घर तैयारियाँ हो रही थीं। समीप पहुँचने पर बाजे-गाजे के साथ पाँवड़े विछाते हुए घरपर ले गये। पूजन-आरती के पश्चात् प्रसाद वितरण हुआ और कविताएँ पढ़ी गयीं। जबतक आप गाँगनीमें विराजे कथा, कीर्तन और संत्संग का अपूर्व समारोह रहा। प्रतिदिन आस-पास के गाँवों से दस-दस हजार नर-नारी दर्शनों के लिये एकत्रित हो जाते थे। उनकी व्यवस्था के लिये

दूर–दूरसे पुलिसमैन बिना बुलाये स्वयं ही आ जाते थे। अवागढ़ से नाजिम आदि राजकर्मचारी भी आते थे। हिन्दू मुसलमान, जैन आदि सभी धर्मों के लोग आते और श्री महाराजजीसे प्रश्नोत्तर करते थे। महाराजजी प्रेमसे सभी को यथोचित उत्तर देकर सन्तुष्ट करते थे। इसी प्रकार कुल पाँच बार आप गाँगनीमें पधारे।

उनकी विशेषताएँ

पूज्य श्रीमहाराजजीकी दृष्टि बहुत पैनी थी। उन्हें किसी भी प्रश्न का उत्तर सोचना नहीं पड़ता था। मैं बीसों वर्षतक उनके निकटसम्पर्क में रहा हूँ, परन्तु मैंने उन्हें क्रोध आते कभी नहीं देखा। उनमें अद्भुत क्षमाशीलता थी। यही नहीं उनका संकल्प भी कभी व्यर्थ नहीं होता था। एक दिन मैं स्नान कर रहा था। अकस्मात् मेरे मनमें महाराजजी की याद आयी और उनके पास चलने की इच्छा होने लगी। धीरे–धीरे वह इच्छा इतनी बढ़ी कि उनके पास जाये बिना मुझे चैन ही नहीं था। जैसे–तैसे वह दिन बिताया और दूसरे दिन प्रातः काल ही मोहनपुर की ओर चल दिया। वहाँ सायंकाल में पहुँचकर दर्शन किया। देखते ही वे कहने लगे, 'अरे सिंहपाल! मैंने कल ही तुम्हें याद किया था।' सारांश यह है कि मैं उनकी संकल्पशक्ति से आकर्षित होकर ही वहाँ पहुँचा था। वे जब किसी को अपने पास आनेके लिये आकर्षित करते थे तो उसे आये बिना चैन नहीं पड़ता था। परन्तु इस रहस्य को शायद ही कोई समझ पाता था।

बाबाका वृक्ष

ग्वालियरकी यात्रासे लौटकर श्रीमहाराजजी गाँगनी पधारे थे। एक दिन प्रातःकाल जब वे शौच से निवृत होकर आये तो मैं ओर लम्बेनारायण जिस स्थान पर उनके हाथ धुला रहे थे। वहाँ खिरनी के पेड़ों की एक पंक्ति थी और एक पुराना वृक्ष उनसे अलग खड़ा था।

उसपर फल कभी नहीं आते थे। हाथ धोते समय श्रीमहाराजजी की दृष्टि उस वृक्षपर गयी। आप इधर–उधर देखकर बोले, 'सिंहपाल। यह वृक्ष महात्मा है, इसे बेचना मत।' मैंने कहा, 'महाराजजी। इसपर फल तो कभी आता नहीं है, बचेंगे कैसे ?' आप बोले, 'नहीं यह महात्मा है। इसे कभी मत बेचना।' मैंने 'अच्छा महाराज।' कहकर स्वीकार कर लिया। उसके दो–तीन महीने बाद ही उस वृक्षपर फल आ गये। तब हमने यह महाराजजीका वृक्ष है' ऐसा मानकर उसके फल लुटा दिये।

अवागढ नरेशके यहाँ

महाराजजी जब पहली बार गाँगनी आये थे तभी अवागढ़के राजा साहबने जिलेदार को उन्हें लाने के लिये भेजा था। परन्तु उस समय आपने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया। दूसरी बार जब आप गढ़िया पधारे तो राजा साहबने ठाकुर भगवान् सिंहको उन्हें आग्रहपूर्वक अवागढ़ लाने के लिये नियुक्त किया। उन्होंने मुझे भी अपने साथ लिया। तब प्रार्थना करते–करते गाँगनीमें आपने अवागढ़ जानेकी स्वीकृति दे दी। प्रायः पचास भक्तोंके साथ आप चिड़रई होते हुए अवागढ़ की ओर चले। समीप पहुँचने पर राजासाहब अपने दरबारियोंके सहित बैंडबाजा लेकर अगवानीके लिये आये। राजा साहब की कोठी से कुछ दूर सत्संगके लिये स्थान बनाया गया था। वहीं राजपरिवारके सहित राजासाहबने महाराजजीको मालाएँ पहनायीं। उस समय वहाँ प्रायः एक हजार आदमियों की भीड़ थी। उन सभीको राजासाहबकी ओर से चार–चार लड्डू प्रसादमें दिये गये। उसके पश्चात् उन्होंने अपने बगीचेवाली निजी कोठीमें श्रीमहाराजजी को विश्राम कराया।

राजा साहबने दस–बीस दिन पहलेसे ही कुछ प्रश्न छपवाकर जहाँ–तहाँ अपने इष्ट मित्रोंको भेज दिये थे। उनके अनेकों मित्र

इस अवसरपर एकत्रित हुए थे। उनमें प्रधान थे खिमसेपुर के रावसाहब। प्रातः सायं तो हरिनाम–संकीर्तन होता था। दिनके नौ बजेसे राजा साहब की ओर से प्रश्न किये जाते थे, जिन्हें वे प्रायः दूसरे लोगों से ही पुछवाते थे। इस प्रश्नोत्तरमें हिन्दू, मुसलमान और अछूत आदि सभी वर्गोंके लोग सम्मिलित होते थे। मुझे वे सब प्रश्न तो अब स्मरण नहीं हैं परन्तु कुछ अवश्य याद हैं। जैसे–(१) मनुष्योंके ऊपर युगका क्या प्रभाव पड़ता है? (२) जीवको ईश्वर अंश कहा गया है, फिर जीव और ईश्वर में भेद क्या है? इत्यादि। इसी प्रकार मध्यान्होत्तर और रात्रिमें भी सत्संग होता था। तीनों समय राजा साहब स्वयं उपस्थित रहकर सत्संग में सम्मिलित होते थे रात्रि को बारह बजेतक प्रश्नोत्तर होते रहते थे। एक दिन महाराजजी को भगवान् श्रीकृष्णका नाटक भी दिखलाया गया।

राजासाहबकी एक सुव्यवस्थित गौशाला थीं। उसमें अच्छी–अच्छी नस्लके गाय, बैल और बछड़े थे। उनके अलग-अलग नाम थे, जो एक रजिस्टर में लिखे हुए थे। एक दिन राजा साहबने श्रीमहाराजजीको ले जाकर वह गौशाला दिखालायी। महाराजजी जबतक अवागढ़में रहे राजा साहब ने उनकी सेवा, सत्कारका बड़ा सुन्दर प्रबन्ध रखा। पच्चीस नौकर काम करने के लिये जहाँ–तहाँ नियुक्त थे। वे ही सबको स्नान कराते और भोजनादिका व्यवस्था करते थे। राजा साहब स्वयं सबकी देख–भाल रखते थे। इस प्रकार प्रायः दस दिन ठहरकर श्रीमहाराजजी ने प्रस्थान किया। उस समय राजा सहब अपनी मित्र मण्डली सहित दो–ढाई मीलतक उन्हें पहुँचाने के लिये गये।



श्रीचन्द्रपालसिंहजी बैरिस्टर, ग्वालियर

आपने मुझे पूज्यपाद श्री १००८ श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके विषय में अपने निजके कुछ अनुभव प्रकट करने का जो सौभाग्य प्रदान किया है उसके लिये अनेक धन्यवाद। उन महान् आत्माके लिये जो कुछ भी लिखा जाय थोड़ा ही रहेगा। मैं तो केवल एक–दो घटनाओं का ही उल्लेख करना उचित समझता हूँ। यथार्थ बात यह है कि श्रीस्वामजी के उज्जवल गुणोंका वर्णन करने की क्षमता ही मुझमें नहीं है। मैं ठहरा इस संसारका एक ज्ञानहीन तुच्छ प्राणी मैं उन महापुरुष की महिमा को कैसे समझ सकता हूँ?

मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनों की अभिलाषा तथा प्रेरणा श्रीमान् चाचाजी श्रीसिंहपालसिंहजी के द्वारा प्राप्त हुई। मैं वलवन्त राजपूत कालेज, आगरामें नवीं कक्षा में पढ़ता था। उन दिनों श्रीमहाराजजी हमारे गाँव गाँगनी में पधारे। अँग्रेजी और विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण स्वभाव से ही मैं विश्लेषणप्रिय था किसीपर एकाएकी विश्वास कर लेना सर्वथा मेरी प्रकृतिके विरुद्ध था। परन्तु श्रीमहाराजजी की भव्य मूर्ति में न जाने कैसा विलक्षण आकर्षण था कि मुझसे केवल उनकी चरणरज लेनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं बना। उस दिनके पश्चात् वह विलक्षण आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

श्रीमहाराजजी का मुझे व्यक्तिगत उपदेश यही था कि सदाचारी बनों तथा मांस, मदिरा और तम्बाकूका कभी सेवन मत करना। मुझे खेद है, श्रीस्वामीजी के आकस्मिक लीलासंवरणकी ठेस ने मुझे छिन्न–भिन्न कर दिया है और मैं उनके आदेशों को प्रायः भूल सा

गया हूँ। उन्हीं के उपदेशानुसार मैं अब भी भगवान् श्री राम की उपासना करता हूँ और प्रभु सर्वदा संकटकाल में मेरी रक्षा करते हैं। मुझे गौरव है कि मैं कमसेकम वचनद्वारा मिथ्या भाषण नहीं करता हूँ।

जून सन् १९४४ ई० में श्रीमहाराजजी पुनः मेरे गाँव में पधारे थे। उस समय मैं बी० एस–सी की परीक्षामें अनुतीर्ण हो गया था। इससे बहुत ही चिन्तित और दुखी था। स्वामीजी महाराज ने मेरे दुख का कारण पूछा तो मेरे से तो कोई उत्तर देते नहीं बना, किसी अन्य सज्जनने बता दिया। इसपर वे बोले, 'तू चिन्तित क्यों होता है? तू फेल भी पास है।' मैं उस समय तो इन शब्दों का कोई अर्थ नही समझ सका; परन्तु जब मैं आगरा गया और जुलाई मास के विश्वविद्यालयकी एक और सूची प्रकाशित हुई तो यह देखकर मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा कि उसमें आगरे से केवल मैं ही उत्तीर्ण हूँ।

उसी अवसर पर श्रीमहाराजजीका मेरे लिये एक यह आशीर्वाद और भी हुआ कि तू अपने पिता से भी कहीं अधिक नाम करेगा इसका परिणाम यह हुआ कि उस वर्ष आगरा विश्वविद्यालयके खेल–कूद में मैं सर्वोपरि रहा, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वर्णपदक तथा कई रजतपदक भी मिले और समाचारपत्रों में मेरी प्रशंसा मेरे चित्र के सहित प्रकाशित की गयी। इस प्रकार खेल–कूद के क्षेत्रमें तो सचमुच ही मैंने अपने पिताजी की अपेक्षा अधिक नाम प्राप्त किया। पीछे उपाधियाँ (डिग्रियाँ) भी मुझे उनसे अधिक ही मिलीं। यहाँ तक कि मैं इंगलैंड भी गया और अभी बैरिस्टरी पास करके लौटा हूँ। यह सब श्रेय मुझे केवल बाबा के शुभाशीर्वाद से ही प्राप्त हुआ है– ऐसी मेरी धारणा है।

---

१. इनके पिता श्रीमहेन्द्रपालसिंह रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर हैं। वर्तमान महारानी ग्वालियर इन्हीं की पुत्री हैं।

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी, अतरौली

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके विषयमें भक्तगण अनेकों चमत्कार पूर्ण घटनाएँ सुनाया करते हैं। मुझे उनका अद्‌भूत चमत्कार देखने की इच्छा कभी नहीं हुई। मेरे लिये तो उनकी अद्‌भुत ब्रह्मनिष्ठा ही सबसे बड़ा चमत्कार थी। तथापि इच्छा न होने पर भी कुछ ऐसे प्रसंग सामने आ ही गये, जिन्हें चमत्कारपूर्ण कहा जा सकता है। उनमें से इस समय जो मुझे स्मरण हैं नीचे लिखता हूँ–

(१)

एकबार श्रीमहाराजजी गड़ियावली पधारे थे। उनके दर्शनार्थ मैं, विश्वम्भरप्रसाद पटवारी और पं० रूपकिशोरजीके पुत्र विश्वनाथ वहाँ गये। उन दिनों पं० विश्वनाथ की पत्नी का देहान्त हो चुका था। रात्रि में जब महाराजजी के पास हम तीन ही व्यक्ति रह गये तो वे विश्वनाथ से बोले, देख अब विवाह मत करना। मैं तुझे बताये देता हूँ। यदि तूने विवाह किया तो तुझे स्त्री बनना पड़ेगा। यह बात अपने पिता से मत कहना। नहीं तो वे मुझे घेरेंगे और फिर मुझे तुझसे कहना पड़ेगा। देख अब तेरे जीवन के केवल तीन साल शेष हैं। तेरे सम्बन्ध बहुत आयेंगे और एक वर्षतक तुझे विवाह करनेकी इच्छा भी बहुत होगी। परन्तु तुम विवाह करना मत।'

महाराजजीकी ये सभी बातें सत्य हुईं। एक वर्ष तक विश्वनाथ ने मुझे बतलाया कि विवाह के लिये मेरी बहुत इच्छा होती है। परन्तु फिर वे कहने लगे कि अब इच्छा नहीं होती। और तीन साल बीतने पर श्रीमहाराजजीके कथानानुसार उनका देहान्त हो गया।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी हरिद्वार पधारे थे। मैं उस समय ऋषिकेश में था। जब मुझे समाचार मिला तो मैं ढूँढ़ता हुआ उनके पास पहुँचा। रातको सात–आठ बजे महाराजजी अलीगढ़ के रहने वाले एक इञ्जीनियर साहब के यहाँ नहरके किनारे पधारे। वहाँ हरिनाम संकीर्तन हुआ। फिर आपने मास्टर मुंशीलालसे कहा, तुम इसी समय अनूपशहर चले जाओ। प्यारेलालसे कहना कि अपना सब सामान बाँट दे और सुन्दरकाण्ड का पाठ करा देना। फिर यहाँ लौट आना।' मुंशीलालजी ने कहा, 'महाराजजी ! आज एकादशी हो गयी। यदि आज्ञा हो तो पूर्णिमाका स्नान करके चला जाऊँ।' महाराजजी बोले, 'अरे ! पूर्णिमातक तो तू यहाँ लौट आवेगा।'

ठीक ऐसा ही हुआ। मुंशीलालजी अनूपशहर गये। उन्होंने प्यारेलालजीको श्रीमहाराजजी का आदेश सुनाया। उन्होंने वैसा ही किया। फिर सुन्दरकाण्डका पाठ कराया गया और उसके समाप्त होते ही उनका शरीर शान्त हो गया। उसके पश्चात् मास्टर मुंशीलालने पूर्णिमा के प्रातः काल हरिद्वार पहुँच कर यह सब समाचार सुनाया।

(३)

रामघाट की बात है। श्रीमहाराजजी के यहाँ एक बृहत् भण्डारा था। पाठशालाके सभी विद्यार्थी निमन्त्रित थे। पशु, पक्षी सबके लिये छुट्टी थी। भूखा कोई न जाने पावे। परन्तु वर्षा होने लगी। पं० रमेशचन्दजी महाराजजी से कहने लगे, यह वर्षा तो तीन दिन तक नहीं खुलेगी। आप सबको कहीं बैठाकर भोजन कराने का प्रबन्ध कीजिये। एक बज चुका है। उनकी बात सुनकर श्रीमहाराजजी सरल भाव से कहने लगे, 'अरे भैया ! तीन दिन तक वर्षा नहीं खुलेगी तो कैसे होगी ? यहाँ इतनी जगह कहाँ है ?" फिर बोले अच्छा, लाओ

झाड़ू लेकर दौड़ झाड़ू।' उधर वर्षा बड़े जोर से हो रही थी। हम लोग सोचने लगे—ऐसी तेज वर्षा में झाड़ने से क्या होगा।' परन्तु आज्ञा थी। पाँच—सात व्यक्ति झाड़ू लेकर दौड़े झाड़ू लगाने के पश्चात् एक दम बादल फट गया और धूप निकल आयी। जब चार घंटेमें सब लोग खा पीकर निश्चिन्त हो गये तो फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी।

(४)

कर्णवास में श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा हो रहा था। बड़े—बड़े महात्मा आये हुए थे। नरवर पाठशालाके सभी अध्यापक और विद्यार्थी उपस्थित थे। पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी भी पधारे थे। महाराजजी श्रीहरिबाबाजीके साथ मिलकर जो हरिनामसंकीर्तन का प्रचार करते थे। इससे पण्डित स्वामीका विरोध था। रात्रिके समय बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी। उस समय पण्डित स्वामीजी ने सबके सामने महाराजजी के लिये अनेकों न कहने योग्य बातें कहीं परन्तु महाराजजी के चित्तपर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। हम लोगोकों क्षुब्ध देखकर आपने अपनी कुटियामें बुला लिया और पूछा, तुम सबने मुझे क्या समझ रखा है।' सब चुप रहे। तब आप बोले, बेटा! इस देहकी तो हम भी निन्दा करते हैं और आत्मा उनकी मेरी एक है यदि वे आत्मा की निन्दा करते हैं तब तो उनकी अपनी ही निन्दा हुई इससे तुम लोगों को क्षुब्ध नहीं होना चाहिये।' इत्यादि।

इस समय जो घंटनाएँ ध्यान में आयीं लिख दी हैं। मेरी दृष्टिमें तो उनकी विलक्षण मस्ती, सबको समान भाव से प्यार करना, पूजा और निन्दा में समान रहना— ये गुण किन्हीं भी चमत्कारों से सहस्र गुना श्रेष्ठ हैं मैं स्वयं श्रीमहाराजजी की ओर आकर्षित नहीं हुआ प्रत्युत उन्होंने ही मुझे खींच लिया था।



श्रीमनमोहनजी, मेरठ

(१)

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
तिनके पद वन्दन किये, नासहिं विघ्न अनेक ।।
राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अगणित नामानी ।।

श्रीमहाराजजीके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। तथापि जिस प्रकार भक्तजन अनेक प्रकार से अपने प्रभुके चरित्रों का वर्णन करते हैं और उससे उन्हें स्वयं ही प्रसन्नता प्राप्त होती है उसी प्रकार मैं भी उनके कुछ गुणगानकी अपने टूटे–फूटे शब्दों में चर्चा करके उनके श्री चरणों में अपनी श्रद्धाके फूल समर्पित करता हूँ।

मैंने सबसे पहले एक पण्डितजीके द्वारा श्रीमहाराजजीका परिचय सुना था। उसके पश्चात् एक ब्रह्मचारीजीने मुझे आपका एक चित्र दिया। उसे देखकर मुझे आपके दर्शनोंकी तीव्र अभिलाषा जाग्रत् हुई। सौभाग्य से जब मुझे आपका दर्शन हुआ तो उसी समय मुझे रोमाञ्च हो आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों साक्षात् भगवान् ही मिल गये। वे दूसरे के मनकी बात जान लेते हैं इस सिद्धिका तो उनमें उसी समय अनुभव हुआ। श्रीमहाराजजी दूसरों के मन की बात जानकर तुरन्त उनका समाधान कर देते थे। वे भक्तोंकी हरेक बातों का अर्थात् दैनिक खर्च, विवाह, स्वास्थ्य,

जीविका तथा भक्ति ज्ञान एवं वैराग्यादिका ध्यान रखते थे। उनकी दृष्टि में अद्‌भुत आकर्षण था। उन्होंने जिसे चाहा वही उनका हो गया। उनकी वाणीमें ओज था। उन्होंने जिससे जो कहा वही हो गया, उनके संकल्प में सामर्थ्य थी; जैसा चाहा उसी समय वैसा हो गया। उनके सामने मनुष्य अपने कृत्योंको छिपा नहीं सक़ता था।

श्रीमहाराजजी भक्तों के मन में शंकाको बढ़ने नहीं देते थे। जहाँ किसी के मन में शंका उठी कि उसके बिना पूछे ही तुरन्त समाधान कर देते थे। एक बार मेरे मन में संसार की उत्पत्तिके विषय में जिज्ञासा हुई। अभी मैंने प्रश्न किया भी नहीं था कि आप बोले, 'संसार है ही कहाँ ?' बस, मेरा समाधान हो गया। महाराजजी कहते थे कि कञ्चन और कामिनीसे छूटना कठिन है, क्योंकि स्त्री और उदरपूर्ति की समस्या प्रत्येक जन्म में सथ रहती है और जिससे अधिक साथ रहता है उससे स्वाभाविक ही मोह बढ़ जाता है। यह मोह निरन्तर भजन और ध्यानसे ही छूट सकता है। 'अधिक से अधिक भजन करो' बस यही उनका उपदेश था। वे अभ्यास और वैराग्यपर ही अधिक जोर देते थे। उनके सम्बन्ध में मेरे मनमें सद्विचारों का उदय हुआ, भजन की प्रेरणा हुई और संसार के मिथ्यात्वका भान हुआ।

(२)

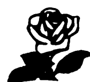
श्रीमहराजजी ने बतलाया था कि एक बार एक जज साहब मेरे पास आये। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। उन्होंने पूछा कि मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था जिससे यह रोग हुआ ? मैंने धीरे से उनके कान में उनका अपराध बता दिया। वे पैरों पर गिर पड़े और बोले, 'महाराजजी ! इस बातको तो मेरी स्त्री भी नहीं जानती।''

(३)

श्रीमहाराजजी कहते थे कि सिद्धि तो चलती–फिरती छाँह है। उनकी यह बात उनके विषय में तो पूर्णतया यथार्थ थी। मुझे एक पण्डितजीने बताया कि वे विद्यार्थी अवस्थामें एक दिन लक्ष्मणझूलाके रास्ते में एक पेड़के नीचे बैठे पाठ याद कर रहे थे। गर्मीकी ऋतु थी। वे भूख से व्याकुल थे। अकस्मात् उस चिल–चिलाती धूप में उन्हें श्रीमहाराजजी नंगे पाँव आते दिखायी दिये। पण्डितजीने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया। महाराजजी ने पूछा, 'विद्यार्थी हो ? भूखे हो क्या ?' पण्डितजीने कहा, 'हाँ !' श्रीमहाराजजी अच्छा कहकर चले गये। थोड़ी ही देर में उनके पीछे एक सेठजी आये। उन्होंने बड़े–बड़े चार लड्डू पण्डितजीको दिये, जिनमें से वे दो भी उस समय नहीं खा सके।

(४)

एक बार मेरी माताजी मेरे बड़े भाई ब्रजमोहनजी के साथ महाराजजीका दर्शन करने गयीं। वे बोलीं, मैं इसी झंझटमें पड़ी रहूँगी या इससे मुक्त करोगे ?' उनका अभिप्राय यह था कि इस ब्रजमोहन का विवाह हो जाय तो अच्छा हो। श्रीमहाराजजी ने कहा अभी दो साल इसका विवाह मत करना।' परन्तु होनहार वश लड़की–लड़केवालों के विशेष आग्रह से विवाह हो गया। उसके एक साल बाद ही भाई साहबकी मृत्यु हो गयी। इससे विश्वास होता है कि उन्हें भविष्यका ज्ञान भी हो जाता था।



श्रीखुशालचन्दजी तुली (पंजाबी बाबू)

शाहदरा-दिल्ली

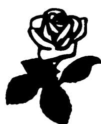
शाहदरे के कुछ भक्तों से श्रीमहाराजजी के गुणोंकी चर्चा सुनकर मुझे उनके दर्शनों की उत्सुकता हुई। उसके कुछ काल पश्चात् हाथरस में मुझे उनके पुनीत दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसी समय श्रद्धासे मेरा हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गया और मैंने उनके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। उस समय श्री महाराजजीने मुझे पहला उपदेश यह दिया कि प्रभुके नामका इतना स्मरण करो कि स्वयं प्रभु बन्द करनेको कहें तो भी तुम उसे छोड़ न सको। मैं दो–तीन दिन उनके पास ठहरा और फिर टिकट लेकर शाहदरे चला आया।

शाहदरा आनेपर उसी रात मुझे पुनः हाथरस जानेकी प्रेरणा हुई। अतः मैं दूसरी बार वहाँ गया इस बार उनकी सन्निधि में मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। आपने मुझे रागद्वेष छोड़कर निरन्तर साधननिष्ठ रहने का उपदेश किया। मैंने जब कोई परमार्थसम्बन्धी प्रश्न किया तो बोले, जो सच्चा शिष्य होता है वह मुझसे कुछ नहीं पूछता। गुरु तो आत्मा हैं, शरीर नहीं। वे शिष्य को वाणी द्वारा बोलकर उपदेश नहीं करते। वे तो उसके हृदयमें प्रवेश करके मूक भाषा में उपदेश कर देते हैं यदि तुम्हारी किसी के प्रति सच्ची श्रद्धा है तो

कभी–कभी उसके दर्शन कर आया करो, उससे वाणीद्वारा कुछ भी पूछो मत। कुछ काल पश्चात् तुम्हारा स्वयं ही समाधान हो जायगा।'

श्रीमहाराजजीको मैं गुरुरूपसे वरण कर चुका था और उन्हें सर्वज्ञ समझता था। आगे चलकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे न कहने पर भी उन्हें मेरी प्रत्येक बातका पता रहता है। मुझे उनमें अनेक प्रकारकी सिद्धियोंका भी अनुभव हुआ। मैं जब कभी दर्शन करने जाता तो मुझे यह नहीं बतलाना पड़ता था कि कितने दिनकी छुट्टी लेकर आया हूँ। मेरे अवकाशके अनुसार वे स्वयं ही ठीक समय पर विदाईका टिकट दे दिया करते थे। एक बार आप कर्णवास में विराजमान थे। हम दो आदमियोंको आपने जाने के लिये जब टिकट दिया तो इतना समय नहीं रहा था कि हम पैदल राजघाट स्टेशनपर पहुँचकर गाड़ी पकड़ सकें। परन्तु हमें विश्वास था कि आपने टिकट दिया है तो गाड़ी अवश्य मिलेगी। ऐसा ही हुआ भी उस दिन गाड़ी लेट थी। हमारे पहुँच जानेपर वह स्टेशनपर आयी।

अब भी मुझे तो उन्हींका सहारा है और वे पूर्ववत् अब भी कृपा करते रहते हैं।



श्रीगुरुदयालजी वैश्य, फरीदाबाद

पूज्य श्रीमहाराजजीके गुणानुवाद यह तुच्छ संसारी जीव क्या लिख सकता है ? वे तो साक्षात् प्रभुके स्वरूप ही थे। उनके गुणों को स्मरण करते समय तो मनमें यही भाव आता है कि 'होहिं कोटिशत सादर शेषा। गनि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा। तथापि अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये, जिस प्रकार श्रीमहाराजजी ने मुझपर अहैतुकी कृपा की, सो लिखता हूँ।

(१)

श्रीमहाराजजी करुणाके समुद्र हैं। उन्हें जो करुणासे पुकारता है उसके लिये तो वे आज भी दूर नहीं हैं। पुरानी बात है, मैं शाहदरा में नौकरी करता था। उस समय श्रीमहाराजजी रामघाट में थे। गुरुपूर्णिमा के चार दिन पूर्व मेरा बड़ा लड़का बीमार पड़ गया। धीरे–धीरे उसकी बीमारी इतनी बढ़ी कि आषाढ़ शु० १३ को उसे घोर सन्निपात हो गया। उसकी नाड़ी भी अत्यन्त मन्द पड़ गयी। वैद्योंने जवाब दे दिया । उस समय मेरे हृदय में ऐसी प्रेरणा हुई कि यदि मैं गुरुपूर्णिमापर रामघाट नहीं पहुँचता हूँ तो लड़का बच नहीं सकता। अतः मैं घरवालों को रोते हुए और लड़के को उसी स्थिति में छोड़कर श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट को चल दिया। राजघाट स्टेशनपर उतरते ही वर्षा आरम्भ हो गयी और मैं नौ मील वर्षा में ही चलकर रामघाट पहुँचा।

रात्रिके दस बज रहे थे। घोर वर्षाके कारण मार्ग भी दीख नहीं रहा था। मैं श्रीसरकारकी कुटीके समीप पहुँचा ही था कि आप खजानची साहबसे कह रहे थे, 'गुरुदयाल अभी नहीं आया। क्या कारण है? उसके यहाँ या तो कोई मर गया है या बीमार है। नहीं तो वह कदापि नहीं रुक सकता था।' उसी समय मैंने पहुँचकर श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। तुरन्त आज्ञा हुई, जा कीर्तनमें।' मैं कीर्तनमें जाकर बैठ गया। दो घंटे तक तो मुझे पता ही नहीं रहा कि मैं कहाँ हूँ। लड़के की बिलकुल याद नहीं आयी। अगले दिन पं० किशोरीलाल जी ने लड़केकी बीमारी का जिक्र किया तो आप प्रसन्नचित्तसे बोले, 'क्या चिन्ता करता है?' इस वाक्य को सुनकर मैं निश्चिन्त हो गया। दो दिन और ठहरकर जब मैं शाहदरा लौटा तो क्या देखता हूँ कि लड़का बाजार में तेल की पकौड़ियाँ खा रहा है। यह सब श्रीसरकारकी ही कृपा थी।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी दिल्ली पधारे थे। प्रायः एक महीना वहाँ निवास करके एक दिन रात्रिमें उठकर चले गये। मैं बहुत ब्याकुल हुआ। उन दिनों मैं रबूपुरामें रहता था। एक दिन मेरे एकप्रेमी आये और बोले, मेरे स्थान (छायसा) में काशीनिवासी पं० देवकीनन्दनजी ठहरे हुए हैं। उन्होंने कहा है कि एक कुटी और बनवाओ। हमारे यहाँ एक सिद्ध महात्मा आनेवाले हैं। कल तुम भी वहाँ आ जाना।' दूसरे दिन प्रातः काल ही मैं वहाँ पहुँचा। जंगल में एकान्त स्थान था। यमुनाजीके किनारे दो कुटियाएँ बनी हुई थीं। कुछ देर बाद देखता हूँ कि दण्डिस्वामी सिद्धेश्वराश्रमजी के साथ श्रीसरकार चले आ रहे हैं। मेरा सब खेद दूर हो गया।

पण्डित देवकीनन्दनजी स्वयंपाकी थे। वे श्रीमहाराजजी को भी अपने हाथसे प्रसाद बनाकर भिक्षा कराते थे। उन्होंने वहीं आपको

श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाया। वे नित्यप्रति प्रातः काल तीन बजे उठ जाते और चार बजेतक स्नानकर फिर सात बजेतक अपना नित्यकृत्य करते। उसके पश्चात् आठ बजे कथा प्रारम्भ करते और मध्याह्नोत्तर दो बजेतक पूरे छः घंटे तक एक स्वरसे कथा सुनाते रहते। उसके पश्चात् प्रसाद सिद्ध करके श्रीमहाराजजी को भिक्षा कराने के अनन्तर स्वयं भोजन करते। इस चर्यासे श्रीमहाराजजी ने वहाँ आठ दिन निवास किया। तब तक मैं भी वहाँ रहकर उनके दर्शन और कथाश्रवण से अपने को कृतार्थ करता रहा।

(३)

श्रीमहाराजजी ने जिस दिन लीलासंवरण किया था उसके दूसरे दिन मुझे समाचार मिला। दुःखसे मेरे प्राण व्याकुल हो उठे और जीवन भाररूप प्रतीत होने लगा। प्रातः काल चार बजेके लगभग मुझे नींद तो नहीं कुछ तन्द्रा–सी थी देखता हूँ कि एक बड़ा सुन्दर पर्वत है। उसके ऊपर एक सुन्दर चट्टानपर श्रीसर कार विराजे हुए हैं। पास ही एक सुन्दर गौ बँधी हुई है। आस–पास झरनोंका कल–कल निनाद सुनायी पड़ रहा है। सरकार प्रसन्नवदनसे कह रहे हैं–"बेटा ! क्यों घबड़ाता है, मैं कहीं दूर नहीं हूँ।"

उनका यह आश्वासन तो अवश्य मिला। परन्तु यह अभागा उनके निकटतक पहुँच नहीं सका। उस दिनसे मुझे ऐसा अनुभव होता है कि सरकार सर्वत्र हैं हमारे दोषोंके कारण ही नेत्रोंसे ओझल हो रहे हैं हृदयकी सच्ची पुकार हो तो वे दूर नहीं सर्वदा समीप ही हैं।



पं० श्रीरविदत्तजी शास्त्री वैद्य, जलेसर

मेरे एक सम्बन्धी पं० रामायणजी उपाध्याय पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबाजी की सिद्धि और चमत्कार आदि की बहुत चर्चा किया करते थे। उनकी बातें सुनकर ही मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजी के दर्शनोंकी लालसा हुई। जब मैं पहली बार श्रीचरणोंमें पहुँचा मेरा हृदय धड़क रहा था। तथापि उसे कुछ समाहित करके मैंने प्रश्न किया–"महाराजजी ! गीता में भगवान् अर्जुन से कहते हैं––"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रमयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।' इस प्रकार जब सर्वान्तर्यामी भगवान् ही समस्त प्राणियों को परवशकी तरह प्रेरित करते हैं तब यदि उनसे प्रेरित हुआ कोई प्राणी पापाचरण करता है तो इसमें उसका क्या अपराध है। फिर वह क्यों उस पाप कर्मका फल भोगे ?"

श्रीमहाराजजी ने इसका जो उत्तर दिया उसने मुझे निरुत्तर कर दिया। इस प्रथम मिलनमें मुझे यह अनुभव हुआ कि ये महात्मा किसी सम्प्रदाय या वादविशेष के पक्षपाती नहीं है। इनके विचार बड़े उदार हैं और ये गरीबोंको विशेष वात्सल्यभाव से देखते हैं।

इसके पश्चात् एक बार आप स्वामी लम्बे नारायणजीकी जन्मभूमि चैरई (एटा) में पधारे थे। उस समय श्रीसिंहपालसिंहजी की प्रेरणासे मैंने आपके सामने अपनी परिस्थिति रखते हुए यह प्रार्थना की थी–"महाराजजी ! विद्यार्थी अवस्था से ही मेरा मन चञ्चल और जीवन आर्थिक संकटसे पूर्ण रहा है। आर्थिक संकट

की निवृत्तिके लिये मुझे एक पण्डितजी ने गायत्री जप और रुद्राष्टाध्यायीका पाठ करने के लिये कहा था। इसके पश्चात् एक महानुभाव ने गायत्री जपके साथ विष्णुसहस्रनाम के पाठ की महिमा बतायी। अतः रुद्री छूटकर विष्णुसहस्रनाम का पाठ होने लगा। मेरे शरीर में बाल्यावस्था से ही रक्तविकार था। अतः वृन्दावन के एक शाकलद्वीपीय पण्डितने आदित्यहृदयस्तोत्र और सूर्योपनिषद्का पाठ एवं रविवारका व्रत करनेका अनुरोध किया। वह भी करता रहा। इसके पश्चात् किन्हीं महानुभाव के कहने से इन सबको छोड़कर बाल्मीकीय रामायणान्तर्गत आदित्यहृदयस्तोत्र श्रीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त और कवच कीलकादिके सहित दुर्गासप्तशतीका पाठ आरम्भ किया। यही क्रम इस समय चल रहा है। स्नान करते हुए पुरुष–सूक्तका पाठ भी करता रहा हूँ। परन्तु यह सब करते हुए भी चित्त शान्त नहीं है। क्या करना चाहिये ?'

मेरी यह सब कथा सुनकर आपने एक ही आदेश दिया सद्गुरुकी शरणमें जाओ। बार–बार साधन बदलते रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा।

"सद्गुरु कैसे प्राप्त हों ?" मैंने पुनः निवेदन किया।

"प्रयत्न करनेपर मिल जायँगे" यह सीधा सा उत्तर दे दिया।

'मैं तो आपकी शरण में आया हूँ। मुझे सच्चा मार्ग बताइये। मैं धन नहीं चाहता (यह मैंने कपटपूर्ण वैराग्य प्रदर्शित किया था।) मैं तो चित्तशान्तिका मार्ग जानना चाहता हूँ।" यह मैंने निवेदन किया।

तब आप बोले–भाई ! लोकमें सुख तो दो ही प्रकारके व्यक्तियोंको मिलता है या तो जो अत्यन्त मूढ़ हैं और या जो बुद्धि से अतीत आत्मतत्त्वको प्राप्त कर चुके हैं–

'यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।

द्वाविमौ सुखनेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः।।'

पण्डितों को ज्ञान हो ही नहीं सकता। इनका किसी में श्रद्धा विश्वास होता ही नहीं। तुम छः मास तक सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिये नित्यप्रति दस माला गायत्री जप करो। इससे तुम्हें सद्‌गुरुकी प्राप्ति हो जायगी। वे तुम्हें स्वप्न में भी उपदेश कर सकते हैं।''

मैं इस आज्ञाको शिरोधार्य करके कमरे से बाहर निकल आया। मेरे पीछे श्रीसिंहपालजी भी बाहर आ गये और बोले, 'आपने विशेष हठ क्यों नहीं किया ?''

मैं बोला 'आज्ञा गुरुणामविचारणीया।' जो आज्ञा हो गयी उसका पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।

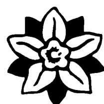
सिंहजी मुस्कराकर रह गये। सायंकाल में उन्होंने फिर बल पूर्वक मुझे श्रीमहाराजजी के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। मेरे हृदय की धड़कन बढ़ रही थी और मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। सिंहजी ने मेरे अस्फुट वाक्योंको पूरा किया ही था कि बड़े क्रोधका अभिनय करते हुए बोले, 'हमने जो आज्ञा दे दी वह दे दी।' मैं तो भयसे काँपता हुआ खिसक आया। सिंहजीपर कितनी फटकारें पड़ी मुझे मालूम नहीं।

किन्तु मुझे सिंहजीकी प्रकृतिपर आश्चर्य हो रहा था। वे इतनी फटकारें सुनकर भी रात्रिमें मुझे तीसरी बार लेकर पहुँच गये। इस बार मेरा शरीर भी भयसे काँप रहा था। मैं सोचता था कि श्रीमहाराजजीका मेरे विषयमें न जाने कैसा विचार बन जायगा। मैं उनकी प्रथम आज्ञाका ही उल्लंघन कर रहा हूँ। इससे तो वे मुझे

बड़ा उद्दण्ड समझेंगे। किन्तु आश्चर्य! महदाश्चर्य!! इस बार क्रोधका स्थान वात्सल्य ने ले लिया। मुझे 'बेटा! सम्बोधन करते हुए प्रेमसे, बोले 'तुम किसको इष्ट मानते हो? इष्ट एक ही होना चाहिये।' मैंने धीरेसे राधाकृष्ण' कह दिया। बस, आपने मुझे मन्त्र पाठ बतला दिया। मैं सोने का आदेश पाकर अपने आसनपर चला आया और पृथ्वीपर लेटकर निद्रादेवी का आवाहन करने लगां किन्तु वह आ ही नहीं रही थी। मुझे साधनपथ पानेका तो हर्ष था, परन्तु साथ ही हृदयके कोने में एक वासना करवट बदल रही थी—"बाबाको लोग त्रिकालज्ञ कहते हैं। पर मुझे तो इष्ट पूछकर मार्ग बतलाया। अब मुझे बिना पूछे ही दुर्गाका प्रयोग बता दें तो मैं कुछ समझूँ। मेरे दोनों पैरोंमें श्वेत चिन्ह बढ़ रहे थे। इस रोगकी निवृत्तिपूर्वक कुछ विशेष धनप्राप्ति का प्रयोग बतला देते तो अच्छा होता—ऐसी मेरी आन्तरिक इच्छा थी। यही चिन्तन करते हुए मैं सो गया।

प्रातः शौचक्रिया से निवृत्त होने पर पता लगाया तो मालूम हुआ कि महाराजजी स्नान कर रहे हैं। मैंने जाकर दूरसे ही प्रणाम किया। मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं था कि मेरे बिना पूछे ही आपने दुर्गाका प्रयोग बता दिया। विशेष विधि यह बतायी कि जब एक बार आरम्भ करो तो लगातार सत्ताईस दिनतक नित्य पूरा पाठ करो। इस प्रकार चार बार में एक सौ आठ पाठ हो जायँगे। मैं पहले अपनी निष्कामता व्यक्त कर चुका था। इसलिये अब सकाम भाव प्रकट करने में संकोच होता था। परन्तु करुणा—वरुणालय श्रीमहाराजजी ने मेरा आन्तरिक भाव देखकर मुझे सकाम उपासना ही बता दी और यह भी समझा दिया कि परिस्थिति विशेष में सकाम उपासना या कर्म करना भी बुरा नहीं है। यह घटना श्री ब्रह्मानन्द आश्रम अकराबादकी है।

इससे आगे तो मेरा जीवन ही बदल गया। प्रेममें नेम नहीं—इसका रहस्य उनकी कृपासे समझ में आ गया। मैं जब श्रीवृन्दाबन जाता तो कुछ शंकाएँ एकत्रित करके ले जाता था। परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य होता कि ज्यों ही मैं बाबाके चरणों में प्रणाम करके बैठता स्वयं ही ऐसा प्रसंग छिड़ जाता कि बिना पूछे ही मेरी सब शंकाओं का समाधान हो जाता। इस सम्पूर्ण सौभाग्यका श्रेय स्वामी श्रीलम्बेनारायणजी और विशेषतः श्रीसिंहपालसिंहजीको है। आज भी मेरे हृदय को कुछ शंकाएँ उद्वेलित कर रही हैं। किन्तु उनका अपने आप निवारण करने वाले बाबा कहाँ हैं ?



श्रीरामस्वरूप शर्मा 'लट्ठबाज' चिडरई (एटा)

मेरी तथा राजपुरनिवासी कुँवर प्रबलप्रतापसिंहजी की बहुत दिनों से मित्रता है। हम दोनों ही राज्य अवागढ़ में एकाउन्टैण्ट के पदपर नियुक्त थे तथा दोनों एक ही पथके पथिक हैं। एक दिन कुँवर साहबने मुझसे कहा, 'लो भैया! आज श्रीमहाराजजी एटासे उठ रहे हैं और अवागढ़ होते हुए गाँगनी पधारेंगे।' बस, इतना सुनना था कि चित्तदर्शनों के लिये छटपटाने लगा, क्योंकि कानों ने श्रीमहाराजजीकी ख्याति पहले ही सुन रखी थी।

दफतर का समय समाप्त होनेपर हम दोनों मित्र छिद्दूसिंहकी धर्मशालापर जो अवागढ़के समीप ही है, श्रीमहाराजजी के चरणों में अपना हृदय समर्पित करने के लिये पहुँचे। वहाँ देखा कि छिद्दूसिंह के विशेष आग्रहसे आप कुछ दुग्धपान करनेके लिये अपने मुखारबिन्द की ओर कटोरा ले जा रहे हैं, मैंने साष्टांग प्रणाम करने के पश्चात् अपने हृदयेशको पुष्पमाला अर्पित की। इधर आपने उस दुग्धपानको जहाँ तहाँ रोककर उसी में से हम दोनों को थोड़ा-थोड़ा दुग्धप्रसाद दिया। प्रसाद पाकर सायंकालीन वेला में भक्तगणके सहित आप अवागढ़की ओर चल पड़े। रात्रिको चन्नीवाली बगिया में सबने विश्राम किया। प्रायः १० बजे प्राइवेट सैक्रेटरी ठाकुर भगवानसिंह के सहित अवागढ़नरेश राजा सूर्यपालसिंहजी दर्शनों के लिये पधारे। उन्होंने दण्डवत् प्रणामके पश्चात् किलेमें पधारने के लिये बहुत आग्रह किया। तब आपने गाँगनीसे गढ़िया लौटते समय दर्शन देने का वचन दिया।

प्रभात होते ही भगवान् अपने भक्तोंके सहित गाँगनीकी ओर चल दिये। कुछ दूर चलनेपर मेरे रामजीने प्रार्थनाकी कि मार्ग में श्रीचरणों की पवित्ररज के द्वारा दासकी अपावन कुटिया को पवित्र करनेकी कृपा करें। धन्य है ! जिस प्रकार गजकी टेर सुनकर भगवान् वैकुण्ठनाथ वैकुण्ठ से पैदल ही चल दिये थे उसी प्रकार मुझ जैसे नराधमकी प्रार्थना स्वीकार कर आप चिडरई जैसे अपावन गाँव की ओर चल दिये। आपके पहुँचते ही वह अपावन कुटी आपकी पावन चरणरज पाकर पवित्र और सर्व शोभासम्पन्न हो गयी। इस दासने सपरिवार प्रेमपूर्वक श्रीमहाराजजी का पूजन किया। फिर जलपानके पश्चात् अपने भक्त मण्डल सहित भगवान् गाँगनी की ओर पधारे।

गाँगनी में कुछ दिन ठहरकर आप गढ़िया गये। वहाँ श्रीमद्भागवतका सप्ताह हुआ। इस समय अवागढ़—नरेशने अपने एक दान विभागके सुपरवाईजर को आपकी सेवा में नियुक्त कर दिया था उसका काम था आपको गढ़ियासे अवागढ़ लाना। आपने भीमसेनी एकादशी को अवागढ़ के लिये प्रस्थान किया। मार्गमें मैंने अपनी कुटिया पवित्र करनेकी प्रार्थना की। दयालु प्रभु ने अनुमति दे दी और मेरी तुच्छ अभ्यर्थना स्वीकार कर अवागढ़ को पधारे। इस समय एक विचित्र घटना हुई। मैं इन दिनोंमें कार्यालय से अवकाश लिये बिना ही श्रीमहाराजजी की सेवा में रहा था। किन्तु जब दूसरे दिन वहाँ पहुँचा तो रजिस्टर में मैंने अपने हस्ताक्षर देखे। वे हस्ताक्षर किस प्रकार हुए इस का भेद मैं अभीतक नहीं समझ सका हूँ। मैं तो इसे श्रीभगवान् की ही लीला समझता हूँ। उसी दिनसे भगवान् के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा—विश्वास का अंकुर प्रकट हुआ, जो सदा के लिये स्थिर हो गया। मैं तो तबसे धन्य हो गया। यह पञ्चतत्व निर्मित तुच्छ शरीर कितना भाग्यशाली है।

अवागढ़ पहुँचनेपर राजा साहबने श्रीमहाराजजीका स्वागत जैसी भव्यता, शिष्टता और धूमधाम से किया वह सर्वथा अवर्णनीय है। उस समय मानो स्वर्ग के देवोचित्त पथपर श्रद्धा एवं नम्रता के पुष्पों के ढेर लगे हुए थे। वहां ऐश्वर्य और वैराग्यका बड़ा अद्‌भुत मिलन था। भक्तगण मोदकों का प्रेमपूर्ण प्रसाद पाकर मानों स्वयं भी मोदक ही बन गये थे। मोदकप्रिय श्रीगणपति सब प्रकारसे विघ्नोंको विघटित करते हुए मानों सभी कृत्योंको मंगलमय कर रहे थे। मध्याह्नोत्तर कालमें तरह–तरह की वाद्य ध्वनियोंके साथ भगवन्नामकीर्तन एवं नृत्य–गायन आदिका कार्य क्रम रहता था तथा रात्रिमें बारह बजेतक श्रीकृष्णलीलाओं का दिग्दर्शन एवं कथा–प्रवचन आदि होते थे। वे दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत हुए। मैं तो मानों सभी सांसारिक चिन्ताओं से छुटकारा पा गया था और उस सत्संगके आनन्द में मस्त हो अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता था।

इस प्रकार श्रीमहाराजजी के सत्संगमें कुछ दिन बड़े आनन्द से व्यतीत हुए। एक दिन अचानक आपने सबको निराशाके सागर में निमज्जित कर पौंडरीको प्रस्थान कर दिया 'बहता पानी रमता जोगी, इनको कौन सके बिरमाय' इस उक्तिके अनुसार यह स्वाभाविक ही था। श्रीमहाराजजी ने हमारे हृदय क्षेत्र में अंकुरित आनन्द को अपने सत्संग सलिलसे सींच कर इस योग्य बना दिया था कि हम अपने में ही आनन्दकी खोजका प्रयास कर सकें। अब यह भी तो सम्भव नहीं था, कि वे सर्वदा हमारे पास ही बने रहते, क्योंकि उन्हें तो अभी न जाने कितने लोगों के हृदयों में आनन्दांकुरका प्रादुर्भाव करना था। अतः सायंकालीन बेलामें, जब पक्षी अपने घोंसलों की ओर और पशु अपने गोष्ठोकी ओर लौट रहे थे आपने प्रस्थान किया। इस समय आपके साथ चलने वाले

भक्तगण प्रसन्न मुद्रा में और ग्रामवासी विषण्णवदन दिखायी दे रहे थे। एक मण्डल चल रहा था और एक जड़की भाँति स्तब्ध हुआ निहार रहा था। कुछ दिन पौंडरी और हसनगढ़ में ठहरकर आप गाँगनीमें कुँवर सिंहपालजी को कृतार्थ करने के लिये पधारे।

गाँगनी पधारनेका समाचार पाकर दास श्रीचरणों में उपस्थित हुआ। इन दिनों मैंने ऐसा नियम बना लिया था कि सायंकालमें अवागढ़ से चिडरई होता हुआ गाँगनी पहुँचता और रात्रिमें श्रीचरणों की सन्निधि में रहकर सबेरे छः कोस चलकर चिडरई होता हुआ अवागढ़ जाता। वहाँ १० बजे से ४ बजेतक दफ्तर में काम करता। जब आपने गाँगनी से प्रस्थान करनेका निश्चय किया तो रात्रिमें ८–६ बजे के लगभग मैंने मार्ग में अपनी कुटियापर पधारने के लिये प्रार्थना की। आप बोले, भैया ! मैं अब राजाके यहाँ तो जाऊँगा नहीं और यदि तेरे घर जाऊँगा तो वह बुरा मानेगा। इससे वह मेरा तो कुछ बिगाड़ नहीं सकता, परन्तु तुझे बरखास्त कर देगा। इसलिये इस समय मैं तेरे यहाँ नहीं जाऊँगा।' किन्तु मेरे रामजीसे रुका नहीं गया। अश्रुपात होने लगा। चरणसेवा तो कर ही रहा था। हृदयके वेग को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सब निष्फल हुआ। जिस प्रकार एक बोध बालकको कोई ठेस पहुँचनेपर अपने पिताजीकी गोद में सिर रखकर बिलखने लगता है उसी प्रकार मैं खूब जोर से रो उठा और मेरे मुँहसे निकला कि जबतक श्रीमहाराज चिडरई नहीं पधारेंगे मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। यह बात सुनकर श्रीमहाराजजी ने कुँवर सिंहपालसिंहजीकी ओर ताका। उन्होंने मेरे ही पक्ष का समर्थन किया। बस, फिर क्या था, आज्ञा मिल गयी।

रात्रि अधिक बीत चुकी थी। अतः सभी ने निद्रादेवीकी गोदमें शरण ली। मेरे रामजीने प्रातःकाल ४ बजे ही उठकर श्रीगुरुदेव के चरणस्पर्श कर चिडरईकी राह पकड़ी। वहाँ पहुँचकर जैसा भी हो सका प्रबन्ध किया। श्रीमहाराजजीने अपने भक्तों सहित पधारकर मेरी कुटिया को स्वर्गधाम बना

दिया। जिस समय श्रीगीताजी, रामायणजी और श्रीभगवन्नामका किर्तन हुआ उस समय इस शरीर की जो दशा थी वह लेखनी की शक्तिसे परे है। इस बार यह विचित्र घटना हुई कि मेरे रामजी के यहाँ तो केवल २५–३० व्यक्तियोंके भोजनकी व्यवस्था थी, परन्तु न जाने कितने लोगोंने प्रसाद पाया। परन्तु इसपर भी इतना प्रसाद बचा कि आपके चिडरईसे पधारने के पश्चात् कई दिनोंतक घरके लोग पाते रहे। श्रीमहाराजजी ने घर के प्रत्येक कोठेमें घुस–घुसकर देखा और पूछा कि इसमें क्या है? मैं मुक्तकण्ठसे कह सकता हूँ कि उस दिनसे आजतक मेरे रामजी को किसी प्रकारका कष्ट नहीं है। रात्रिभर जो आनन्द रहा उसे यह शरीर रहते हुए मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। दूसरे दिन मेरी पूजा ग्रहणकर आपने हस–नगढ़को प्रस्थान किया। चलते समय बोले, अब गुरुपूर्णिमापर मत आना, तेरा खर्चा बहुत पड़ गया है।" परन्तु मुझसे रुका नहीं गया। कर्णवास में दर्शन करने पहुँच ही गया। आपके कथनानुसार राजा साहब ने मुझे बरखास्त कर ही दिया। जब कर्णवास में पहुँचा तो बोले, 'लट्ठबाज'[१] आ गया। मैंने पहले ही कहा था राजा तुझे बरखास्त कर देगा। देख, वहीं हुआ तूने माना नहीं। खैर, कोई चिन्ता मत कर।"

गुरुपूर्णिमा के दूसरे दिन मुझे टिकट मिल गया और साधारण प्रसाद देनेके पश्चात् दूसरी बार प्रसाद देते हुए आपने कहा, 'ले, यह बरखास्तगीका प्रसाद है।' जब में आज्ञा लेकर चलने लगा तो आप प्रायः सौ पगतक मुझे अनेक प्रकारसे सान्त्वना और उपदेश देते हुए मेरे साथ चले। ऐसी थी आपकी करुणा। आज इस असार संसार में कोई अपना दिखायी नहीं देता, जिसे अपना दुःख सुनाऊँ और किसी उलझी हुई गुत्थीको सुलझवाऊँ। बस उन्हीं से प्रार्थना है, वे ही सुनेंगे। इस अवस्था में नहीं सुनेंगे तो दूसरी में सुनेंगे, परन्तु सुनेंगे अवश्य।

---

१. यह उपाधि आपने मुझे गाँगनीमें दी थी।

श्रीभगवतीप्रसादजी धोंचक, अलीगढ़

मेरे ऊपर जितनी कृपा श्रीमहाराजजी की थी उसका मैं किसी प्रकार बदला नहीं दे सका। मैं जब भी श्रीमहाराजजी की सेवा में पहुँचता तभी उनकी कृपा का मेह मेरे ऊपर बरसता था। मैं तो उनकी कुछ भी सेवा नहीं कर पाता था। उनके विषय में आपको बहुत–सा मसाला छापने के लिये मिलेगा। पर मेरे विचारसे जिस प्रकार उन्होंने मेरे जीवन की गति बदल दी वह बड़ी साधारण बात थी।

उन दिनों मेरे पिताजी हाथरस में पोस्ट मास्टर थे। एक दिन सबेरे ही बा० चुन्नीलालजी वकील मेरे पास आये और बोले, "अपने पिताजी से मिलने चल रहे हो।" मैंने स्वीकृति दे दी। तब हम दोनों हाथरस आये। हाथरस शहर को जाने के रास्ते पर पहुँचकर वकील साहबने मोटर रुकवाई और मुझसे कहा कि मैं श्रीउड़ियाबाबाजी से मिलने जा रहा हूँ तुम अपने पिताजी से मिल लो। शाम को वापिस चलेंगे।

मैं उस समय देश–विदेश की यात्रा कर रहा था। सत्संगादि में मेरी जरा भी रुचि नहीं थी। विदेशों में घूम आने के कारण मेरी वेष–भूषा भी विदेशी–सी हो गई थी। पर वाह रे आकर्षण! मेरे मुँहसे तुरन्त निकला, "मैं भी आपके साथ बाबा के दर्शन करने चलूँगा।" स्थान जहाँ बाबा ठहरे हुए थे। एक बाग था। वहाँ

फर्शपर पचास–साठ सत्संगी एवं दर्शक बैठे हुए थे और बाबा एक चौकीपर विराजमान थे। वकील साहब तो आगे जाकर बैठ गये और मैं पीछे ही बैठा। थोड़ी देर बाद मुझे प्यास लगी और बहुत जोर से कण्ठ सूखने लगा। मैं मन में ही विचार कर रहा था कि किससे पानी माँगूँ। इतने ही में बाबा जो इस समय तक समाधिस्थ से थे, एकाएक मेरी ओर इंगित करके बोले, 'प्यासा है उसे पानी पिला दो।'' मैं बड़ा चकराया। जल मिल गया और मैंने अपनी प्यास बुझाई। पर बार–बार यही विचार आता रहा कि इन्हें यह कैसे मालूम हुआ कि में प्यासा हूँ।

कोई एक घंटे बाद दरबार उठा। सबने चरण छुए और मैंने भी जीवन में पहली बार किसी साधूके पैर छुए। परन्तु बाबाने मेरे कन्धेपर हाथ रखकर मुझे रोक लिया और जब उठे तब बोले, ''हम एक सारस्वत ब्राह्मण[1] के यहाँ भिक्षा करने जा रहे हैं तुम भी चलोगे ?'' मैंने कहा, ''यहाँ पर मेरे मातापिता हैं, मैं उनसे मिलने जाऊँगा।'' तब बोले, ''हम भी उधर ही चल रहे हैं।'''नये गंज के चौराहे तक हम साथ रहे, फिर वे तो कहीं भिक्षा करने चले गये और मैं पिताजी के पास गया। उनसे मिलकर जब मैं लौटा तो उसी चौराहे पर पुनः बाबासे भेट हो गई।

बाबा ने मुझे साथ ले लिया। बाग में पहुँचकर और सबसे तो आराम करने को कह दिया तथा मुझे अपनी गुफा में लिवा ले गये। फिर बोले, ''पाँच मिनट शान्ति से बैठो, मैं कुछ क्रिया कर लूँ।'' उस कार्य से निश्चिन्त होने पर मुझसे कहा, ब्राह्मण को संध्यावन्दन अवश्य करना चाहिये। तुम संध्यावन्दन नहीं करते,

---

१. मैं भी सारस्वत ब्राह्मण हूँ।

अब अवश्य किया करो।" मेरे 'हाँ' कर लेने पर आपने कहा, 'रामायण और गीता का पाठ भी नित्य करना।" बस, बात समाप्त हुई। फिर मैं तो उनके पैर दबाता रहा और वे थोड़ी देर के लिये लेट गये। तब से मेरा जीवन बदल गया। अब भी बाबा की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

इस घटना को मैं किसीके सामने कहता नहीं था। पर आज आपकी आज्ञा हुई तो लिख दिया। महाराजजी कोई असाधारण सिद्ध पुरुष थे। उनकी विद्वत्ता का बड़ों–बड़ों ने लोहा माना।



श्रीविजयपालसिंहजी, मथुरा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के दर्शनों से पूर्व मुझे उनका चिन्तन अन्य भक्तजनों के द्वारा उनकी महिमा सुनकर हुआ करता था। उनकी सेवामें उपस्थित होने के लिये मुझे प्रधानतया राजपुर-निवासी श्रीप्रबलप्रतापसिंहजी ने उत्साहित किया तथा उनसे मिलने के पहले भी इन्हींके सत्संगद्वारा श्रीमहाराजजी के प्रति मेरेमें श्रद्धाके भाव अंकुरित हुए। इनके सिवा कुँवर सिंहपालसिंहजी ने भी, जो श्रीमहाराज के प्रमुख कृपापात्रों में हैं, मुझे श्रीचरणों तक पहुँचने में बहुत सहायता की। मैं जिस देश जिस काल और जिन परिस्थितियोंमें श्रीमहाराजजीकी सेवामें पहुँचा था वह मेरे दस सालके त्यागपूर्ण एवं कठिन जीवनकी एक घड़ी थी। अतः प्रथम मिलनमें ही किसी विशेषताका अनुभव हुआ हो–ऐसा तो मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि जैसे–जैसे मैं उनके अधिक समीप होता गया वैसे–वैसे उत्तरोत्तर मुझे अधिक आत्मीयता का अनुभव हुआ। महाराजजीकी सिद्धियोंके विषयमें मैंने अन्य प्रेमियों से तो अवश्य सुना है परन्तु उनके दर्शन करते हुए मेरा तो यह विचार लुप्त ही रहा है, मैं तो एक द्रष्टाकी तरह केवल उनके दर्शनों से ही सन्तुष्ट रहा हूँ। सत्संग का अवसर तो खूब ही मिला और तबसे मेरी ऐसी धारणा बन गयी है कि लौकिक व्यवहार में रहने से शरीर और

मस्तिष्कमें जो शिथिलता आ जाती है वह एक आध घण्टा सत्संग होनेसे निवृत्त हो जाती है, और आश्रम में (श्रीकृष्णाश्रम में) तो यदि सालमें एक दिन के लिये भी हो आवें तो साल भर की थकान दूर हो जाती है। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है।

मुझे जबसे याद है मेरा सहज अनुराग श्रीरघुनाथजी के चरणकमलों में रहा है। श्रीमहाराजजी ने भी शरणागत होने पर मुझे श्रीरामचरितमानसका पाठ करने का ही आदेश दिया था। श्रीमहाराजजी के उपदेशों से मुझमें किन्हीं सद्‌गुणों की वृद्धि हुई है—यह तो नहीं कह सकता, परन्तु एक बातका अनुभव अवश्य हुआ जान पड़ता है कि यदि हम सबमें विश्वबन्धुत्व (Universal Brotherhood) की भावना जाग्रत हो जाय तो अवश्य हमारा बहुत लाभ हो सकता है। श्रीमहाराजजी के जिस गुण ने मुझे विशेष आकर्षित किया वह था उनका अपने पर अनुशासन। यह मुझे उनमें पूर्णरूप से दिखायी दिया। यदि सब मनुष्य ऐसे अनुशासन में रहने लगें तो संसार जैसा कष्टमय प्रतीत होता है वह न हो।

श्रीमहाराजजी के सत्संगसे मुझे जो विशेश अनुभव हुआ उसकी दो बातें इस समय याद आती हैं—(१) किसी प्रेमीने मुझे यह बताया था कि एक बार बाबाने सब लोगोंको अपना वैयक्तिक जीवन शुद्ध बनानेका आदेश दिया और कहा कि भजन इसके बादकी चीज है। यदि चरित्र शुद्ध न हुआ तो भजन करना ऐसा ही है जैसे किसी रोगीको स्वास्थ्य लाभ के लिये वसन्त मालती और चन्द्रोदय आदि बहुमूल्य औषधियें तो खिलायी जायँ परन्तु उससे गुड़, तेल मिर्च खटाई आदि का परहेज न कराया जाय।

ऐसी अवस्था में उक्त ओषधियाँ धूलके ही समान होंगी। मुझे तो चरित्रवान पुरुषों में ही विषष श्रद्धा है। (२) एक बार मेरे सामने ही की बात है श्रीमहाराजजी ने कहा था कि साधुको भिक्षा करावे और वस्त्रादि से भी सेवा करे, परन्तु उसके पास अधिक न रहे। मुझे तो 'साधु' नाममें ही श्रद्धा है। और यदि साधु मिल जाय तो उसकी सेवा में शान्तिका भी अनुभव होता है। मेरा विश्वास है कि साधुके पास न रहने के कारण ही मुझे उनके प्रति ऐसी श्रद्धा का अनुभव होता है कि जिसके आनन्दका वर्णन नहीं किया जा सकता। मुझे तो मानसकी इस चौपाई में विश्वास है –

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा।।

श्रीमहाराजजीके विषय में एक विशेष बात मुझे यह भी अनुभव हुई है कि उनके स्मरणमात्रसे ध्यान स्थिर करने में पूर्ण सहायता मिलती है। मैं तो उन्हें ध्यानका माध्यम मानता रहा हूँ। उनके दर्शनमात्रसे चित्तको शान्ति मिलती थीं। उनमें उदारता तो अद्वितीय थी। किसी सेवक से भारी से भारी भूल हो जाने पर भी वे उसे क्षमा कर देते थे। ऐसा उनका अनुग्रह था।



श्रीमती ठकुरानी साहिबा, बमनोई (अलीगढ़)

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी साक्षात् भगवत्स्वरूप ही थे। उनकी महिमा को यथावत् कौन लिख सकता है? मुझपर उनकी अपार कृपा थी। अतः उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम कर अपनेसे सम्बन्धित उनकी कुछ कृपाओं का वर्णन करती हूँ।

(१)

गावँ मानईमें कुछ लोगों के साथ हमारी फौजदारी हो गयी थी। उसमें पाँच–आदमी जानसे मारे गये थे और एक अधमरा हो गया था। वह स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। हम लोग बड़ी ही चिन्ता में थे कि न जाने अब क्या होगा। किन्तु श्रीमहाराजजी ने पहले ही बता दिया था कि इसमें तुम्हारा विशेष खर्चा नहीं होगा, ठाकुर साहब अपने आदमियों के सहित छूट जायँगे और विरोधियों को सजा होगी। श्रीमहाराजजी की यह भविष्यवाणी अक्षरशः ठीक हुई। छः महीने बाद मुकदमा छूट गया और विपक्ष के छः आदमियों को चार–चार सालकी सजा हुई।

(२)

उपर्युक्त घटना के बाद एक बार श्रीमहाराजजीने मुझे और ठाकुर साहबको बुलाकर कहा कि तुम्हारे कुटुम्बियोंने तुम्हें मारने के लिये एक आदमी बुलाया है। तुम जप करो, नहीं तो तुम्हारा तुम्हारे लड़के का अनिष्ट होगा। इसके ठीक प्रन्द्रह दिन पश्चात् वह हत्यारा

आया और आते ही पकड़ लिया गया। उसके पास एक बहुत पैनी छुरी निकली। थानेदार उसे पकड़कर ले गया और उसे सजा हो गयी।

(३)

एक बार मुझे बात रोग हो गया। मेरी गरदन इधर–उधर नहीं हिलती थी। दर्द भी बहुत होता था। ऐसी दशामें मैं श्रीमहाराजजी के दर्शनाकें के लिये कर्णवास गयी। मैंने उनके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। उन्होंने तीन बार अपना अँगूठा मेरी गरदन से मल दिया। उसी क्षण मेरा दर्द ठीक हो गया और फिर आज तक नहीं हुआ।

(४)

इसके कुछ ही दिनों बाद मेरी बहिनके लड़के टीकमकी आँखें दुखने आ गयीं। वह स्कूल में पढ़ता था। डाक्टरों ने कह दिया कि अब वह पढ़ने योग्य नहीं रहेगा। उसकी परीक्षा के दिन समीप थे। अपनी बहिनके दुःखसे मैं भी दुःखी हो गयी। मैंने रात्रि में श्रीमहाराजजीका ध्यान करके बहुत–बहुत प्रार्थना की। मुझे डर था कि यदि लड़के की आँखें अच्छी न हुई तो वह कैसे पढ़ेगा और फिर कैसे उसका निर्वाह होगा। प्रातः कालसे ही उसकी आँखें ठीक होने लगीं और वह तीसरे दिन से पढ़ने के लिये जाने लगा। फिर परीक्षा देकर पास भी हो गया।

(५)

इसी महीने की बात है, सूर्यपाल का लड़का बहुत बीमार था। तीन दिन से न तो उसने आँखें खोली थीं और न जल ही मांगा था। उसकी ऐसी हालत देखकर मैं बहुत घबड़ायी। श्री

रामायणजीके उत्तरकाण्डका पाठ किया और श्रीमहाराजजी को याद करके देरतक रोती रही। उसके पश्चात् मुझे आलस्य आ गया और मैं लेट गयी। स्वप्न में श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। वे वैसा ही कटिवस्त्र और चट्टियाँ पहने हुए थे। मैंने एक दम मुँह खोला और उठने लगी तो वे दिखायी नहीं दिये। तत्काल ही वह लड़का उठा और उसने दूध माँगा। उसके पश्चात् दो दिन में ही वह ठीक हो गया। इससे हम सबको बड़ा हर्ष और आश्चर्य हुआ।

हमें निश्चय है कि अब भी श्रीमहाराजजी विपत्तियों से हमारी रक्षा करते हैं और हमारी प्रार्थना सुनते हैं। उनके गुणों का मैं क्या वर्णन कर सकती हूँ। वे दीनों का दुःख दूर करनेवाले और पतितों को पवित्र करने वाले थे। उनके सिवा हम जैसों को कौन अपना सकता था ? जब करोड़ों जन्मों के पुण्य संचित होते हैं तब जीव भगवान् के सम्मुख होता है। श्रीमहाराजजीने केवल अपने चरणों के स्पर्शसे ही भगवन्नमार्ग में लगा दिया। यह उनकी अहैतुकी कृपा ही थी।



ठकुरानी श्रीवेदकुँवरिजी, इटरनी (अलीगढ़)

(१)

मैं एक अनाथ दीन बाला हूँ। मेरे पिता बहुत बड़े आदमी थे और अलीगढ़ जिले में बरानामक ग्राम के रहने वाले थे। उन दिनों पर्दाकी प्रथा बहुत थी। इसलिये मैं कुछ भी पढ़–लिख न सकी। हम सात बहिन और दो भाई थे। मेरा विवाह जिस घर में हुआ उनके पास छोटी सी जमीदारी थी। मेरे भाईयों का देहान्त हो जानेके कारण पिताजी बहुत शोकाकुल हुए और यह सोचकर कि मेरे पीछे लड़की का विवाह कौन करेगा उन्होंने मेरा विवाह कर दिया। विवाह के कुछ काल पश्चात् ही मैं विधवा हो गयी। जो कुछ जमीदारी थी उसे कुटुम्बियों ने दबा लिया। मेरे माता–पिता और भाई पहले ही विदा हो चुके थे। मेरी गोद में एक पाँच महीने का बालक था। इस प्रकार इस लोक में मुझे अपना कोई सहायक दिखायी नही देता था।

मेरी ननद बमनाई विवाही थीं। वे पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के पास आया–जाया करती थीं। उन्हीं के कारण मैने उनकी कुछ गुणावली सुन रखी थी। परन्तु अभी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। श्रीचरणों में श्रद्धा और उनके प्रति आकर्षण अवश्य था। अनाथ और असहाय रह जानेपर चित्त बहुत घबड़ाया। सोचने लगी कि किसी प्रकार आत्मघात कर लूँ, विष खालूँ, आग लगा लूँ अथवा कांच पीसकर पी लूँ। मेरी ऐसी मनोवृत्ति से जिन लोगोंके साथ मैं रहती थी वे भी बहुत दुखी थे। उस समयकी मेरी

मानसिक वेदना असह्य थी। मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। तीन दिनतक मैंने कुछ नहीं खाया। तब तन्द्राकीसी अवस्था में मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए वे बोले, 'तेरा यह बच्चा देवता का अवतार है। तू इसका पालन कर। अभी तुझे बहुत कुछ देखना है। तू कुछ भी कर अभी मर नहीं सकती। सतीको तो एक घंटेका ही कष्ट होता है, तेरी विशेषता तो इसीमें है कि इस बालकका पालन करते हुए अपने धर्मकी रक्षा कर।'' बस मेरी आँखे खुल गयीं और मैंने उनका आदेश शिरोधार्य किया। उसके पश्चात् सं० १६७१ के वैशाख शु० ११ को आपने पुनः स्वप्न में दर्शन दिये और कहा, 'तू केवल निमित्त मात्र रह। मैं स्वयं तेरी सब व्यवस्था करूँगा।''

पतिदेव का स्वर्गवास हो जानेपर मैं बमनोई में रहने लगी थी। रियासत भी उन्ही के हाथ में थी। एक हजार रुपया कर्ज हो चुका था। अब उन्होंने मुझे इटरनी भेज दिया मेरे खाने–पीने का भी ठिकाना नहीं था रात–दिन यही लगन रहती थी कि श्रीमहाराजजी कब आवेंगे। रामायण तो बचपनसे ही पढ़ती थी। अतः बार–बार मनमें यह बात आती थी 'भाविहुँ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।'' पाँच रोज बिना खाये बीते। केवल जल पीती रही। गाँव में किसी से कुछ माँगने और कहने–सुनने में लज्जा लगती थी। मेरे पास गाँगनी की एक ब्राह्मणी रहतीं थी। जब उठना–बैठना कठिन हो गया तो उससे कहा कि मैं तो एक–दो दिन मैं मर जाऊँगी। बच्चे को जो चाहे ले जायेगा। परन्तु रातको स्वप्न में आपने कहा, 'तू कुछ भी कर, मैं तेरे साथ हूँ।'' बस, सबेरे उठते ही मेरे मन में संकल्प हुआ कि सिलाई का काम आरम्भ कर दूँ। यह उन्हीं की प्रेरणा थी। इस प्रकार दो पैसे से दस पैसे पैदा होने लगे और पेट भरने का साधन हो गया।

(२)

अब तक जो कुछ हुआ आपकी परोक्ष कृपा ही थी। आपके प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य अभी प्राप्त नहीं हुआ था। सं० १६७५ वि० में हम रामघाट गये। तबतक आप स्त्रियों को अपने पास नहीं आने देते थे। अतः जब आप गंगास्नान करते तब दूरसे ही हम आपके दर्शन कर लेते थे। दो–तीन साल इसी तरह चलता रहा। फिर धीरे–धीरे कुछ समीप आने लगे। आपके लिये दूसरों के मन की बात जान लेना सामान्य सी बात थी तथा क्रोध आपको छू भी नहीं गया था। अबतक मैं जिस मन्त्र का जप करती थी उसे छुड़ाकर आपने दूसरा मन्त्र जपनेकी आज्ञा दी तथा इष्टदेवकी मूर्ति या चित्रका पूजन करनेको कहा। परन्तु पूजा का नियम मुझे कठिन जान पड़ा। मैंने कहा, 'मैं तो सजीव देवका ही पूजन करना चाहती हूँ, यह सब मुझसे नहीं हो सकेगा।"

सं० १६६० के अगहन मास में मेरे लड़के इन्द्रजीतसिंह का विवाह एक डिप्टी कल्लटर की लड़की से हो गया। वे बाँधई गाँव के रहनेवाले थे। लड़की योग्य थी। परन्तु दूसरे ही वर्ष इन्द्रजीत बहुत बीमार पड़ गया। उन दिनों बाँधका पहला उत्सव था। मैं श्रीमहाराजजी के दर्शनों को बाँधपर गयी। तब आपने पूछा, 'इन्द्रजीत कहाँ है ?' मैं उत्तर तो कुछ दे न सकी, रोने लगी। तो आप बोले, 'किसी प्रकार उसे यहाँ ले आओ।' इन्द्रजीत इन दिनों कहीं बाहर जाने योग्य नहीं था। तथापि डिप्टी साहब से आग्रह करके दुलहिन के सहित मैं उसे फर्रुखाबादसे लेकर बाँधपर पहुँची। वहाँ जाते समय रास्ते में ही उसने कहा कि माताजी ! अब तो मैं ठीक हूँ। बाँधपर पहुँचते–पहुँचते वह न जाने कैसे बिलकुल ठीक हो गया। श्रीमहाराजजी ने उसे कई आदमियों को दिखाते हुए कहा, 'देखो, यह वही लड़का है जिसकी माँ रोती थी।' फिर मुझसे कहा, 'तू बहू को

लेकर घर चली जा, मैं इसे अपने पास रखूँगा।" मैं अपने धर चली आयी और बहू अपने पिता के घर चली गयी। आपने छः महीना तक अनूपशहर के सुप्रसिद्ध वैद्य श्रीलल्लूजीसे इन्द्रजीत की चिकित्सा करायी और फिर प्रसादरूपसे मुझे दे दिया।

इसके कुछ काल पश्चात् आप गाँव आये। वहाँ इन्द्रजीत के साले का लड़का खेल रहा था। उसे देखते ही आप बोले, 'देखों, कहाँसे आया है और कहाँ जायगा।?' इसके बारह घंटे बाद वह मर गया। ऐसी थी आपकी भविष्य दृष्टि।

मैं पढ़ना–लिखना नहीं जानती थी। घरका हिसाब भी नहीं लिख पाती थी। आपने स्वप्न में मेरा हाथ पकड़कर लिखवाया और सबेरे उठने पर मैं लिखने लगी। मुझे घर की छोटी–छोटी बात बताते रहते थे। हमारे यहाँ ईखसे गुड़ तैयार किया जाता था। नौकर लोग गुड़ की चोरी कर लेते थे। समझाने–बुझाने से मानते नहीं थे। एक दिन स्वप्न में आपने बताया कि गुड़ चौकेकी ओर पत्तों में छिपाकर रखा है। मैंने जाकर देखा तो बात ठीक निकली।

(३)

सं० १९९२ की बात है। इन्द्रजीत बीमार पड़ा और उसे दीखना बन्द हो गया। अगहन के आरम्भ में एक दिन वह बोला, माताजी ! मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन कराओ' वह कुछ शून्यता–सी अनुभव करता था। मैंने कहा, 'श्रीमहराजजी इस समय अनूपशहर में है, चलो वहीं चिकित्सा करायेंगे। पौषके आरम्भ में हम वहाँ पहुँचे और वैद्य श्रीलल्लूजी के पास एक मकान में ठहरे। एक दिन सायंकाल में आप मुझसे बोले, आज रातको सोना मत। आस–पास रहनेवाले भक्तोसे भी कह दिया कि तुम लोग रात्रि के समय इसकी देख–भाल रखना। मैं घड़ी में

चाबी लगाकर बैठी रही। किन्तु आधी रात के समय बैठे–बैठे ही मुझे कुछ तन्द्रा सी हो गयी। उसी समय इन्द्रजीत का शरीर शान्त हो गया। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो आप प्रकट होकर कह रहे हैं कि इन्द्रजीत को देख। मैंने देखा तो उसमें अब कुछ नहीं था। मैंने भक्तों के द्वारा सेठ बालूशंकर के बाग में श्रीमहाराजजी के पास उसके देहान्त का समाचार भिजवाया। आपने उनके द्वारा कहलाया कि सबेरे सात बजे तक रखा रहने दे, अभी कोई संस्कार न करे। इन्द्रजीत का शव रात के बारह बजे से सबेरे सात बजे तक पृथ्वी पर पड़ा रहा। सबेरे सात बजे आप आये और सबको कमरे से बाहर कर दिया। मैं मुँह फेरकर कमरे के एक कोने में बैंठी रही। आपने शव को गोद में लेकर ऊपर से नीचे तक अपनी हथेली से स्पर्श किया और उस पर थपकी–सी देते रहे। आधा घंटा इस प्रकार ठोकते रहने पर वह कराहने लंगा। तब मैंने पूछा, महाराजजी! मैं देख लूँ? आपकी आज्ञा पाकर मैंने उसे देखा और उठाकर खाटपर सुला दिया। फिर तो ओर सब लोग भी भीतर आ गये।

फिर आपने हमसे कहा कि तुम आगरे चले जाओ और इन्द्रजीत के कानपर आवाज के साथ कहा कि तू अपनी माँ से कह दे कि मुझे डिप्टी साहब के पास ले चल। बाबू रामसहायजी ने एक कार किराये पर ठीक की और उसके द्वारा हम आगरे चले आये। चलते समय आपने मुझसे कहा था कि यह पाँच दिन बेहोश रहेगा तू इसके पास ही रहना। आगरा पहुँचनेपर जब पाँचदिन बाद उसे चेत हुआ तो वह बोला, यह क्या बात? मैं सोया तो था श्रीमहाराजजी के यहाँ, अब इस जगह कैसे आ गया?"

इसके पश्चात् प्रायः दस महीना उसका शरीर और रहा।

इस बीच में उसको एक पुत्र भी प्राप्त हुआ, जो अबतक सकुशल है मैं साढ़े सोलह वर्ष की आयु में विधवा हुई थी। तबसे किसी पुरुषको स्पर्ष नहीं करती थी। चालीस साल के लिये मैंने ऐसा नियम किया था। एक दिन स्वप्न में मेरे बिना पूछे ही आपने कहा, 'इन्द्रजीत का शरीर दस महीना और रहेगा। तू इसे भी स्पर्श मत कर।' इन्द्रजीत की बीमारी बहुत दिनोंतक चली। बड़े–बड़े डाक्टर और वैद्य भी उसके रोग का कोई निश्चित निदान नहीं कर सके। इस आपत्ति में उसकी चिकित्सा के लिये न जाने पैसा भी कहा से आ गया। एक दिन स्वप्न में आपही ने बताया कि इसके दिलपर फालिज है।

अस्तु, चिकित्सा चलती रही। किन्तु कोई लाभ दिखायी न दिया। सं० १९६४ का कार्तिक मास आया। इन दिनों बहूका बर्ताव कुछ विपरीत था। एक दिन इन्द्रजीत भी करहने लगा कि माताजी ! तुम गुस्सा बहुत करती हो। तब मैंने कहा, 'भैया ! तू तो दुखी है ही चित्त में मैं भी बहुत दुःखी रहती हूँ। इसलिये कुछ दिन बरागाँव रह आऊँ इसके बाद अपनी पूजाकी कोठरी में गयी तो ऐसा लगा मानों श्रीमहाराजजी प्रकट होकर कह रहे हें, तू कहीं मत जा, यह तो अब केवल पन्द्रह दिनों का मेहमान है।' मैं चरणस्पर्श करनेको झुकी तो देखा कुछ नहीं है। यह घटना कार्तिक कृ॰ २ की है। बस, मैंने जाने का विचार छोड़ दिया। पर किसी से कहा कुछ नहीं। चित्त में बड़ी चिन्ता हुईं कि इन्द्रजीत के पीछे कैसे जीवन धारण करूँगी। ऐसी बेचैनी हुई कि जीवन व्यर्थ दिखायी देने लगा। मैंने अफीम और तेल मँगाकर रख लिया और निश्चय किया कि इन्द्रजीत का शरीर न रहा तो अफीम और तेल पीकर प्राण त्याग दूँगी। इन दिनों हम आगेरे के गोकुलपुरा मुहल्ले में रहते थे। द्वादशी की रात को एक बजे आपने प्रत्यक्ष होकर कहा, हम अब जाते हैं। यह तेल की

शीशी और अफीम मुझे दे। इनसे तू नहीं मरेगी, व्यर्थ पागल होकर भटकेगी भगवान्का भजन कर। न जाने कितनी बार तू इसकी माँ और यह तेरा पुत्र हुआ है। ये सम्बन्ध सदा रहनेवाले नही है।" बस, ऐसा कहकर आप अन्तर्धान हो गये।

इसके प्रायः एक सप्ताह पश्चात् कार्तिक शु०२ को इन्द्रजीत का देहान्त हो गया। उसके बाद मैं सर्वदा आपकी ही छत्रछाया में रहती थी। प्रायः ग्यारह साल वृन्दावन और कर्णवास में ही रही। मैं बहुत दुःखी होती तो आप मेरी गोद में लेट जाते और कहते कि तू रो मत, मैं ही तेरा पुत्र हूँ। कभी उनसे छिप कर रोने लगती तो तुरन्त मेरे पास प्रकट होकर मुझे धैर्य बँधाते थे। पिता जैसे पुत्री की देख–भाल रखँता है उसी प्रकार वह हमारी संभाल रखते थे। पद–पद पर हमें उकनी असीम अनुकम्पा का अनुभव होता रहता था। उनका वियोग होनेपर अब हमारे स्वार्थ–परमार्थ सभी किनारा कर गये हैं। पर हम अभागे आजतक उनके बिना जीवित हैं।



श्रीकिशनसिंहजी दरोगा (रिटायर्ड), उत्तमगढ़ी (अलीगढ़)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

हे गुरुदेव! हे भगवन्! आपकी सदा जय हो। मैं आपके गुणानुवाद आपके ही सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ। विश्वास है कि कोई न कोई इसका रसास्वादन करके लाभ उठायेंगे ही।

आपका प्रथम दर्शन मैंने सन् १९१८ ई० में रामघाटकी इमलीवाली कुटी में किया था। उस समय मैं रामघाट में सबइन्स्पैक्टर पुलिस था। बाबू रामसहायजी पोस्टमास्टर मेरे पास आया करते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'चलो, एक साधुको देख आवें। वह कोई इश्तिहारी डाकू या सी० आई० डी० तो नहीं है' मैं उनके साथ चल पड़ा। जाकर देखा बाहर एक संन्यासी बैठे हैं। और भीतर आप विराजमान हैं। उस समय मुझे साधुओं के प्रति शिष्टाचार का कोई बोध नहीं था। अतः मैंने दूर से ही कहा, 'बाबाजी! दण्डवत्!' इसपर आप हँस दिये। दूसरे साधु मुझसे अग्रेजी में बातें करने लगे। उस समय मेरे मनने यही निर्णय किया कि ये बाहर बैठे हुए सज्जन तो साधु है और भीतर तो कोई मुष्टण्डा बैठा हुआ है। थोड़ी देर बात करके मैं चल पड़ा और कह

दिया कि कल भोजन मेरे यहाँ कर लेना। दूसरे दिन वे महात्मा तो पहुँच गये, पर आप नहीं आये। मैंने थानेदारी के अहंकार मे समझ लिया कि नहीं आया तो न सही।

इसके बारह वर्ष बाद मुझे आपकी महिमा का कुछ ज्ञान हुआ। उस समय मैं आपके दर्शन को जाने का विचार कर रहा था। अब मैं श्रीअच्युत मुनिजी को अपना गुरु मानने लगा था, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारे गुरु तो श्रीउड़ियाबाबा हैं। मैं रात्रिमें ही चल पड़ा। प्रातः काल जब रामघाट में आपकी कुटी पर पहुँचा तब आपने दूर से देखकर ही कहा 'जा जा, गंगास्नान कर आ।' मैंने कहा, महाराजजी ! मैं तो स्नान करने तब जाऊँगा जब सब भक्तों सहित आपको भिक्षाका निमन्त्रण दे लूँगा।' आपने कहा, 'अच्छी बात है। जा स्नान कर आ।' मैं बिहारी हलवाई से समान तैयार करने के लिये कहकर स्नान करने चला गया। जब लौटकर आया तब समान तैयार हो रहा था। मैं बैठ गया। सामने जलेबियाँ दिखायी दीं। मुझे प्रातः काल कुछ कलेवा करनेकी आदत थी। भूख भी लग रही थी। अतः थोड़ी जलेबिया लेकर खा लीं। सामान तैयार होने पर उसे लेकर मैं आपके पास पहुँचा तो आप देखते ही बोले, 'हमें निमन्त्रण देकर तू जलेबियाँ खाकर आ रहा है। तुझे बड़ी जल्दी भूख लग जाती है ?'' मुझे बड़ा संकोच हुआ। परन्तु आप बोले, 'जा, तेरा सब अपराध क्षमा किया, उसी दिन से आपने मुझे अपना लिया। मैंने भी समझा आपके प्रति बारह वर्ष पहले की हुई अवज्ञाका प्राश्चित्त हो गया और तबसे धीरे–धीरे जप–ध्यान आदि भी करने लगा।

श्रीमहाराजजी ! आपका दरबार मानो दीन–दुखियों की पुकार सुनने का केन्द्र था। वहाँ जो कोई आता निराश नहीं

लौटता था। ज्ञानेच्छुओं को ज्ञान, भक्तिकी अभिलाषा रखने वालोंको भक्ति और धनकी इच्छावालों को धन देकर आप सभी की वाञ्छा पूर्ण करते थे। आपने अनेक व्यक्तियों को फाँसीसे छुड़ाया, परन्तु किसी को इस रहस्य का पता नहीं चलने दिया। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति आपके संकल्पको टालेने में समर्थ नहीं था। देशमें दूर–दूर तक जो घटनाएँ घटती थीं आपको यहीं बैठै–बैठे पता चल जाता था; जैसे–

१. जिस समय दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्दजी की शमशानयात्रा हो रही थी आप रामघाटमें थे। उस समय आपने कहा था, ''स्वामी श्रद्धानन्दकी अर्थी के साथ इस समय लाखों आदमी जा रहे हैं। मृत्यु हो तो ऐसी हो।'

२. एक दिन प्रातःकाल आप बोले, 'भैया ! महात्मा गान्धीने अपना संकल्प पूरा कर लिया। आज रातको अहमदाबाद में एक ब्राह्मणकी लड़की ने भंगी के लड़के से विवाह किया है।''

३. मैं देहरादून में था। एक दिन प्रातःकाल पहाड़ी पर बैठ कर भजन कर रहा था। आप उस समय वृन्दावन की कुटी में थे। आपने बुद्धिसागर से कहा, ''किशनसिंहकी नौकरी बड़ी अच्छी हैं। इस समय वह पहाड़ी पर बैठा भजन कर रहा है।''

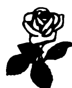
४. आपके यहाँ बड़े–बड़े भण्डारोंमें हजारों आदमी भोजन करते थे। परन्तु यदि एक आदमी भी रह जाता तो आप कुटीमें बैठे–बैठे ही बता देते थे, अमुक व्यक्ति ने अभी प्रसाद नहीं लिया उसे बुला लाओ।' इसी प्रकार आप दूसरों के मनकी बात भी जान लेते थे। कभी–कभी तो दूसरों के मुख से

उत्तर भी देते थे। परन्तु इस रहस्य को कोई जान नहीं पाता था। एकबार रामघाट में श्रीगंगाजीके किनारे सौ से भी अधिक भक्तगण बैठे थे। चंदौसी के प्रोफेसर गंगाशरण 'शील' ने एक भगवत्सम्बन्धी प्रश्न किया। मैंने तत्क्षण उसका बड़ा अच्छा उत्तर दे दिया, जिसका उस समय मुझे अभिमान भी हुआ। परन्तु उसके दस वर्ष बाद श्रीमहाराजजी को अनुभव करते–करते मैंने समझा कि वास्तव में वह उत्तर मैंने नहीं दिया उस समय आप ही मेरे मुँह से बोले थे।

आप परम विरक्त संत थे। कोई कितना ही अनिष्ट करे आपको कभी क्रोध नहीं आता था। रामायण से आपको बहुत प्रेम था। आप यह चौपाई प्रायः कहा करते थे–

'जहि जाने जग जाइ हेराई। जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई।।'

आपका अन्तिम उपदेश था–संसार भगवान्‌का ही स्वरूप है। भगवान् के सिवा और है ही क्या ? प्रभो ! ऐसी कृपा करो कि मैं सदा आपके गुण गाता रहूँ।



श्रीलालमणिजी, हापुड़

मैंने श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन बुलन्द शहर में मौनी जी के कुटी पर किया था। उस समय आपके पास एक तुंबा और गुदड़ी ही थे। आप एकांकी विचार करते थे। यद्यपि उस समय आपसे बिशेष बातचीत नहीं हुई। तथापि मन में पुनः दर्शन की लालसा बनी रही। इसके पश्चात् जब कर्णवास में सेठ गणेशीलालजी का गायत्री–पुरश्चरण यज्ञ हुआ मैं पुनः आपके दर्शनार्थ पहुँचा और यज्ञकी समाप्तिपर्यन्त वहीं रहा। श्रीमहाराजजीका स्वभाव विचित्र था। कभी–कभी वे रात्रिमें मुझे भोजन नहीं देते थे। एक दिन किसी भक्त ने पूछा आप इसे भोजन क्यो नहीं देते ?' आप तुरन्त बोले, यह भोजन नहीं करता।' उसी दिन से मैंने प्रतिज्ञा की कि अब नित्यप्रति भजन किया करूँगा। तभी से मैं गायत्री का जप करने लगा और श्रीमहाराजजी भी मुझपर स्नेह करने लगे। अब, वे मुझे बड़े प्रेम से भोजन देते थे। श्रीमहाराजजी की कृपासे मुझे गायत्री के जपसे अनेकों अनुभव हुए। आप भजन करने से बहुत प्रसन्न होते थे। कई बार गुरुपूर्णिमा, कृष्णजन्माष्टमी एवं शरत्पूर्णिमा आदि उत्सवोंपर आप स्वप्न में दर्शन देकर मुझे आने की आज्ञा प्रदान करते थे। लीलासंवरण के बाद भी, जब वृन्दावन में आपके आश्रम में श्रीमद्भागवत्के एक सौ आठ सप्ताहपरायण हुए, आपने मुझे स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'लालमणि ! क्या अभी

यहीं बैठा रहेगा ? जा, वृन्दावन चला जा।' मैंने दूसरे ही दिन वृन्दावन जाकर उत्सवका दर्शन किया।

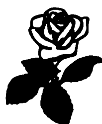
जिन दिनों मैं श्रीपल्टूबाबा के पड़ौस में रहता था कभी–कभी खटका हो जानेके कारण वे मुझपर नाराज हो जाया करते थे। एक दिन रात्रि को वे बहुत अप्रसन्न हुए। मैंने किसी से कहा तो कुछ भी नहीं, परन्तु दुःखी बहुत हुआ और सो गया। दूसरे दिन श्रीमहाराजजी ने मुझे बुलाकर कहा, बेटा ! दुःखी मत हो, मैं तुझे रहने के लिये बहुत अच्छा एकान्त स्थान दूँगा। चिन्ता न कर।' मैं सोचने लगा, सभी स्थान तो घिरे हुए हैं, मुझे कहाँसे स्थान देंगे ?' उसके चार दिन बाद आपने शिवजी के मन्दिरमें पुस्तकालयवाला कमरा खुलवा दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

आपने मुझे वैष्णवीय दीक्षा लेने की आज्ञा दी और उसके खर्चे के लिये कुछ रुपये भी दिला दिये। वैष्णवीय दीक्षा में भी मुझे वहीं मन्त्र मिला जो आपने कई वर्ष पहले दिया था। वृन्दावन में रहते समय मैं कुछ दिनों तक श्रीमहाराजजी के स्नानार्थ जल लाले की सेवा किया करता था। वहाँसे जब आप बाँधपर पधारे तो एक दिन मुझे एकान्त में बुलाकर बोले, मैं तुम्हें एक ऐसा मन्त्र बतलाऊँगा जिससे तुम्हारे पास पैसा खूब आयेगा। परन्तु जिस दिन किसी से कह दोगे पैसा आना बन्द हो जायगा।' मैंने उस समय इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिये उन्होंने वह मन्त्र बतलाया भी नहीं।

जब आप माँ श्रीआनन्दमयी और श्रीहरिबाबाजी के साथ पंजाब की यात्रा को जाने लगे तो उससे पहले मुझे एकान्त में बुला कर कहा, 'लालमणि ! मेरी एक बात मानेगा ?' मैंने कहा 'महाराजजी अवश्य मानूँगा। तब आप बोले, "यह मेरा अन्तिम

उपदेश है कि तुम प्रति दिन महामन्त्रकी चौंषठ माला जपा करो।' उस समय मैं उस 'अन्तिम उपदेश' का अभिप्राय कुछ नहीं समझसका। पीछे यह बात समझमें आयी।

लीला संवरण के बाद ता० १६ मार्च, सन् १९५५ को रात्रि के समय मैंने स्वप्न में देखा कि श्रीमहाराजजी वृन्दावनकी कुटिया में जहाँ बैठकर रोटी बाँटा करते थे वहीं बैठे हैं। मेंने जाकर उनकी पूजा की और चरणोदक लिया। मैं चरणोदक के लिये दोना लेगया था। उसे देखकर आप कहने लगे, अरे कटोरी क्यों नहीं लाया ?' फिर हंस–हंसकर बातें करने लगे और प्रसादमें एक परांवठा दिया। वृन्दावन में जब कभी कुटिया पर कोई उत्सव होता है मैं स्वप्न में श्रीमहाराजजी को अवश्य देखता हूँ। यह मेरे लिये उत्सव में आने का आदेश होता है।



श्रीशंकरलालजी सहतावाले, वृन्दावन

(१)

मेरे पिताजी श्रीमहाराजजी के दर्शनों को जाया करते थे। कभी–कभी मैं भी उनके साथ जाता था। धीरे–धीरे श्रीमहाराजजी की कृपा से उनके चरणों में मेरी श्रद्धाभक्ति हो गयी और समय–समय पर उनकी कृपा की अनुभूति भी होने लगी। जब कभी वे मेरे गाँव सहता पधारते, मुझे उनके दर्शन और सेवाका अवसर प्राप्त होता।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी सेहता आये। मैं उस समय अपना काम छोड़कर सारा समान लेकर कानपुर से चला आया था आपने मुझसे पूछा, यदि तुम यहाँ से नित्य प्रति गंगास्नानके लिये जाओ तो कितना खर्चा लगेगा ? मैंन कहा, 'महाराजजी ! कमसे कम पाँच रूपये रोज तो लगेंगे ही।' तब बोले, 'तब तो तुम कानुपर का काम मत छोड़ो। वहाँ रहकर तुम नित्यप्रति गंगास्नानके लिये जाओ तो कितना खर्चा लगेगा। मैने कहा, 'महराजजी ! कमसे कम पाँच रुपये रोज तो लगेंगे ही।' तब बोले, तब तो तुम कानपुर काम मत छोड़ो। वहाँ रहकर तुम नित्य–प्रति गंगास्नान करते हो। यहाँसे जाओ तो नित्य–प्रति पाँच रुपये खर्च होंगे अतः तुम अपने वेतन के अतिरिक्त पांच रूपये रोजकी आमदनी अधिक समझो।' महाराजजी की ऐसी आज्ञा होने पर मैं पुनः कानपुर चला गया।

कुछ काल बीतने पर एक दिन रात्रि में स्वप्नावस्था में मुझे श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और कहा, 'अब मेरे पाँच रुपये रोज के हिसाब से बहुत रुपये जमा हो गये हैं। तुम श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनो।' जागते ही मैंने सप्ताह–श्रवण का संकल्प किया। जब मेरे पास ढाई सौ रुपये हो गये तब मैंने श्रीमहाराजजी से सप्ताह सुनाने की प्रार्थना की। आप बोले, 'जब बारह सौ हो जायँ तब सुनना।' जब १२ सौ हो गये तब पुनः प्रार्थना की। परन्तु फिर भी आपने मना कर दिया। होते–होते जब पूरे अड़तीस सौ रुपये मेरे पास हो गये तब आपने स्वीकृति दी। स्वयं सहता पधारकर आपने श्रीमद्भागवत का सप्ताह कराया। सप्ताह बड़े ठाठ से हुआ। सहस्त्रों नर–नारियों ने श्रवण किया। सबको आपके दर्शन और सत्संगका लाभ मिला। समाप्तिपर भण्डारा हुआ। महाराजजी की आज्ञासे जब खर्चे का हिसाब जोड़ा गया तो आठसौ रुपया अधिक लगने का हिसाब आया। आप बोले, कोई चिन्ता नही, इतनी आमदनी तो एक दिन में हो जाती है।' वहीं हुआ। आपका वह वाक्य अक्षरशः यथार्थ हुआ। मैं जब कानपुर गया तो सप्ताहके भीतर ही मुझे एक दिन आठ सौ रुपये की आय हुई। इसे मैं श्रीमहाराजजीकी कृपा ही मानता हूँ।

(३)

एक बार दिल्लीमें व्यवसाय करते समय मुझे रुपये का बहुत घाटा लगा। मैंने दुखित होकर गंगाजी में डूबने का निश्चय किया और उसी संकल्पसे मैं कर्णवास गया। रात्रिको शयन के समय जब मैं चरणसेवा करने लगा तो श्रीमहाराजजी ने कहा, 'बेटा! तुम्हारा चित्त दुःखी जान पड़ता है। ऐसा काम नहीं करते। इसमें हानि है।' दूसरे दिन प्रातः काल मुझे गंगाजी में खड़ा करके उन्होंने ऐसा काम जीवन

में कभी न करने का संकल्प कराया। इस बातको या तो उन्होंने जाना या मैंने अन्य कोई कुछ नहीं समझ सका।

(४)

पीछे श्रीमहाराजजीने मुझे वृन्दावन में कुटी बनाकर रहने की आज्ञा दी। मैं वृन्दावन में रहने लगा। उस समय पचासों बार ऐसी घटनाएँ घटीं कि मैं जो कुछ पूछना चाहता उसका वे स्वयं ही उत्तर दे देते। भण्डारे आदि कार्यों में भी मुझे सेवा सौंपी गयी। उसे मैं उन्हीं की कृपासे सम्पन्न कर पाया। बचपनसे ही मैं उनकी कृपादृष्टिसे ही पला हूँ और अब भी उनकी पूर्ण कृपा है। अब भी यदि कोई चिन्ता का विषय उपस्थित होता है तो उसका वे स्वप्न में समाधान कर देते हैं।



भक्त हरीसिंह, वृन्दावन

सम्पर्क कैसे बढ़ा ?

उस समय मेरी आयु ग्यारह वर्ष की थी जब श्रीमहाराजजी मेरे गाँव में पधारे थे और शिवजी के मन्दिर पर ठहरे थे। मैंने सबसे पहले वहीं आपके दर्शन किये थे। परन्तु बालक होने के कारण कोई बातचीत नहीं हुई। उस समय आपके साथ चार छः भक्त भी थे। गाँवके कुछ लोग आ जाते थे। और नित्य–प्रति शाम को कीर्तन होता था। श्रीमहाराजजी के चले जाने के बाद भी वहाँ नित्य–प्रति कीर्तन का नियम हो गया। उसमें मैं भी सम्मिलित होता था। उसके बाद जब कर्णवास, रामघाट या बाँधके उत्सवों पर महाराजजी पधारते तो वहाँ जाकर उनके दर्शन करने लगा। इस प्रकार धीरे–धीरे उनसे सम्पर्क बढ़ गया।

एकबार मैंने बाँधके उत्सवपर जाकर महाराजजी का दर्शन किया। कुछ मिष्ठान सामने रखकर उन्हें माला पहना दी। पाँच–सात दिन वहीं रहा। आप कहते, तू घर क्यों नहीं जाता ?" मैं क्या उत्तर देता ? कह देता, 'महाराजजी ! घर जानेका मन नहीं करता ।' वास्तव में घर जानेपर वहाँ मन ही नहीं लगता था। महाराजजी के पास आने की ही उत्सुकता बनी रहती थी और उनके पास पहुँचते ही मन निश्चिन्त हो जाता था। एक वर्षतक तो ऐसी हालत रही कि कब घरसे पिण्ड छूटे और मैं श्रीमहाराजजी के पास चला जाऊँ ?

बृन्दाबनमें

श्रीमहाराजजीके सम्पर्क में आनेसे पूर्व, जैसा कि प्रायः होता है, घरमें बहुत अधिक मोह था, बड़ी आसक्ति थी। जब उनका सत्संग प्राप्त हुआ और कुछ भजन में मन लगने लगा तो घरका मोह छूट गया। आपत्ति–विपत्ति में भी कुछ परवा नहीं रहती थी, मस्त डोलता था। कई बर्ष बाद जब श्रीमहाराजजी वृन्दावन पधारे तब एक दिन आपने कृपा करके मुझे कण्ठी और माला दी तथा महामन्त्र का जप करने की आज्ञा प्रदान की। नित्य प्रति सोलह माला जपने का नियम कर दिया।

आपका स्वभाव बहुत उदार था, परन्तु साथ ही शिक्षा भी देते रहते थे। एकबार आप तीन महीने के लिये वृन्दावन से बाहर चले गये। आपकी उपस्थिति में मैं दूध पिया करता था। आपके चले जाने पर भी उसी प्रकार पीता रहा और तीन महीने में प्रायः ४० रु० का दूध पी लिया। जब आप लौटे तो किसीने आपको यह बात सुना दी। आप बोले, दूध क्यों पीता है ?'' किसीने बताया, इसे कोई बीमारी है।' आप बोले, ''बीमारी है तो इलाज करा ले। दूध का दाम कहाँसे आवेगा ?'' परन्तु पीछे से कह दिया कि इसके दूध का दाम दे देना। यह काम करता है।

एक दिन जब मैं चौके में बर्तन माँज रहा था आप अकस्मात् पहुँच गये और मेरी पीठ पर हाथ रख्कर बोले, ''बेटा ! इसे काम मत समझना। काम समझेगा तो थक जायगा। इसे भजन ही समझना।'' श्रीमहाराजजीके मुखसे यह वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसका यह परिणाम हुआ कि मैं कितना भी

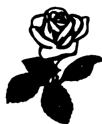
काम करता, मुझे न तो थकावट होती और न मेरा चित्त श्रीमहाराजजीके लीलासंवरण के बाद मैं मथुरा जेल में था। भण्डारे के दिन आपने स्वप्न में दर्शन दिया और बोले, अरे ! कोई आटा नही माँड़ता तू चलकर आटा माँड़ ले।'' मैंने कहा, ''महाराजजी ! अभी चलता हूँ।'' उसके कुछ दिनों बाद आपने पुनः दर्शन दिया और बोले, 'बेटा ! कुटिया छोड़कर कहीं मत जाना। उसके कुछ ही दिनों बाद मास्टर राधाबल्लभ मुझे जमानतपर छुड़ा लाये। अब भी कभी–कभी स्वप्न में आपके दर्शन होते रहते हैं।

हरी काशीमें है

सन् १९५४ ई० के प्रयाग कुम्भ से मैं गोविन्ददासजी मास्टर प्यारेलाल और हरिचरण दास आदि साथ–साथ श्रीजगन्नाथजी का दर्शन करने गये थे। वहाँ पांच दिन रहकर दर्शन और समुद्र स्नान आदि किया। फिर हम लोग तो कलकत्ता चले गये, किन्तु गोविन्ददासजी श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर में गीतगोविन्दका पाठ करने के उद्देश्य से वहीं रह गये। हमारे चले जाने के पश्चात् देवनागरी अक्षरों में गीतगोविन्द की पुस्तक न मिलने के कारण वे पाठ प्रारम्भ न कर सके। इससे उनका चित्त उदास हो गया और वे मन ही मन सोचने लगे कि अच्छा होता यदि सबके साथ कलकत्ता ही चले जाते। अपने साथ के सब आदमी तो वहाँ चले गये, यहाँ मैं पाठ भी नहीं कर सका। उसी दिन रात्रि में श्रीमहाराजजीने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और कहा, ''हरि काशी में है।'' यद्यपि उस रात्रिको मैं कलकत्ते में था परन्तु काशी जानेका सबका संकल्प हो चुका था। बस, गोविन्ददासजी जगन्नाथपुरी से सीधे काशी का टिकट लेकर चले और हम सबने

कलकत्ते से काशी के लिये प्रस्थान किया। एक ही दिन प्रातःकाल वे और हम काशीजी में उतरे। वे गंगास्नान करके सड़क से जा रहे थे। उसी समय हरिचरणदास ने उन्हें देख लिया। फिर हम सब मिल गये। जब उन्होंने स्वप्न की बात सुनायी तो हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। श्रीमहाराजजी ने किस प्रकार हम लोगों के मन की बात जानकर हमें काशी में पुनः मिला दिया। यह बड़ी ही विचित्र बात–हुई।

इस प्रकार श्रीमहाराजजी अब भी समय–समयपर हमारी देखभाल करते रहते हैं। हम अब भी अपने को उन्हीं की छत्र छाया में समझते हैं।



भक्त रामसिंह, वृन्दावन

(१)

सं० १९६२ वि० में काजिमाबाद के उत्सव में श्रीमहाराजजी पधारे थे। वहां मैं उनके दर्शनों के लिये गया। मेरी लालसा थी कि महाराजजी के हाथों से माला लूँगा। परन्तु जब मैंने मालाके लिए प्रार्थना की तो उन्होंने मना कर दिया। बोले, 'चार पैसे की माला कहीं से ले लेना, मैं नहीं देता।' मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं रेलगाड़ी के नीचे कटकर मरने के लिए समीप के स्टेशन अतरौली रोड को चला। इधर श्रीमहाराजजी मेरे आन्तरिक विचार को जान लिया और तुरन्त ही पं० खूबीरामसे कहा, उसे पकड़ लाओ मैं माला दूँगा।'' मैं लौट आया और मुझे माला मिल गयी।

(२)

मैं बीबी हरिप्यारी के साथ दिल्ली गया था। एक दिन मैंने भूलसे गीला कपड़ा बिजली के तारपर डाला। उसी समय मुझे बिजलीका करेंट लगा और मैं बेहोश होकर गिर गया। डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने कह दिया, यह मर गया है, अब इसमें जीवन का कोई चिन्ह नहीं है। हरिप्यारी बार–बार श्रीमहाराजजीसे प्रार्थना करती थीं कि इसे बचाओ, मैं आपको कैसे मुँह दिखाऊँगी। पीछे बिजली–विभाग का कोई अफसर आया। उसने मुझे धरती में गड्डा खोदकर दबवाया। ऐसा करने से छः घंटे बाद मुझे चेतना आ गयी

और मैं उठ बैठा । होश आने पर ये सब बातें मुझे दूसरे लोगों ने बतायीं। श्रीमहाराजजी उस समय कर्णवास में थें उन्होंने स्पष्ट तो नहीं किया, परन्तु कई लोगों से यह अवश्य कहा कि आज मेरे किसी आदमी की मृत्यु हुई है। मेरा विश्वास है कि उन्होंने मेरी दशा देख ली थी, परन्तु ऐसी बातों का वे स्पष्ट नहीं करते थे।

(३)

एक बार श्रीमहाराजजी कर्णवास में थे। कार्तिकका महीना था। प्रातःकाल सभी भक्तों के साथ गंगास्नान के लिये जाते थे। और दीपदान भी करते थे। मुझे उन दिनों ज्वर आता था आठ लंघन हो चुके थे। एक दिन स्नान करके लौटे तो मुझसे बोले, 'अरे तू दीपदान करने नहीं गया ?'' मैंने उत्तर दिया, 'महाराजजी ! मुझे तो ज्वर आता है।'' आप बोले, नहीं, अभी जा गंगास्नान कर।' मैंने फिर कहा महाराजजी ! मुझे ज्वर आता है।' परन्तु उन्होंने जबरदस्ती मुझे भेजा। मैंने पक्के घाटपर जाकर स्नान किया। बस उसी समयसे ज्वर निःशेष हो गया।

(४)

एक बार मैं एक माताजी की ओषधि लेकर राजघाट स्टेशनपर उतरा। उतरते ही एक पुलिस कॉंस्टेबिल ने पूछा, तुम्हारा क्या नाम है ?' मैंने कहा रामसिंह–। फिर जाति पूछी। मैंने बताया, जाट।' फिर पूछा तुमने पहले फौज में नौकरी की है ?' मैं बोला, हाँ। बस, उसने पकड़ लिया और बरेली–जेल में भेज दिया।* वहाँ मुझे

---

* बात यह थी की रामसिंह जाट नाम का कोई सिपाही सेना से भग आया था। उसीके धोखे में यह रामसिंह पकड़ा गया।

तुलसी और पीपलका वृक्ष मिल गया। मैं उन्हें सींचता और श्रीमहाराजजीका स्मरण करता था। प्रायः नित्य ही स्वप्न में श्रीमहाराजजी दर्शन देते और कहते थे, 'बेटा ! मैं तुझे ढुँढ़वा रहा हूँ। मुझे तेरी चिन्ता है।'' माताओं में से भी किन्हीं–कीन्हीं के दर्शन होते। वे भी कहती, श्रीमहाराजजी को तेरी बड़ी चिन्ता है। एक दिन मैंने जेल से श्रीमहाराजजी के नाम एक कार्ड लिखा। उसमें अपने पकड़े जाने की सारी बात लिख दी। उसे पढ़कर श्रीमहाराजजीने पं० प्यारेलाल वैद्य (रामघाट) को भेजा। उनके आते ही मुझे सम्मानपूर्वक छोड़ दिया। सब लोगों ने मेरे पैर छुए और जेलरने श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ आने को कहा।

(५)

श्रीवृन्दावन–आश्रमकी प्रतिष्ठा के महोत्सवपर भक्तों की बड़ी भारी भीड़ थी सभी महाराजजी की पूजा करना चाहते थे। परन्तु श्रीमहाराजजी को प्रायः अवकाश नहीं मिलता था। अतः जिस भक्तको वे जहाँ मिल जाते वहीं पर पूजा कर लेता था। एक दिन छोटे दरवाजे के पास ही कुछ भक्त पूजा करने लगे। काफी भीड़ हो गयी। उसी समय मैं भी कुछ फल लिये धक्का मुक्की करता आगे बढ़ने लगा। महाराजजी ने मुझे देख लिया और हाथ बढ़ाकर मेरे हाथ से फल ले उन्हें स्वयं ही अपने सिर पर चढ़ाकर बोले, ' जा तेरी पूजा होगयी, काम कर।' ऐसी थी उनकी कृपा।

(६)

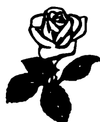
एक बार मुझे गाँवमें इस बातके लिये बड़ी चिन्ता हुई कि मैं भजन कैसे करूँ ? तब श्रीमहाराजजीने स्वप्न में कहा, मुझे

अपने सामने देखाकर।' पीछे मैं कर्णवास गया और वहाँ भी श्रीमहाराजजीसे वही प्रश्न किया। तब भी उन्होंने यही उत्तर दिया, मुझे अपने सामने देखाकर।'

(७)

श्रीमहाराजजी के लीलासंवरण के पाँचवर्ष बाद की घटना है। मैं मास्टर प्यारेलालके गाँव लाड़पुरा में था। वहाँ रातको हम दोनों में आपस में सत्संग होने लगा। प्रसंग यह था कि हमें शुद्ध अन्न नहीं मिलता इसीसे भजन नहीं बनता। रातको जब मैं सोया तो स्वप्न में श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। वे बोले, मैं सबको देखता हूँ। मुझे रातको कोई भी भजन करता नहीं दीखता। सब पड़े–पड़े सोते रहते हैं।' मैंने कहा, 'महाराजजी ! मुझे शुद्ध अन्न तो मिलता नहीं, भजन कैसे हो ?' श्रीमहाराजजी बोले, मैं तुम्हें कंगालों की रोटी खाकर भजन करके दिखा सकता हूँ। यह केवल भजन न करने का बहाना है।

ऐसी ही श्रीमहाराजजीकी अनेकों अलौकिक लीलाएँ हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय ?



श्रीरामेश्वरदयाल शर्मा, सेंडौल (अलीगढ़)

(१)

मेरी आयु जिस समय लगभग सात या आठ वर्ष की थी, मैंने पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के दर्शन पहली बार काजिमाबाद में किये थे। तभी से उनके प्रति मेरे चित्त में अनुराग उत्पन्न हो गया और मैं बराबर उनके संसर्गमें आनेका प्रयत्न करने लगा।

सन् १९३८ की बात है। श्रीमहाराजजीने उस साल अपना चातुर्मास्य रामघाट में किया था। में हिन्दी मिडिल में पढ़ता था। मैं अतरौली से प्रत्येक रविवार की छुट्टी में उनके दर्शनार्थ रामघाट जाया करता था। शरत्पूर्णिमा का उत्सव निकट था मैंने जब स्कूल आने के लिये प्रातःकाल ही महाराजजीसे आज्ञा माँगी तो आपने पूछा, बेटा ! शरदपर नहीं रहेगा।' मैंने कहा 'महाराजजी ! उत्सवपर अवश्य आ जाऊँगा।' इसपर आपने सिर हिलाकर जानेकी अनुमति दे दी।

शरत्पूर्णिमाके दिन स्कूल की छुट्टी नहीं थी। अतः प्रातःकाल तो मैं गाँवसे स्कूल गया। वहाँसे साढ़े तीन बजे छुट्टी मिली गाँव (सेंडौल अतरौली से चार मील था। पैदल ही वहाँ पहुँचा। शीतकाल आनेवाला था, अतः दिन छोटे हो गये थे। गाँव पहुँचते पहुँचते ५ बज गये। मुझे रह–रहकर श्रीमहाराजजी के सामने की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो रहा था। अतः अकेला ही झोला ले रामघाट के लिये चल दिया। रामघाट गाँव से प्रायः चौदह मील है। मैं तीन मील ही चला

था कि सूर्य अस्त हो गया। अभी काफी मार्ग तय करना था और मैं था अकेला अतः भय–भीत होने लगा। कच्चा रास्ता होने के कारण कोई यातायात का साधन भी नहीं था। अतः रामघाट पहुँचने से मैं निराश हो गया और बड़े धर्म संकट में पड़ गया। कभी आगे बढ़ता और कभी गाँवकी ओर लौटना चाहता था। विवश होकर मन ही मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगा। थोड़ी ही देर में मुझे पीछे से तीन आदमी आते दिखायी दिये। पूछनेपर पता लगा कि वे गंगास्नान के लिये रामघाट जा रहे हैं। अतः मैं उनके साथ हो लिया।

रास्ते में बातचीत करते हम रामघाट के पास हजारों नहरपर आये। इस समय रातके दस बज चुके थे यहाँ से हमारा रास्ता अलग–अलग होता था। उस रात्रि के समय अकेला श्रीमहाराजजी की कुटी पर जाने में मुझे भय लगता था। अतः मैंने उन लोगों से श्रीमहाराजजी के यहाँ शरत्पूर्णिमाके उत्सव की बात कही तो वे भी मेरे साथ वहीं जाने को तैयार हो गये। परन्तु कुटियापर पहुंचने के पश्चात् बहुत ढूंढने पर भी मुझे उनका पता न लगा।

मैं जैसे ही श्रीमहाराजजी के पास पहुंचा उन्होंने खीर का प्रसाद बाँटने की आज्ञा दे दी और मैं उस प्रसाद में सम्मिलित हो गया। उस समय मुझे तो यही लगा कि मुझे इस प्रकार अपने समीप बुलाने की व्यवस्था उन्होंने ही की थी। विपत्ति के समय वे इसी प्रकार अपने भक्तों की रक्षा करते थे।

(२)

मेरे गाँव से चार भक्त श्रीमहाराजजी की सेवा में और जाया करते थे–(१) गौरीशंकरजी (श्रीशंकर प्रकाश ब्रह्मचारी), (२) ख्याली (श्रीप्रकाशानन्दजी), (३) नानक और (४) सियारामजी। मैं इन चारों की अपेक्षा आयु में छोटा था। श्रीमहाराजजीने इन चारों को माला एवं मन्त्र

प्रदान कर दिये थे। मेरी भी उत्कट इच्छा थी कि महाराजजी मुझे भी माला और मन्त्र दे दें। अतः मैंने सिरसानिवासी पं० खूबीरामसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा, 'तुम सीधे श्रीमहाराजजीसे ही माला माँग लेना।' मैंने उनसे माला माँगी तो वे एकदम झिड़कर बोले, 'बच्चे–बच्चोंको माला नहीं मिलती।' मैं निराश होकर इधर–उधर घूमता रहा। मैंने प्रण कर लिया कि यदि महाराजजी मुझे मन्त्र और माला नहीं देंगे तो मैं गंगाजी में डूबकर अपने प्राण दे दूँगा।

दूसरे दिन मध्याह्न के समय श्रीमहाराजजी कुटिया में बैठे महाप्रसद बाँट रहे थे। उपर्युक्त चारों भक्त और रोशन कोली (सरयूदास) भी महाप्रसाद ले आये। मुझसे भी न रहा गया। अतः साहस बटोरकर कुटियाके सामने खम्भे की आड़ में जा खड़ा हुआ। उस समय महाराजजी के पास बुद्धिसागर और पं० खूबी राम बैठे हुए थे। बुद्धिसागर ने मेरी ओंर संकेत किया तो महाराजजी एकदम चिल्लाकर बोले, बच्चे–बच्चों को क्या महाप्रसाद ?' इतने में पं० खूबीरामजी ने कहा, 'महाराजजी ! यह तो कई दिनों से मुझसे मालाके लिये कह रहा है।' अब तो वे और भी बिगड़ गये और बोले, कैसी माला ! बच्चों को किस बात को माला ?' पण्डितजी ने कहा, 'महाराजजी ! यह तो बहुत रोता है।' अब क्या था ? उनके ऐसा कहते ही मेरी अश्रुधारा चल पड़ी। यह देखकर श्रीमहाराजजी कुटियामें से उठकर स्वयं मेरे पास आये। उस समय उनके हाथ भात में सने हुए थे। उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया। मेरी हिलकी बँध गयी और इतना अश्रुपात हुआ कि उनकी चादर काफी भीग गयी। तब आपने मुझे तुरन्त महाप्रसाद दिया और सान्त्वना देते हुए कहा, 'बेटा ! मैं तुझे बढ़िया माला दूँगा।' संध्या समय आप एक तुलसीमाला गलेमें डाले आये और उसे स्वतः उतार कर मुझे दे दिया। मैंने मन्त्र पूछा तो आप कुछ समय के लिये ध्यानस्थ

हो गये और फिर मन्त्र भी दे दिया।

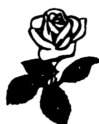
(३)

एक दिनकी बात है, मैं रात्रिके समय रामघाट की झाड़ी में होकर आ रहा था। इतने में सहसा मेरी दृष्टि एक काले साँपपर पड़ी। मैं एकदम चिल्ला उठा, बाबा ! साँप।' इस समय भयके कारण मेरी घिग्घी बँध गयी। महाराजजी ने तुरन्त बड़े जोर से आवाज दी। बेटा ! यहाँ साँप कहा है रे ! अरे यहाँ साँप नहीं है।' और मेरे पास वहाँ झाड़ी में ही आप बुद्धिसागरके सहित पहुँच गये। ऐसी थी आपकी भक्तवत्सलता।

अपने उन हृदयाराध्य गुरुदेव को मैं निम्नाङ्कित पदद्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ–

हे ऋषिकल्प ! शत शत प्रणाम।

हे त्याग तपस्या मूर्ति और ब्रह्मज्ञ सारवित् तेजवान्।
करते विकीर्ण आनन्द पूर्ण हे पूर्णानन्द प्रकाशवान्।।१।।
अवतार-भूमि वह पुरी धन्य, वे मातृ पितृवर हैं सुधन्य।
जिनके गृह में अवतीर्ण हुए तुम कीर्तिपुञ्ज यशसा अनन्य।।२।।
प्रभु थे पर सेवामूर्ति रहे, अतिशय अनुराग-विराग-धनी।
थीं सिद्धि हस्त-आमलक-तुल्य पर त्यागी व्रती यमी नियमी।।३।।
तुमगये किन्तु वह दिव्य ज्योति, कर दी प्रसृत हे दण्डन्यस्त।
जो युग युगतक साधकजनको देगी प्रकाश पथ का प्रशस्त।।४।।



हमारे प्रकाशन

१. हमारे श्रीमहाराजजी–यह ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी महाराजका जीवन-चरित्र है। महापुरुषोंके जीवनमें साधकोंको अपने जीवन-निमार्णकी दिशा मिलती है। श्री महाराजजीका जीवन इस दृष्टिसे बहुत उपयोगी है। उनमें किसी प्रकार मानव जीवनके चरम लक्ष्यका आविर्भाव हुआ, यह कुशल लेखक ने बड़ी सजीव भाषा में व्यक्त किया है। इतना सफल चरित्र-चित्रण शायद ही किसी जीवन-चरित्रमें हुआ होगा। डिमाई साइज़की करीब छःसौ पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तकमें तीन तिरंगे और तीन सादे चित्र भी हैं। सजिल्द मूल्य ३० रु० मात्र।

२. गीतातत्त्वालोक–यह श्रीउड़िया बाबाजी द्वारा की हुई सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीताकी व्याख्या है। यह एक तत्त्वनिष्ठ महापुरुष की वाणी है। यद्यपि इसमें विवेचन अद्वैतवादकी दृष्टि से किया गया है, तथापि कोई साम्प्रदायिक आग्रह या अर्थकी खींचतान नहीं है। ग्रन्थका वास्तविक तत्त्व प्रकट करनेमें यह व्याख्या अद्वितीय है, पृष्ठ संख्या छैः सौ से अधिक है।

सजिल्द मू० ३०) मात्र

३. श्रीउड़िया बाबाजीके उपदेश–श्रीमहाराजजी समय-समयपर साधकोंको जो उपदेश देते थे उनमेंसे जो वाक्य अधिक प्रभावशाली होते थे उन्हें साधक लोग नोट कर लेते थे। यह उन्हींका संग्रह है। इसमें आचार, उपासना और ज्ञान तीन खण्ड हैं। अतः यह सभी प्रकारके साधकोंके लिये उपयोगी है। प्रायः पाँच सौ पृष्ठोंकी इस पुस्तकका मूल्य ३० रु० मात्र है।

४. श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण द्वितीय खण्ड

श्री महाराजजी के सान्निध्य में रहे लगभग ८० संत, भक्तों के तथ्यपूर्ण अनुभव लगभग चारसौ पृष्ठ में। सजिल्द मू० २५ रु०।

मिलने का पता : **श्रीकृष्णाश्रम,** दावानल कुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)